गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

GOPALRAM GAHMARI KE JASOOSI UPANYASON KA SAMAJSHASTRIY ADHYYAN

(SOCIOLOGICAL STUDY OF GOPALRAM GAHMARI'S DETECTIVE NOVELS)

पीएच.डी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक

प्रो. गरिमा श्रीवास्तव

शोधार्थी

गौरव भारती

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2022

Dated: 22 /12 /2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled ***"Gopalram Gahmari Ke Jasoosi Upanyason Ka Samajshastriy Adhyyan" Sociological Study of Gopalram Gahmari's Detective Novels*** submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

Gaurav Bharti
Name of Student

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 22 /12 /2022

Certificate

This is to certify that the Mr. Gaurav Bharti a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled ***"Gopalram Gahmari Ke Jasoosi Upanyason Ka Samajshastriy Adhyyan" Sociological Study of Gopalram Gahmari's Detective Novels***

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Garima Srivastava

Prof. Garima Srivastava
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Dr. Garima Srivastava
Professor
Centre for Indian Languages
SLL&CS
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

Prof. Omprakash Singh
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

अध्यक्ष / Chairperson
भारतीय भाषा केन्द्र / CIL
भा. सा. एवं सं. अ. सं. / SLL & CS
ज. ने. वि. / J.N.U
नई दिल्ली / New Delhi-110067

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741657, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217;
Email: chair_cl@mail.jnu.ac.in, jnucl@gmail.com

अनुक्रमणिका

भूमिका : I-V

अध्याय : एक - जासूसी उपन्यास परंपरा और परिवेश : 1-42

पीठिका

1.1 साहित्य का समाजशास्त्र

1.2 उपन्यास का समाजशास्त्र

1.3 जासूसी उपन्यास: परंपरा और परिवेश

अध्याय : दो - गोपालराम गहमरी : व्यक्तित्व और कृतित्व : 43-83

2.1 गोपालराम गहमरी और उनका जीवन

2.2 गोपालराम गहमरी का रचना संसार

2.3 हिंदी पत्रकारिता और गोपालराम गहमरी

2.4 गोपालराम गहमरी और उनके संस्मरण

2.5 गोपालराम गहमरी और उनका समकाल

अध्याय : तीन - गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन : 84-127

3.1 आरंभिक हिंदी उपन्यास और हिंदी आलोचना

3.2 गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास और उसकी पठनीयता

3.3 गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास और भारतीय समाज

- स्त्री प्रश्न
- पुरुष समाज
- अंग्रेजी सभ्यता का आकर्षण और पूँजीवाद
- राजभक्ति का स्वरूप
- स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव
- धार्मिक अंधविश्वास का चित्रण
- मुस्लिम पात्र का चित्रण

अध्याय: चार - गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास : शिल्पगत वैशिष्ट्य

: 128-161

4.1 कथावस्तु और कथानक

4.2 चरित्र- चित्रण

4.3 देशकाल और वातावरण

4.4 भाषा

4.5 मुहावरा, लोकोक्तियाँ और गीत

4.6 शैली

- वर्णनात्मक शैली
- किस्सागोई शैली
- पत्रात्मक शैली
- संस्मरणात्मक शैली
- विश्लेषणात्मक शैली

अध्याय : पाँच - जासूसी उपन्यास : दशा और दिशा : 162-191

5.1 जासूसी उपन्यास: एक अध्ययन

5.2 स्वातंत्र्योत्तर जासूसी उपन्यास

5.3 जासूसी उपन्यास: दशा और दिशा

उपसंहार : 192-197

आधार ग्रंथ एवं संदर्भ ग्रंथ सूची : 198-204

भूमिका

साहित्य की परिकल्पना उसकी विविधता की भांति ही बहुत गंभीर और विस्तृत है । इसी व्यापकता को बरकरार रखने के लिए उसके हर अंग को जीवित रखना आवश्यक है । साहित्य की सही पकड़ पाठक वर्ग के पास होती है और वे ही किसी भाषा के साहित्य की विविधता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । ऐसी स्थिति में पाठक वर्ग की रुचि को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता । समाज में पाठकों के कई वर्ग हैं और जिस प्रकार वर्ग अलग है ठीक वैसे ही उनकी रुचियाँ भी अलग हैं । हिंदी में जासूसी साहित्य की लोकप्रियता भी उसी रुचि का परिणाम है । गोपालराम गहमरी हिंदी में जासूसी उपन्यासों के प्रवर्तक माने जाते हैं । उन्होंने कल्पना के घटना-वैचित्र्य से निकालकर हिंदी उपन्यास को यथार्थ के धरातल पर लाने का प्रयास किया । हिंदी उपन्यास लेखन के आरंभिक दौर में इन उपन्यासों का लिखा जाना और पाठकों की स्वीकृति मिलना तत्कालीन समाज की व्याख्या एवं मनोविज्ञान को समझने की कुंजी साबित हो सकती है । ऐतिहासिक दृष्टि से इनका आलोचनात्मक और समाजशास्त्रीय अध्ययन महत्त्वपूर्ण है ।

हिन्दी में जासूसी उपन्यास का आशय लुगदी और फुटपाथी साहित्य माना जाता है । इस पूर्वाग्रह के कारण हिंदी साहित्यालोचना में इस पर कोई गंभीर विश्लेषण नहीं किया जा सका । लोकप्रियता को साहित्यिक मूल्यों के ह्रास के साथ देखा जाना इन उपन्यासों के प्रति उदासीनता का एक प्रमुख कारण रहा है । लेकिन आज जरूरत है कि इस पूर्वाग्रह से मुक्त होकर पश्चिम की तरह भारतीय परिवेश में इसका ऐतिहासिक मूल्यांकन संभव हो । पश्चिमी साहित्यालोचना में कार्ल मार्क्स जैसे चिंतकों ने भी जासूसी साहित्य और लोकप्रिय साहित्य का विश्लेषण किया है । वहाँ पर समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में इस तरह के उपन्यासों के विश्लेषण की सैद्धांतिकी का विकास हुआ है । हिंदी में भी समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में जासूसी साहित्य के

अध्ययन की बहुत संभावना और जरूरत है। आरंभिक उपन्यास लेखन की धारा में इन जासूसी और लोकप्रिय उपन्यासों का अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी में प्रेस, प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओं के विकास के साथ गद्य विधाओं के विकास के संबंध को समझने के लिए आवश्यक है। यह अध्ययन तद्युगीन पाठक वर्ग और उसकी मानसिकता के विश्लेषण के लिए भी आवश्यक है। यह समझना भी जरूरी है कि लोकप्रिय साहित्य पाठक-वर्ग के निर्माण में अहम् भूमिका निभाता है।

हिंदी साहित्येतिहास लेखन में हिंदी उपन्यास के उद्भव और विकास को लेकर तरह-तरह की मान्यताएं रही हैं। वहीं आरंभिक हिंदी गद्य लेखन के दौर में जिस शुचितावादी आलोचना का विकास हुआ उसने साहित्य की दो धाराएं निर्मित की। उसी दौर में कलात्मक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के बीच एक विभाजन रेखा खींची जाने लगी और लोकप्रिय साहित्य मसलन तिलस्मी और जासूसी साहित्य को साहित्यिक कोटि से बाहर कर दिया गया। आगे भी जिस आलोचना का विकास हुआ उसमें भी यह विभाजन बरकरार रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि इन उपन्यासों का विश्लेषण संभव नहीं हो सका और आलोचकीय उदासीनता के कारण आरंभिक दौर में लिखे गए बहुत से जासूसी उपन्यास साहित्यिक परिदृश्य से गायब हो गए। इनका संरक्षण नहीं हो पाया। जबकि पूर्वाग्रहों को छोड़कर देखें तो इन जासूसी उपन्यासों में तत्कालीन भारतीय समाज अपनी संगतियों-विसंगतियों के साथ यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है। इन उपन्यासों का अध्ययन हिंदी उपन्यास के उद्भव और विकास के नैरंतर्य को समझने में सहायक है।

पीएच.डी. शोध-कार्य हेतु विषय का चयन किसी भी शोधार्थी के लिए पहली और महत्त्वपूर्ण सीढ़ी होती है। एक शोधार्थी के रूप में उसकी यह यात्रा यहीं से शुरू होती है। भारतीय नवजागरण, आरंभिक हिंदी उपन्यास और साहित्य के समाजशास्त्र की गंभीर अध्येता प्रो. गरिमा श्रीवास्तव के मार्गदर्शन और निर्देशन में मेरी यह यात्रा शुरू हुई। आरंभिक हिंदी उपन्यास के अंतर्गत 'गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन'

शीर्षक विषय का सुझाव उन्होंने ही दिया था। आरंभिक हिंदी उपन्यास को लेकर उनके गंभीर चिंतन और परामर्श के कारण ही मैं इस विषय के महत्त्व को समझ सका। आज इस शोध-प्रबंध को आप सभी के समक्ष रखते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। शोधार्थी के रूप में मेरी इस यात्रा के हर पड़ाव पर शोध निर्देशिका प्रो. गरिमा श्रीवास्तव का निर्देशन और परामर्श मिलता रहा जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। उनके निर्देशन के बिना यह यात्रा संभव नहीं हो पाती।

शोध और विश्लेषण की सुविधा की दृष्टि से शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है : **अध्याय : एक - 'जासूसी उपन्यास: परंपरा और परिवेश'** से संबंधित है। इस अध्याय में हिंदी उपन्यास के उद्भव और विकास की पड़ताल के साथ समाजशास्त्र, साहित्य के समाजशास्त्र, लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्र और उपन्यास के समाजशास्त्र का अध्ययन किया गया है। आरंभिक हिंदी उपन्यास लेखन की प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करते हुए हिंदी में जासूसी उपन्यास लेखन के उद्भव और विकास को रेखांकित किया गया है। तद्युगीन परिस्थितियों के आलोक में हिंदी उपन्यास के साथ-साथ भारतीय मध्यवर्ग के उदय का भी विवेचन किया गया। यह अध्याय साहित्य के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में जासूसी उपन्यास की परंपरा और परिवेश के अध्ययन से संबंधित है।

अध्याय : दो - 'गोपालराम गहमरी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व' है। इस अध्याय में गोपालराम गहमरी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है। उनके जीवन के विविध पहलुओं से साक्षात्कार करते हुए उनके साहित्यिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है साथ ही गोपालराम गहमरी के संस्मरणों, लेखों, अनुवाद, पत्रकारिता आदि के माध्यम से उनके कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि अपने संस्मरणों और पत्रकारिता में वे किस तरह औपनिवेशिक भारत के यथार्थ को प्रस्तुत कर रहे थे। यहाँ पर उनके लेखन के विविध रूपों के माध्यम से तद्युगीन सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ के विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

अध्याय : तीन - 'गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन' है। इस अध्याय के अंतर्गत गोपालराम गहमरी के उपलब्ध जासूसी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय पद्धति से अध्ययन किया गया है। ऐतिहासिक सन्दर्भों में उनके उपन्यासों का मूल्यांकन किया गया है। साहित्य के समाजशास्त्र के प्रमुख पक्ष - लेखक, रचना और पाठक को केंद्र में रखकर तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में उनके जासूसी उपन्यासों का विश्लेषण किया गया है। आरंभिक हिंदी उपन्यास और आलोचना के विकास को रेखांकित करते हुए गोपालराम गहमरी के उपन्यासों के अध्ययन की संभावनाओं की पड़ताल की गयी है। गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की पठनीयता को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सन्दर्भों में व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। इसके अंतर्गत यह देखने का प्रयास किया गया है कि इनके उपन्यासों में सामाजिक विसंगतियां और औपनिवेशिक परिवेश का यथार्थ किस रूप में अभिव्यक्त हुआ है। नवजागरण के प्रभाव, स्त्री प्रश्न, पितृसत्तात्मक समाज, अंग्रेजी सभ्यता के आकर्षण, पूंजीवाद, राजभक्ति-देशभक्ति के द्वंद्व, स्वदेशी के प्रभाव, धार्मिक अंधविश्वास और मुस्लिम समाज के चित्रण आदि के आलोक में गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का अध्ययन किया गया है।

अध्याय : चार - 'गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास : शिल्प वैशिष्ट्य' है। इस अध्याय के अंतर्गत गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों के शिल्प पक्ष का विश्लेषण किया गया है । शिल्प पक्ष के अंतर्गत गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में कथावस्तु, कथानक, चरित्र-चित्रण, देशकाल-वातावरण, भाषा और शैली का विश्लेषण किया गया है। उनके उपन्यासों में प्रयुक्त मुहावरों, लोकोक्तियों और गीतों आदि को रेखांकित किया गया है । आरंभिक हिंदी उपन्यास और जासूसी उपन्यास की औपन्यासिक संरचना को साधते हुए वे किस तरह उपन्यास में युगीन सन्दर्भों को आमजन भाषा में अभिव्यक्त कर रहे थे इसका विश्लेषण किया गया है।

अध्याय : पाँच- 'जासूसी उपन्यास : दशा और दिशा' है। इस अध्याय के अंतर्गत स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास लेखन में जासूसी उपन्यासों की दशा और दिशा का अध्ययन

किया गया है। इसके अंतर्गत जासूसी उपन्यासों के प्रकार, जासूसी उपन्यास लेखन की टेकनीक और व्यावसायिक लेखन के अंतर्गत इन उपन्यासों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। यहाँ यह भी देखने का प्रयास किया गया है कि जनसंचार के दृश्य माध्यम के आगमन का इन जासूसी उपन्यास लेखन और उसकी व्यावसायिकता पर क्या प्रभाव पड़ा। साथ ही साथ जासूसी उपन्यास लेखन की संभावनाओं एवं अध्ययन की दिशाओं की पड़ताल की गयी है।

इन्हीं सब आलोक में अध्ययन-विश्लेषण करते हुए शोध-प्रबंध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है। अंत में आधार-ग्रंथ और संदर्भ-ग्रंथ सूची प्रस्तुत की गई है।

आरंभिक हिंदी उपन्यास और जासूसी उपन्यास के अध्ययन की संभावनाओं के बीच 'गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन' मेरे द्वारा किया गया एक मौलिक प्रयास है। इस शोध-कार्य के लिए मैं 'हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग', 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज', 'इंडियन प्रेस, प्रयागराज', 'नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी', 'हरदयाल म्युनिसिपल हेरिटेज पब्लिक लायब्रेरी, दिल्ली', और 'डॉ. बी.आर. अम्बेडकर सेंट्रल लायब्रेरी, जे.एन.यू.' का आभारी हूँ जहाँ से मैंने शोध-कार्य के लिए आधार-ग्रंथ, संदर्भ-ग्रंथ एवं अन्य सहायक सामग्रियाँ जुटायीं।

इस क्रम में मैं अपने परिवार और उन सभी मित्रों का भी आभारी हूँ जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मेरी इस यात्रा के साक्षी रहे हैं। मुझे इनका सहयोग हर पड़ाव पर मिलता रहा। भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू. के सभी कर्मचारियों का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने कार्यालय संबंधी समस्याओं के निदान में हमेशा मेरी मदद की। मैं आशा करता हूँ कि हिंदी उपन्यास के उद्भव और विकास के अंतर्गत जासूसी उपन्यास की धारा को समझने में यह शोध-प्रबंध सहायक होगा।

गौरव भारती

अध्याय : एक

जासूसी उपन्यास : परंपरा और परिवेश

पीठिका

साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य के सामाजिक रूप और अर्थ को उजागर करता है । इसका प्रमुख उद्देश्य साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता की व्याख्या है । "साहित्य के समाजशास्त्र की मुख्य प्रवृत्ति समग्रतावादी है । वह साहित्य के सभी रूपों और पक्षों को समग्रता में समझने पर जोर देता है । साहित्यिक प्रक्रिया के मुख्य तीन पक्ष हैं: लेखक, रचना और पाठक । साहित्य-विश्लेषण की अधिकांश दृष्टियों में इन तीनों में से कोई पक्ष अनिवार्यतः रहता है । साहित्य के समाजशास्त्र में इन तीनों का विवेचन होता है और इनके पारस्परिक संबंधों का भी । उसमें गंभीर कलात्मक साहित्य के साथ लोकप्रिय साहित्य के सामाजिक संदर्भ और प्रयोजन का भी विश्लेषण होता है । केवल साहित्य के समाजशास्त्र में ही साहित्य-प्रक्रिया के अनुभवों और तथ्यों का व्यावहारिक विवेचन होता है, जिसमें सहित्य के लेखन, प्रकाशन, वितरण और उपभोग की पूरी व्यवस्था की भूमिका स्पष्ट होती है ।"[1]

उपन्यास के साथ मध्यवर्ग का संबंध द्विस्तरीय है । मध्यवर्ग से ही अधिकांश रचनाकार उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हुए और उसका पाठक एवं आस्वादक भी मध्यवर्ग ही था । इसीलिए किसी भी भाषा में उपन्यास का उद्भव और विकास मध्यवर्ग के उद्भव और विकास के साथ जुड़ा हुआ है । यूरोप में जहाँ उपन्यास का उद्भव हुआ, इस बात को अनेक चिंतको ने रेखांकित किया कि उपन्यास ने महाकाव्य का स्थान ले लिया । हीगेल ने यह बात कही और लुकाच ने भी यह स्थापना सामने रखी कि आधुनिक काल में उपन्यास महाकाव्य की उस वर्णनात्मक विशेषता को पकड़ने का एक प्रयत्न है, क्योंकि आधुनिक जीवन की परिस्थितियों ने अब महाकाव्य की रचना को असम्भव बना दिया है । ध्यातव्य है कि यूरोप में मध्यवर्ग का उदय का एक प्रमुख कारण औद्योगिक क्रांति थी जबकि भारतीय मध्यवर्ग के उदय का प्रमुख कारण तत्कालीन औपनिवेशिक साम्राज्य की व्यवस्था बना । कहना न होगा

[1]. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पांडेय : पृष्ठ-xiii

कि प्रारंभिक हिंदी उपन्यास लेखन के समय हिन्दी के उपन्यासों का एक वर्ग उन उपन्यासों का है जिन्हें मनोरंजक उपन्यास कहा जाता है। इस वर्ग में तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी और ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं। इन उपन्यासों के लेखक भी मध्यवर्गीय ही थे लेकिन इनमें प्रत्यक्षत: मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण कम हुआ है किंतु जिस वर्ग के भी जीवन का चित्रण हुआ है उसके पीछे दृष्टि मध्यवर्गीय ही है। इन उपन्यासों ने मध्यवर्गीय पाठकों की अभिरुचि को बहुत प्रभावित किया। देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी इस प्रकार के उपन्यासों के रचनाकार थे। हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के विकास में गोपालराम गहमरी का अतुलनीय और अविस्मरणीय योगदान है। साहित्य की ऐसी कोई विधा नहीं रही जिसमें उन्होंने न लिखा हो। उनके संस्मरणों में हिंदी साहित्य के आरंभिक वर्षों का इतिहास, खड़ी बोली बनाम ब्रजभाषा को लेकर चली बहस, आजादी की चिंता आदि के बारे में जानकारी मिलती है। हिंदी में 'जासूस' शब्द के प्रचलन एवं जासूसी कथा लेखन के प्रवर्तन का श्रेय गोपालराम गहमरी को जाता है। उन्होंने 1900 ई. में 'जासूस' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया जो निरंतर 38 वर्षों तक निकलती रही। उन्होंने 200 से अधिक उपन्यास लिखे। जासूसी उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने हिंदी पढ़ने के लिए लोगों को उत्साहित किया। देवकीनंदन खत्री के बाद जिस किसी दूसरे लेखक की कृतियों को पढ़ने के लिए गैर हिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी तो वे गोपालराम गहमरी ही थे। उनकी रचनाओं में केवल रहस्य-रोमांच ही नहीं है बल्कि युग की संगतियाँ और विसंगतियां भी मौजूद हैं। यह गहमरी जी की अपनी मौलिकता थी कि उन्होंने ऐसी भाषा की खोज की जो आम पाठकों को साहित्य से जोड़ सके। आज आवश्यकता है कि साहित्येतिहास में उचित स्थान न पा सकने वाले भारतीय साहित्य के निर्माता गोपालराम गहमरी के साहित्य तथा उनके साहित्यिक कर्म के उचित मूल्यांकन की। आज जब दुनिया भर में सरकारी एवं गैर सरकारी जासूसी संस्थाएं विभिन्न स्तरों पर कार्यरत हैं और सायबर क्राइम की घटनाएँ बढती जा रही है वैसे में जासूसी उपन्यासों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

प्रारंभिक हिंदी उपन्यास लेखन की यह धारा साहित्येतिहास में उपेक्षित रही है । यही कारण रहा है कि इसका संरक्षण भी उचित रूप से नहीं हो पाया । साहित्येतिहास में जहाँ इन उपन्यासों को मनोरंजन प्रधान कहकर फुटकर खाते में डाल दिया गया वैसे में इन उपन्यासों का विस्तृत विवेचन एवं पुनर्प्रकाशन हिंदी उपन्यास की विकास धारा को समझने में सहायक होगा । वहीं उपन्यास लेखन की विभिन्न प्रवृत्तियों को आधुनिक अध्येता के समक्ष लाकर साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता को रेखांकित किया जाना आवश्यक है । इन उपन्यासों की गहन पड़ताल से हिंदी उपन्यास की प्रारंभिक स्थिति, विकास के आयाम और शिल्प संरचना तथा उसमें आए बदलाव को रेखांकित किया जा सकता है । हिंदी उपन्यास के उदय के साथ-साथ भारतीय मध्यवर्ग की सीमाओं और संभावनाओं की पड़ताल की जा सकती है । हिंदी उपन्यास के क्रमिक विकास को ध्यान में रखते हुए यह महत्त्वपूर्ण है कि लुगदी साहित्य का नाम देकर नजरअंदाज किए गए इन उपन्यासों क मूल्यांकन हो । यहाँ यह देखना भी महत्त्वपूर्ण होगा कि जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा उनके साहित्य में हुई है वे किस तरह तद्युगीन आचरण पुस्तकों के माध्यम से समाजसुधार के नवजागरण एजेंडे को पुष्ट करते हैं, आगे बढ़ाते हैं । गहमरी जी ने अनेक विधाओं में रचना की । औपन्यासिक क्षेत्र में वे एक ओर पहले से चली आ रही पद्धति पर उपदेश प्रधान (ननद भौजाई, आशा, नए बाबू, आदमी बनो, संकट में शिक्षा गृहलक्ष्मी, देवरानी जेठानी)[2] आचरण पुस्तकें लिख रहे थे वहीं दूसरी ओर हिंदी की जासूसी उपन्यास लेखन परंपरा का सूत्रपात भी कर रहे थे एवं जासूसी उपन्यास साहित्य संसार को समृद्ध भी कर रहे थे । यह देखने वाली बात है कि हिंदी की औपन्यासिक परंपरा को समृद्ध करते हुए, हिंदी को उपन्यासों के माध्यम से लोकप्रिय बनाने का जो सराहनीय कार्य वे कर रहे थे, आगे चलकर साहित्येतिहासकारों की उपेक्षा का शिकार वे क्यों और कैसे हो गए ? यहाँ तक कि उनके द्वारा रचित मौलिक उपन्यास साहित्यिक परिदृश्य पर से भी गायब हो गए । इन उपन्यासों की लोकप्रियता के कारणों

[2]. गोपालराम गहमरी (विनिबंध), संजय कृष्ण : पृष्ठ-79

तक पहुँचने की यात्रा में तत्कालीन समाज और पाठकों की मनोवृत्ति, लोकवृत्ति को समझने का प्रयास किया जाएगा । यह देखा जाएगा कि जासूसी उपन्यासों से पाठकों की किन मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है । पाठक समुदाय के इस विवेचन से एक समाज के काल-विशेष की मानसिकता का अवलोकन किया जा सकता है ।

हिंदी साहित्येतिहास लेखन में हिंदी उपन्यास के उद्भव और विकास को लेकर तरह-तरह की मान्यताएं रही हैं । वहीं आरंभिक हिंदी गद्य लेखन के दौर में भाषा संबंधी विवाद ने भी साहित्य की दो धाराएं निर्मित की । उसी दौर में कलात्मक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के बीच एक विभाजन रेखा खींची जाने लगी और लोकप्रिय साहित्य मसलन तिलस्मी और जासूसी साहित्य को साहित्यिक कोटि से बाहर कर दिया गया । साहित्य की अवधारणा ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज होती है इसीलिए इतिहास प्रक्रिया में साहित्य की अवधारणा भी बदलती रहती है । इस अध्याय के अंतर्गत निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया जाएगा -

- ऐतिहासिक संदर्भ में तत्कालीन जासूसी साहित्य के उद्भव के क्या कारण थे ?
- जासूसी उपन्यासों में तद्युगीन मूल्यों का संघर्ष और अंतर्द्वंद्व किस प्रकार प्रकट हुआ है ?
- वे कौन से सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारण रहे जिसने इस तरह के उपन्यासों की रचना को स्वीकृति प्रदान करने का कार्य किया ?
- हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में इन रचनाओं का क्या योगदान है ?
- तत्कालीन औपनिवेशिक साम्राज्य और भारतीयता के बीच का द्वंद्वात्मक सांस्कृतिक प्रतिरोध इन उपन्यासों में किस तरह प्रकट हुआ है ?
- आधुनिक चेतना की अभिव्यक्ति इन उपन्यासों में किस रूप में हुआ है ?

- यूरोपीय जासूसी उपन्यासों से हिंदी के जासूसी उपन्यास किस तरह भिन्न हैं और यूरोपीय जासूसी उपन्यासों का प्रभाव किस रूप में हिंदी के जासूसी उपन्यासों पर दिखाई देता है ?

साहित्य की परिकल्पना उसकी विविधता की भांति ही बहुत गंभीर और विस्तृत है। इसी व्यापकता को बरकरार रखने के लिए उसके हर अंग को जीवित रखना आवश्यक है। साहित्य की सही पकड़ पाठक वर्ग के पास होती है और वे ही किसी भाषा के साहित्य की विविधता को बनाए रखने में अहम भूमिका निभाते हैं। ऐसी स्थिति में पाठक वर्ग की रुचि को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। समाज में पाठकों के कई वर्ग हैं और जिस प्रकार वर्ग अलग है ठीक वैसे ही उनकी रुचियाँ भी अलग है। हिंदी का जासूसी साहित्य भी उसी रुचि का परिणाम है। हिंदी उपन्यास लेखन के प्रारंभिक दौर में इस तरह के उपन्यासों का लिखा जाना और पाठकों की स्वीकृति तत्कालीन समाज की व्याख्या एवं मनोविज्ञान को समझने की कुंजी साबित हो सकती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इनका आलोचनात्मक और समाजशास्त्रीय अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। गोपालराम गहमरी का लेखन तत्कालीन पाठकों की दिलचस्पी एवं स्वीकृति की देन है। ऐसे में तत्कालीन समय और रचना के पारस्परिक संबंध की उपेक्षा करके साहित्येतिहास लेखन की धारा के नैरंतर्य को नहीं समझा जा सकता। आज इस स्थिति से उबरने की आवश्यकता है। औपनिवेशिक परिवेश में जहाँ सत्ता के खिलाफ लिखना बहुत ही मुश्किल था वैसी परिस्थितियों में जासूसी उपन्यास लेखन की आवश्यकता क्यों पड़ी, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यूरोप में जहाँ सी. अगस्टे ड्यूपिन, इमील गाबोरियाउ, चार्ल्स डिकेन्स, आर्थर कॉनन डॉयल, अगाथा क्रिस्टी जैसे लेखकों ने जासूसी कथा लेखन की शुरूआत की वह परंपरा भारत में बंगाल होते हुए हिंदी में आई। यहाँ यह देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि हिंदी के जासूसी उपन्यास लेखन पर यूरोपीय जासूसी उपन्यासों का कैसा और कितना प्रभाव पड़ा जो बड़ी संख्या में अनुवाद के माध्यम से पाठक के सामने आ रहे थे ? यह भी देखना महत्त्वपूर्ण है कि यूरोपीय जासूसी उपन्यासों से हिंदी के जासूसी उपन्यास किन अर्थों में भिन्न है ? यथार्थवाद का जासूसी उपन्यासों के साथ क्या संबंध है ?

अपराध का समाजशास्त्र इस प्रकार के साहित्य को समझने में किस तरह मदद कर सकता है ? तत्कालीन औपनिवेशिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और विसंगतियों को इन जासूसी उपन्यासों में अभिव्यक्ति मिली या नहीं और मिली तो इसकी क्या सीमाएं रही ? जासूसी उपन्यासों की अभूतपूर्व लोकप्रियता के सामाजिक या मनोवैज्ञानिक कारण क्या रहे ? इन उपन्यासों की ऐतिहासिक उपलब्धि क्या रही ? हिंदी भाषा के विकास में इन उपन्यासों का क्या योगदान रहा ? इन उपन्यासों के माध्यम से लेखकों ने कैसे साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रतिरोध किया ?

यह अध्याय उपन्यास लेखन की परंपरा में जासूसी उपन्यास लेखन के उद्भव और विकास की पड़ताल से संबंधित है। साथ ही साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत तद्युगीन लोकवृत्त को समझने का प्रयास भी यहाँ किया गया है। तत्कालीन तिलिस्मी एवं जासूसी उपन्यासों ने भारतीय पाठकों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया था। इस दृष्टि से तत्कालीन भारतीय मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता का विश्लेषण भी यहाँ एक प्रमुख उद्देश्य है। हिंदी साहित्येतिहास लेखन में तिलस्मी एवं जासूसी उपन्यास लेखन लोकप्रियता के नाम पर हमेशा से उपेक्षित रहा है जिसके कारण इनका ऐतिहासिक मूल्यांकन संभव नहीं हो सका। इस अध्याय के अंतर्गत जासूसी उपन्यासों के समाजशास्त्र की सैद्धांतिकी के साथ-साथ हिंदी के जासूसी उपन्यासों के उदय और उसकी लोकप्रियता के पीछे कार्य कर रहे तद्युगीन परिस्थितियों पर भी विचार किया जाएगा।

1.1. साहित्य का समाजशास्त्र:

साहित्य का सीधा संबंध समाज से है। साहित्य को लेकर प्रचलित तमाम मान्यताएं स्पष्ट करती हैं कि साहित्य समाज से ही अपना रूप ग्रहण करता है। साहित्य की रचना प्रक्रिया समाज की सामाजिक, राजनितिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया से घनिष्ट रूप से जुड़ी हुई है। इस एकीकृत प्रक्रिया का ही परिणाम रहा है कि साहित्य और समाज के क्रमबद्ध अध्ययन के फलस्वरूप साहित्य के समाजशास्त्र का उदय हुआ। ध्यातव्य है कि

समाजशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित मत और उनके मत वैभिन्यताओं के अंतर्गत समाजशास्त्रियों द्वारा सामाजिक संबंधों, उसकी अंतःक्रियाओं, उसके परिणामों का क्रमबद्ध अध्ययन किया गया जिसका संबंध समाज और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के क्रमबद्ध अध्ययन से जुड़ा है । इस दृष्टि से साहित्य की व्युत्पत्ति, उसके विकास और साहित्येतिहास आदि के अध्ययन को साहित्य का समाजशास्त्र अपनी विषय वस्तु के अंतर्गत सम्मिलित करता है ।

"समाजशास्त्र, अनिवार्य रूप से समाज में स्थित मनुष्य का वैज्ञानिक, वस्तुगत अध्ययन है- जिसमें सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है । वह इस प्रश्न का उत्तर खोजता है कि समाज का अस्तित्व कैसे संभव है ? उसकी कार्यपद्धति, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक संस्थाएं जो मिलकर समाज का ढांचा बनाती है? वे कौन सी प्रक्रियाएँ हैं जिनसे समाज परिवर्तित होता है ? वह इन परिवर्तनों से सामाजिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन करता है ।"[3] तात्पर्य यह है कि समाजशास्त्र सामाजिक अन्तःक्रियाओं और सामाजिक संबंधों का अध्ययन-विश्लेषण करता है । समाजशास्त्र मनुष्य और समाज के विविध संगठनों, समुदायों, संस्थाओं, प्रक्रियाओं, संदर्भों, संघर्षों, परिवर्तनों, समस्याओं और समाधानों, का विवेचन करता है । गौरतलब है कि समाजशास्त्रीय चिंतन पद्धति को साहित्य या कला के अन्य रूपों पर लागू करने से साहित्य एवं कला में चित्रित समाज की ही पड़ताल नहीं होती बल्कि समाज की लोक वृत्ति को भी समझने का अवसर मिलता है । किसी भी विकासशील जीवंत समाज के लिए साहित्य और समाजशास्त्र का अध्ययन इस दृष्टि से अनिवार्य है । कहना न होगा कि साहित्य अपने मौखिककाल से अब तक समाज की विभिन्न गतिविधियों, स्थितियों, प्रक्रियाओं, संदर्भों से गुजरता हुआ, उसे अपने में समेटे हुए एवं अपने परिवेश के साथ अभिव्यक्ति करता हुआ हमेशा प्रगतिशील होता है ।

[3] उपन्यास का समाजशास्त्र, गरिमा श्रीवास्तव (संपादिका), भूमिका : पृष्ठ – v

साहित्य के समाजशास्त्र की दिशा में अध्ययन का पहला प्रयास पाश्चात्य समाजशास्त्री एलिजाबेथ और टामबर्न्स द्वारा किया गया। फ्रेंच विदुषी मादाम स्तेल (1766-1817) ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने साहित्य पर धर्म और कानून के प्रभाव और धार्मिक प्रयासों तथा कानून पर साहित्य के प्रभाव का अध्ययन किया। स्तेल का मानना था कि साहित्य का अपने समय के राजनीतिक विश्वासों और गतिविधियों से गाढ़ परिचय होना चाहिए। उन्होंने साहित्य के सामाजिक आधार का विवेचन करते हुए साहित्य पर प्राकृतिक परिवेश और प्रजाति का प्रभाव स्पष्ट किया। उनका यह प्रयास आरम्भिक था, अक्रमिक और अनगढ़ था, इसके बावजूद, अगस्त काम्ते, तेन और बाद के समाजशास्त्रियों ने कुछ हद तक विकासात्मक अनुकरण किया।

अगस्त काम्ते (1798-1857) को समाजशास्त्र का जनक माना जाता है। समाजशास्त्र की दिशा में उन्होंने अपने विचार को सुव्यवस्थित तरीके से रखा। उन्होंने समाज की प्रगतिशीलता को ध्यान में रखते हुए समाजशास्त्र से संबंधित दो दृष्टियों का प्रतिपादन किया। जिसमें पहला सामाजिक स्थितिशास्त्र और दूसरा सामाजिक गतिशास्त्र है। सामाजिक स्थितिशास्त्र के अंतर्गत उन्होंने सामाजिक संगठनों एवं सामाजिक स्थिरता संबंधी नियमों की पड़ताल की वहीं दूसरी ओर सामाजिक गतिशास्त्र के अंतर्गत उन्होंने सामाजिक उन्नति और विकास की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। कहना न होगा कि वे समाजशास्त्र को सामाजिक नियोजन और और सामाजिक पुनर्निर्माण के विज्ञान के रूप में देखते हैं। उन्होंने सामाजिक नियोजन और सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए वैज्ञानिक, कलाकार, कवि, गायक, नर्तक, चिकित्सक आदि विविध क्षेत्रों में अपनी सेवा देने वाले व्यक्तियों को को महत्त्वपूर्ण माना।

फ़्रांसिसी विचारक अडोल्फ़ तेन (1823-93) को साहित्य के समाजशास्त्र का प्रवर्तक माना जाता है। तेन की दृष्टि में "कला समाज की सामूहिक अभिव्यक्ति है। वह एक ऐसा दर्पण है जिसे कहीं पर भी ले जाया जा सकता है तथा जिसमें प्रकृति और जीवन के सभी पक्ष प्रतिबिंबित होते हैं। उन्होंने साहित्य का मूल्यांकन प्रजाति, काल और पर्यावरण

की अवधारणा पर की है ।"[4] तेन के साहित्य संबंधी समाजशास्त्रीय चिंतन को स्पष्ट करते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं- "कला और साहित्य की कृतियों को सामाजिक तथ्य तथा घटना के रूप में देखना, उनकी उत्पत्ति की व्याख्या में कार्य कारण-संबंध स्थापित करना, प्रकृतिविज्ञानों की वस्तुपरक पद्धति को अपनाना और कृतियों को मानव चेतना की अभिव्यक्ति समझना उनकी विशेषताएँ हैं ।"[5]

साहित्य और समाज के संबंधों की वस्तुपरक व्याख्या की प्रक्रिया में तेन का साहित्य का साहित्य का समाजशास्त्र आकार ग्रहण करता है । मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं-"उनके साहित्य के समाजशास्त्र के चार मुख्य पक्ष हैं- (1) साहित्य के भौतिक सामाजिक मूलाधार की खोज, (2) लेखक के महत्त्व का विश्लेषण, (3) साहित्य में समाज के प्रतिबिंबन की व्याख्या और (4) साहित्य का पाठक से संबंध ।"[6] आगे वे लिखते हैं- "तेन के साहित्य के समाजशास्त्र का प्रस्थान-बिंदु है- साहित्य के मूलाधार की खोज । वे साहित्यिक कृतियों को सामाजिक तथ्य तथा घटनाएँ मानते हैं और उनकी उत्पत्ति के कारणों की खोज करते हैं । यहां उनका कार्य-कारण सिद्धांत काम करता है ।"[7] वहीं मैनेजर पाण्डेय तेन के चिंतन बारे में लिखते हैं, कि -"वे कला और साहित्य की कृतियों को सामाजिक उत्पादन मानते हैं । इसलिए सबसे पहले उत्पादक पर ध्यान देते हैं और बाद में उत्पादन की परिस्थितियों पर । उनके अनुसार कला मनुष्य की मानसिकता की उपज है ।"[8] इस मानसिकता की उपज की पड़ताल करते हुए तेन ने साहित्य की उत्पत्ति और विकास में समाज की भूमिका स्पष्ट करते हुए प्रजाति, परिवेश और युग को कारण माना । तेन के साहित्यिक समाजशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष पाठक समुदाय भी रहा है । उन्होंने साहित्य के रूप निर्माण तथा परिवर्तन में पाठकों की भूमिका और उसकी रुचि की ओर भी संकेत किया है । इस दृष्टि से 17वीं सदी के फ्रांसीसी नाटकों पर दरबारी संस्कृति और सामंत वर्ग के प्रभाव को उन्होंने लक्ष्य किया है ।

---

[4].साहित्य का समाजशास्त्र, अवधारणा: सिद्धांत एवं पद्धति, विश्वंभर दयाल गुप्ता, पृष्ठ- 21
[5] . साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय : पृष्ठ-122
[6] .साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ- 123-124
[7]. वही, पृष्ठ -124
[8] .वही, पृष्ठ-124

तेन के बाद साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की परंपरा में लियोलावेंथल महत्वपूर्ण माने जाते हैं। यथार्थवाद के पैरोकार लियोलावेंथल ने साहित्य की सामाजिकता का विश्लेषण करते हुए उसमें मनोविज्ञान की उपयोगिता को महत्त्वपूर्ण माना। लावेंथल की साहित्यिक धरना को लक्ष्य करते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं- "लावेंथल के लेखन का लक्ष्य है साहित्य की सामाजिकता का विश्लेषण। लेकिन वे समाजिकता की खोज साहित्य के विशिष्ट स्वरुप की पहचान के साथ करते हैं। उनकी दृष्टि के मूल में साहित्य की ऐसी धारणा है जो उसके सामाजिक स्वरूप की ओर संकेत करती है। वे मानते हैं कि साहित्य वैयक्तिक अनुभवों का ऐतिहासिक भंडार है। उसमें प्रेम और प्रकृति की नितांत निजी अनुभूतियां होती हैं, लेकिन वे भी सामाजिक संदर्भ से प्रभावित रहती हैं। यही कलात्मक कल्पना की विशिष्टता है। साहित्य से हमें यह मालूम होता है कि किसी युग में जीवन का अनुभव कैसा था। वे साहित्य में यथार्थ के चित्रण की तुलना में अनुभूति और उसके प्रति दृष्टि को अधिक महत्त्व देते हैं, इसीलिए वे यथार्थ चित्रण से अधिक लेखक या रचना की सामाजिक चेतना का विश्लेषण करते हैं। उनके अनुसार साहित्य से पाठक को जो जीवनानुभव मिलते हैं वे वैयक्तिक के साथ-साथ सामाजिक ऐतिहासिक भी होते हैं।"[9] गौरतलब है कि लावेंथल ने कृतियों के ग्रहण और पाठकीय प्रभाव का अध्ययन करते हुए कृति के महत्त्व और पाठकों की मानसिकता का भी विश्लेषण किया। लावेंथल ने लोकप्रिय संस्कृति और लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्र का भी विश्लेषण किया। "उन्होंने लोकप्रिय साहित्य के विभिन्न रूपों के सामाजिक अर्थ और अभिप्राय की भी छानबीन की है। वे साहित्य की संपूर्ण प्रक्रिया के समाजशास्त्री हैं इसलिए उन्होंने साहित्य के उत्पादन, वितरण और उपभोग की पूरी प्रक्रिया को सामाजिक प्रक्रिया से जोड़कर देखा।"[10] लावेंथल लोकप्रिय साहित्य को सामाजिक मूल्य व्यवस्था का जानने का महत्त्वपूर्ण स्रोत समझते हैं। निसंदेह उनका यह चिंतन प्रारंभिक हिंदी जासूसी उपन्यास के विश्लेषण में निश्चित तौर पर सहायक है।

[9] .वही, पृष्ठ-134
[10] .वही, पृष्ठ-139

साहित्य के समाजशास्त्रीय परंपरा में द्वितीय विश्वयुद्ध की भयानक त्रासदी के बाद लुसिए गोल्डमान (1913-71) के विचार महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं । उन्होंने एक समृद्ध और व्यापक ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय दृष्टि का निर्माण किया । उन्होंने संस्कृति के समाजशास्त्र का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जिसके अंतर्गत समाज से संस्कृति के ऐतिहासिक, सामाजिक और सौन्दर्यशास्त्रीय संबंधों की पड़ताल संभव हुई । बकौल मैनेजर पाण्डेय "गोल्डमान ने साहित्यिक कृति के सामाजिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रत्येक कृति किसी लेखक की रचना होती है और वह लेखक के विचारों तथा अनुभूतियों को व्यक्त करती है । लेकिन वे विचार और भाव समाज तथा वर्ग के दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार और चिंतन से प्रभावित होते हैं । उनके स्वरूप को लेखक के अपने वर्ग या समूह और समाज के दूसरे व्यक्तियों के विचारों और भावों से जोड़कर अंतर्वैयक्तिक संबंध भावना के रूप में ही समझा जा सकता है ।"[11] इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि साहित्य का समाजशास्त्र साहित्यिक आस्वाद की प्रक्रिया में सामाजिक वृत्ति की भी पड़ताल करता है । गोल्डमान ने पूंजीवाद के विकास के साथ उपन्यास के स्वरूप के इतिहास को जोड़ा । इस चिंतन प्रक्रिया को औपनिवेशिक भारत के आधुनिक-काल में पूंजीवाद के विकास और गद्य के विकास के साथ-साथ उपन्यास के विकास और मध्यवर्ग के उभार के संदर्भ में देखा जा सकता है । गोल्डमान साहित्य के समाजशास्त्र पर बात करते हुए जिस 'विश्व दृष्टि' की अवधारणा पर बात करते हैं वह सामाजिक वर्ग की एतिहासिकता से संबंधित है । उपन्यास के जन्म और विकास के परिप्रेक्ष्य में यह अवलोकनीय है ।

साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन और चिंतन की परंपरा में रेमंड विलियम्स का नाम विचारणीय है । उन्होंने समकालीन ब्रिटिश समाज और संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर बात करते हुए सांस्कृतिक प्रक्रिया को लोकतंत्र और समाजवाद के लिए अनिवार्य माना । उन्होंने संस्कृति को सामाजिक व्यवस्था का अनुभव स्वीकारते हुए उसे संप्रेषण, पुनरुत्पादन और अनुसंधान की संभावना की एक व्यवस्था स्वीकारते हैं । मैनेजर पाण्डेय, रेमंड

[11] .वही, पृष्ठ- 148

विलियम्स के चिंतन और अंग्रेजी में प्रकाशन व्यवस्था के इतिहास पर बात करते हुए लिखते हैं, कि -"रेमंड विलियम्स ने सामान्य रूप से संस्कृति और विशेष रूप से साहित्य के विस्तार में प्रेस और पत्रकारिता की भूमिका का विवेचन 'लंबी क्रांति' नाम की पुस्तक में किया है । उन्होंने अंग्रेजी में प्रकाशन और पत्रकारिता के इतिहास की सात अवस्थाओं की चर्चा की है । पहली अवस्था के बारे में उन्होंने लिखा है कि अंग्रेजी प्रेस के विकास की कहानी मध्यवर्गीय पाठक समुदाय के विकास की कहानी है । 18वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी पत्रों और पत्रिकाओं के विकास के साथ लोकप्रिय उपन्यासों और घरेलू नाटकों का विकास हुआ । यह एक तरह से नये उदीयमान वर्ग की सांस्कृतिक आवश्यकताओं और मांगों का स्वाभाविक परिणाम था ।"[12] अंग्रेजी की इस प्रकाशन व्यवस्था और पत्रकारिता के इतिहास को भारतीय संदर्भ में देखें तो 19वीं सदी का भारत और यहाँ की प्रकाशन व्यवस्था, पत्रकारिता का इतिहास भी ऐसा ही रहा है । भारतीय मध्यवर्ग के विकास, साथ ही गद्य की विभिन्न विधाओं के उद्भव और विकास की कहानी ऐसी ही है । हिंदी उपन्यास के आरंभिक काल में तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों जैसे लोकप्रिय साहित्य का जो स्वरुप दिखाई देता है उसे हम अंग्रेजी के लोकप्रिय उपन्यासों और घरेलू नाटकों के विकास के संदर्भ में देख सकते हैं । इस तरह के लोकप्रिय उपन्यासों का प्रकाशन जहाँ मनोरंजन का एक साधन था वहीं उस युग के जीवन मूल्य और परिस्थितियों का चित्रण भी यहाँ लक्ष्य किया जा सकता है । यह एक उद्योग की तरह था । प्रकाशन व्यवसाय को लक्ष्य करते हुए फ्रेंचेस्का ओरसिनी ने बनारस में स्थापित प्रकाशन व्यवसाय की चर्चा करते हुए 'भारत जीवन प्रेस' (स्थापित-1884 ई.) की चर्चा की है, जहाँ सन् 1884 से 1900 तक प्रकाशित रचनाओं में अधिकांश मनोरंजन प्रधान रचनाएँ थीं ।"[13] साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के अंतर्गत इन्हीं चिंतन परंपराओं के आधार पर साहित्य का विवेचन और विश्लेषण होता है । साहित्य के समाजशास्त्र में साहित्य के दोनों वर्गों आभिजात्य साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के सामाजिक संदर्भों, उद्देश्यों और

[12] .वही, पृष्ठ-194

[13] .हिंदी गद्य : विन्यास और विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ- 101

अस्मिताओं का अध्ययन करते हैं। इसी के साथ लोकप्रिय साहित्य का आभिजात्य वर्ग द्वारा नकारे या ख़ारिज किए जाने की पहचान और पड़ताल भी शामिल है।

ध्यातव्य है कि प्रारंभिक काल में साहित्य सृजन को दैवीय या अलौकिक शक्तियों का की प्रेरणा का परिणाम माना जाता रहा है। भारतीय साहित्यानुशीलन की परंपरा में भी ऐसी मान्यताएं प्रचलित रही हैं। भारत में साहित्य चिंतन की सामाजिक दृष्टि का विकास आधुनिक युग की ही देन है। पाश्चात्य साहित्य समाजशास्त्रियों की तरह भारतीय चिंतकों ने भी साहित्य के समाजशास्त्र पर कार्य किया। बालकृष्ण भट्ट, हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदर दास, रामकुमार वर्मा, गुलाबराय, मुक्तिबोध, नामवर सिंह,रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, शिवकुमार मिश्र, डी.पी मुखर्जी और पूरनचंद्र जोशी आदि ने साहित्य के विवेचन और विश्लेषण को समाज से जोड़ते हुए साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन का द्वार खोला। मुक्तिबोध साहित्य को केवल सौन्दर्यशास्त्रीय नजरिए से देखना पसंद नहीं करते। वे कहते हैं "जो लोग साहित्य के केवल सौन्दर्यात्मक मनोवैज्ञानिक पक्ष को चरम मानकर चलते हैं वे समूची मानव सत्ता के प्रति दिलचस्पी न रख सकने के तो अपराधी हैं ही, साहित्य के मूलभूत तत्व, उनके मानवी अभिप्राय तथा मानव विकास में उनके ऐतिहासिक योगदान अर्थात दूसरे शब्दों में साहित्य के स्वरुप-विश्लेषण तथा मूल्यांकन न कर पाने के भी अपराधी हैं।"[14] मुक्तिबोध जिन संदर्भों में यह बात कह रहे हैं वह निश्चित तौर पर सामाजिक संवेदना की उपज है।

"साहित्य के समाजशास्त्र की दो मुख्य धाराएं हैं : मीमांसापरक और अनुभववादी। एक में साहित्य के सामाजिक महत्त्व और अर्थ का विश्लेषण होता है और दूसरी धारा में साहित्य के सामाजिक अस्तित्त्व का। पहली धारा साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति की खोज करती है और दूसरी समाज में साहित्य की वास्तविक स्थिति की पहचान। पहली को प्रायः साहित्यिक समाजशास्त्र या समाजशास्त्रीय आलोचना कहा जाता है दूसरी को साहित्य

[14] .नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृष्ठ-112

का समाजशास्त्र ।"[15] इसी के अंतर्गत साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की कई पद्धतियाँ हैं, जिसमें विधेयवादी दृष्टिकोण, मार्क्सवादी विश्लेषण, संरचनावादी आदि आते हैं । निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन उन पहलुओं और कारणों की पड़ताल करता है जिससे किसी रचना की प्रासंगिकता, उपयोगिता और लोकप्रियता स्थापित या खंडित होती है ।

1.2. उपन्यास का समाजशास्त्र :

साहित्य के समाजशास्त्रियों के बीच उपन्यास सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है । उपन्यास का जनतांत्रिक स्वाभाव इसका मुख्य कारण है । कतिपय यही कारण है कि साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास समाजशास्त्रीय विश्लेषण के सबसे अधिक अनुकूल है । राल्फ फॉक्स उपन्यास को केवल गद्य में लिखी हुई कथा नहीं मानते हैं । उन्होंने उपन्यास को मानव जीवन का गद्य माना है । वे मानते हैं कि उपन्यास कला का प्रथम गद्य रूप है, जो मानव को समग्रता से अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है । उनका मानना है कि "उपन्यास गद्य को एक विशिष्ट यथार्थ-दृष्टि प्रदान करता है, जो उसी की पहुँच में है , काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला अथवा संगीत द्वारा संभव नहीं ।"[16] इस दृष्टि से उपन्यास गद्य विधा में अपनी विशिष्टता स्थापित करता है । उपन्यास की इस विशिष्टता को लक्ष्य करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं- "अगर आपको इतिहास से प्रेम है, तो आप अपने उपन्यास में गहरे से गहरे ऐतिहासिक तत्वों का निरूपण कर सकते हैं । अगर आपको दर्शन से रुचि है, तो आप उपन्यास में महान दार्शनिक तत्वों का विचार कर सकते हैं । अगर आप में कवित्व शक्ति है तो उपन्यास में उसके लिए भी काफी गुंजाइश है । समाज, नीति, विज्ञानं, पुरातत्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान है ।"[17] निश्चित तौर पर उपन्यास का क्षेत्र व्यापक होता है । इसमें सभी साहित्यिक विधाओं का समावेश संभव है । समसामयिक समाज की समस्याओं, जीवन मूल्यों को उभर कर पाठक के सम्मुख रखना इसकी मुख्य विशेषता है ।

[15] .साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ- xiv
[16] .हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, प्रताप नारायण टंडन , पृष्ठ- 13
[17] . वही,पृष्ठ- 10

यहाँ सामाजिक परिवर्तनशीलता को स्वीकृति मिलती है साथ ही बदलते हुए युगबोध की पहचान कर उसे चित्रित करने की क्षमता इसमें होती है।

मैनेजर पाण्डेय उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण और उपन्यास विधा पर गौर फरमाते हुए लिखते हैं –"अपने समय, समाज और इतिहास की प्रक्रिया से परिभाषित मनुष्य ही उपन्यास रचना का लक्ष्य है, और समाजशास्त्रीय अन्वेषण का भी। एक उसकी कलात्मक पुनर्रचना का माध्यम है तो दूसरा बौद्धिक विश्लेषण का साधन। समाजशास्त्र में मनुष्य की सामाजिकता की पहचान के अनेक रास्ते हैं। उनमें से जो रास्ता साहित्य संसार से होकर जाता है वह सबसे सुगम और विश्वसनीय तब होता है, जब वह उपन्यास के रचना संसार से गुजरता है, क्योंकि वहाँ न तो कविता की तरह आत्मपरकता की फिसलन होती है और न नाटक के यथार्थ का मायालोक होता है। उपन्यास की कला में मौजूद मनुष्य के समाजसम्बद्ध और इतिहास सापेक्ष रूप को आसानी से पहचाना जा सकता है। वहाँ कल्पना में रची बसी जिंदगी की वास्तविकता को आसानी से पाया जा सकता है। इसीलिए साहित्य का समाजशास्त्री सबसे पहले और सबसे अधिक उपन्यास की ओर मुड़ता है। उपन्यास के समाजशास्त्र के विशेष विकसित होने का भी यही कारण है।"[18] तात्पर्य यह है कि उपन्यास में समाज की जटिलताएँ, जीवन-मूल्य, ऐतिहासिकता, युगबोध का जैसा समावेश मिलता है वह किसी अन्य साहित्यिक विधा में देखने को नहीं मिलता है। यही कारण है कि यूरोप में आधुनिक युग के साथ जिस ऐतिहासिक चेतना का विकास होता है उसी के साथ साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में उपन्यास विधा का भी उद्भव होता है। भारतीय संदर्भ में भी देखें तो औपनिवेशिक परिस्थियों के बीच आधुनिक चेतना के विस्तार और नवजागरणकालीन परिस्थियों के बीच गद्य विधाओं के विकास के साथ उपन्यास विधा का उदय होता है।

भारत में उपन्यास विधा के उद्भव की ऐतिहासिक पड़ताल करते हुए गरिमा श्रीवास्तव लिखती हैं- "भारत में उपन्यास का जन्म औपनिवेशिक स्थितियों में हुआ। भारत को धीरे-धीरे ब्रिटिश राज के भीतर लाने की कोशिश एक लंबे समय की सोची-समझी

[18] .उपन्यास और लोकतन्त्र, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ- 37

योजना का परिणाम थी । भारत के पूर्णरूप से औपनिवेशिक शासन के तहत आते ही देशी सांस्कृतिक विरासत के अतिक्रमण पर बल दिया जाने लगा, अर्थात अब निहित उद्देश्य सामने आ गए । ब्रिटिश राज ने देश के बुद्धिजीवी वर्ग के सहयोग से देश की संस्कृति पर अपने वर्चस्व की स्थापना का प्रयास किया और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी वर्ग नई सांस्कृतिक रुची तथा संवेदनशीलता का वाहक बन गया । बुद्धिजीवी मध्यवर्ग अब अंग्रेजी संस्कृति को अपनाने और सीखने लगा, प्रकारान्तर से आदर्श मानने लगा । लेकिन देशी भाषाओं के माध्यम से ज्ञान का प्रसार भारतीय जनमानस के लिए ज्यादा आत्मीय था, जिसके विपरीत औपनिवेशिक प्रणाली से प्रदत्त ज्ञान और विज्ञान भारतीयों के लिए अब भी विदेशी था क्योंकि उसकी ज्ञानशास्त्रीय मान्यताओं की जड़े भारत में नहीं थी । वैसे भी इस शिक्षा का उद्देश्य भारतीयों पर अपना वर्चस्व-स्थापित करना ही था, जिसके तहत समाज के एक छोटे-से वर्ग को ही शिक्षित किया जाना था । ब्रिटिश सरकार की इस शिक्षा नीति के कारण समाज में अंग्रेजी की पढ़ाई पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा- इस सदव्यवहार के फलस्वरूप जिस सांस्कृतिक संसार के द्वार खुले उसका केंद्र औपनिवेशिक शक्ति के महानगर में था, उधर उस महानगर की जनता में , ओ मनोनी के शब्दों में कहें तो 'परावलंबन की मानसिकता' और एडवर्ड शिल्स के शब्दों में 'प्रांतीयता' की भावना की सृष्टि की । इससे सभी क्षेत्रों साहित्य, रंगमंच, चित्रकला, संगीत, आहार, वार्तालाप में सांस्कृतिक आदर्श का स्रोत ब्रिटिश जीवन शैली बन गयी । सांस्कृतिक करक के रूप में प्रेस और मुद्रण कला के प्रचार-प्रसार से लिखित शब्द का महत्त्व उन्नीसवीं सदी के दौरान बढ़ता ही गया । अब पाठक और लिखित शब्द के बीच एक नया संबंध स्थापित हुआ । घर में खाली वक्त को भरने का काम छपी हुई पुस्तकें करने लगीं और शिक्षित मध्यवर्ग इसकी और आकर्षित हुआ । इस तरह पश्चिमका अपरिचित सांस्कृतिक संसार उनके निकट आ गया । उपन्यास जैसी साहित्यिक विधाएं इसी प्रकिया की उपज थीं ।"[19] कहने का तात्पर्य यह है कि औपनिवेशिक परिवेश के बीच जिस मध्यवर्ग का विकास हुआ वह यूरोपीय मध्यवर्ग से भिन्न अपनी प्रवृत्ति में ब्रिटिश संस्कृति को अपना आदर्श मानने वाला था । भारतीय मध्यवर्ग सुविधाभोगी जमींदार वर्ग के

[19] . उपन्यास का समाजशास्त्र, सं- गरिमा श्रीवास्तव, भूमिका से उद्धृत, पृष्ठ- xlii

रूप में विकसित होता है । हिंदी उपन्यास के आरंभिक दौर पर दृष्टिपात करें तो यही मध्यवर्ग उपन्यास का केंद्र भी रहा । जहाँ इनकी सुविधाभोगी प्रवृत्ति, ब्रिटिश संस्कृति की नकल करने वाली प्रवृत्ति का चित्रण मिलता है । लाला श्रीनिवास दास कृत उपन्यास 'परीक्षागुरु' को इस संदर्भ में देखा जा सकता है । यहाँ तक की जासूसी उपन्यासों में भी भारतीय मध्यवर्ग की इस प्रवृत्ति का चित्रण मिलता है ।

"उपन्यास की समाजशास्त्रीय व्याख्या की अनेक दृष्टियां और पद्धतियाँ हैं । सबसे पुराना दृष्टिकोण विधेयवाद का है, जिसका नया रूप अनुभववाद में दिखायी देता है । इसमें एक ओर उपन्यास के सामाजिक अस्तित्व को निर्धारित करने वाले पाठकीय ग्रहण का विवेचन किया जाता है । उपन्यास के समाजशास्त्र का एक और रूप मार्क्सवादी विश्लेषणमें मिलता है, जिसमें अंतर्वस्तु और रूप में निहित सामाजिक यथार्थ, चेतना, विचारधारा आदि की खोज होती है । फ्रैंकफुर्त समुदाय के आलोचनात्मक समाजशास्त्रियों में से एक लियोलावेंथल ने आलोचनात्मक समाजशास्त्र की दृष्टि से उपन्यासों का विश्लेषण और मूल्यांकन किया है । कुछ समाजशास्त्रियों ने संरचनावाद की पद्धति के सहारे उपन्यास का समाजशास्त्र विकसित करने का प्रयास किया है । गोल्डमन ने मार्क्सवाद और संरचनावाद के बीच एकता स्थापित करते हुए उत्पत्तिमूलक संरचनावाद की पद्धति से एक नए ढंग का उपन्यास का समाजशास्त्र विकसित किया है ।"[20]

गौरतलब है कि समाजशास्त्र की इस परंपरा में लोकप्रिय उपन्यासों का भी विवेचन और विश्लेषण यूरोप की साहित्यिक आलोचना में मिलता है । प्रसिद्ध मार्क्सवादी अर्थशास्त्री अर्नेस्ट मैंडल, मार्क्स, ग्राम्शी, लावेंथल आदि ने लोकप्रिय उपन्यासों के समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर पर्याप्त ध्यान दिया है । लेखक-पाठक-प्रकाशक के संबंधों की भी पड़ताल हुई है । लोकप्रिय साहित्य की अनिवार्यता और उसके रूप पक्ष पर भी विशद चर्चा वहां देखने को मिलता है । लेकिन हिंदी साहित्यालोचना के परिदृश्य की बात करें तो यहाँ साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की पद्धति को लेकर भी रवैया काफी उदासीन ही है । ऐसे में हिंदी

[20] .उपन्यास और लोकतन्त्र, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ- 38-39

साहित्य की शुद्धतावादी प्रवृत्ति ने साहित्य को लोकप्रिय साहित्य और गंभीर साहित्य की बाइनरी में बाँट दिया। लोकप्रिय उपन्यासों की व्यावसायिकता और मनोरंजन प्रधान प्रवृत्ति को लक्ष्य करते हुए साहित्यालोचकों ने उपन्यास के आरंभिक दौर से ही इस तरह के उपन्यासों को नकार दिया जिससे विश्लेषण संभव नहीं हो पाया। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि यह उदासीनता आज तक बनी हुई है।

इस श्रेणी के उपन्यासों को लेकर रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं "इन उपन्यासों का लक्ष्य घटना वैचित्र्य रहा; रस संचार, भावविभूति या चरित्र निर्माण नहीं। ये वास्तव में घटना प्रधान कथानक या किस्से हैं जिनमें जीवन के विभिन्न पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य की कोटि में नहीं आते।"[21] कहना न होगा कि रामचंद्र शुक्ल जिस दौर में हिंदी साहित्य का इतिहास लिख रहे थे, वह दौर राष्ट्रीय आंदोलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। रामचंद्र शुक्ल का साहित्यिक चिंतन मूलतः रसवादी है। रस-मीमांसा में 'संघर्षावस्था' को वे केंद्र में रखते हैं। इसलिए उनके प्रिय कवि तुलसीदास हैं और प्रिय काव्यकृति 'रामचरितमानस'। यही उनकी आलोचना के केंद्र में भी है। यही उनकी आलोचना की उपलब्धि भी है और सीमा भी। क्योंकि हिंदी उपन्यास संबंधी चिंतन में भी उनका यह दृष्टिकोण काम करता है जिससे आरंभिक उपन्यास लेखन की एक धारा अलक्ष्य रह जाती है। लुगदी साहित्य के नाम पर शुक्लोत्तर आलोचना में भी इस धारा के उपन्यास को ख़ारिज किया जाता रहा और आरंभिक उपन्यास लेखन के विकास की अवधारणा स्पष्ट नहीं हो पाती है।

ध्यातव्य है कि पश्चिम में जासूसी उपन्यास की आलोचना और सैद्धान्तिकी को लेकर पर्याप्त कार्य हुआ है। वहां इस श्रेणी के उपन्यासों को समाज को समझने का एक कारगर जरिया मान गया है। इस तरह के उपन्यासों पर व्यवस्थित अध्ययन स्वयं कार्लमार्क्स ने किया है। मार्क्स अपराध के इतिहास में ही अपराध संबंधी उपन्यासों की कुंजी खोजते हैं। युजेन सुई के उपन्यास 'पेरिस-रहस्य' का विश्लेषण करते हुए उन्होंने उस समय के यूरोप में

[21]. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल : पृष्ठ-340

बुर्जुआ वर्ग में इस उपन्यास की लोकप्रियता के कारणों को स्पष्ट किया है । वहीं ग्राम्शी ने लोकप्रिय संस्कृति के विभिन्न पक्षों, रूपों, रचनाओं का विश्लेषण करते हुए मार्क्सवादी समाजशास्त्र की पद्धति का विकास किया । लोकप्रिय साहित्य के अध्ययन को लेकर उनकी धारणा दो स्तर पर काम करती है । पहले स्तर पर वे लोकप्रियता को जातीयता से या राष्ट्रीयता से जोड़ कर देखते हैं । दूसरे स्तर पर वे व्यावसायिक रूप से सफल लोकप्रिय साहित्य और कला का विश्लेषण करते हैं । लोकप्रिय साहित्य को लेकर एक पत्र में वे कुछ प्रश्न रखते हैं – "आखिर क्यों ये पुस्तकें सबसे अधिक पढ़ी जाती हैं और प्रकाशित होती हैं ? ये पुस्तकें पाठकों की किन मानसिक आवश्यकताओं को पूरा करती हैं और किन आकांक्षाओं को संतुष्ट करती हैं ? इस साहित्य में ऐसी कौन सी भावनाएं और प्रवृत्तियां पाई जाती हैं जो पाठकों को इतना अधिक पसंद आती हैं ?"[22]

"लोकप्रिय कला और साहित्य से संबंधित ग्राम्शी ने अपने पूरे लेखन में इन सवालों के उत्तर खोजने की कोशिश की है । उनके अनुसार लोकप्रिय साहित्य के अधिक पढ़े जाने का एक कारण यह है कि उसमें मानवीय भावों की तात्कालिकता होती है जो पाठकों के मन को जल्दी छूती है । दूसरा कारण आधुनिक समाज में जीवन की स्थितियां हैं । प्रायः लोग जीवन की व्यवस्थाबद्ध, जकड़-बंदी और आरोपित अनुशासन से मुक्त होने के लिए फैंटेसी और सपनों का सहारा लेते हैं, जो इन उपन्यासों में बहुत मिलते हैं । कुछ लोग जीवन में अनिश्चय और आशंका का सामना करते हैं तो साहित्य में आश्वासन और स्थिरता की खोज करते हैं । यही नहीं, जीवन में भद्दी और अश्लील साहसिकता का सामना करने वाले साहित्य में सुन्दर साहसिक अभियानों की कथाओं में रस लेते हैं ।"[23] अब प्रश्न यह उठता है कि पश्चिम के गंभीर समाजशास्त्रीय अध्ययन में जिस तरह जासूसी उपन्यासों को लेकर विश्लेषण हुआ है, क्या वह गंभीरता भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी जासूसी उपन्यास को लेकर नहीं संभव है ? बिल्कुल संभव है, शर्त है कि हमें साहित्यिक बंटवारे से ऊपर उठकर सोचना होगा । हमें पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर अध्ययन की अनिवार्यता को समझना होगा । हमें तद्युगीन परिवेश और

[22] . कल्चरल राइटिंग , रेफरेन्सेस, अंतोनियो ग्राम्शी, पृष्ठ : 342

[23] .साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय : पृष्ठ- 325-326

लोकवृत्ति को समझने की जरूरत है । हमें तद्युगीन प्रेस के विकास, लिथोग्राफी के चलन, जासूसी उपन्यासों की लोकप्रियता को व्यावसायिकता, पठनीयता, और पाठकों की रुचि की परिधि में समझना होगा । क्योंकि 19 वीं सदी का मध्य, उत्तर भारत में व्यापारिक प्रकाशनों और मनोरंजन का वह दौर बना जहाँ 'पाठक' की संख्या में अद्वितीय वृद्धि हुई । यह दौर 1860 का था, ध्यातव्य है कि चंद्रकांता सरीखे उपन्यासों के जन्म से लगभग 32 वर्ष पूर्व यह दौर आ चुका था । मौखिक कवित्त, गीत, रुबाइयाँ आदि जो लोक में प्रचलित थे, उन्हें इसी दौर में प्रकाशित किया गया, जिसकी खूब बिक्री भी हुई । बकौल फ्रेंचेस्का – *"Commercial publishing, by contrast, was shaped to a much greater extent by cheap technology of lithography that is, by what Indian printers and publishers felt could make it into print from among pro-print and or written tradition, and by these sense of potential audiences it was also shaped by the monument of publishing itself. Printing books themselves created tests and attracted new audiaences by easily crossing the Hindi-Urdu script divide, thanks to lithography and the availability of bylingual copyrights…the entertainment should be more flexible and floid and mixed than literacy as educational polishing will of course come as surprise to historians of the books. So, while the relationship between the two dominant Indian languages in north India, Hindi and Urdu, was largely antagonistic and competitive in the reformist field, it was symbolic in the field of commercial publishing and theatre the relationship between these two fields was often complementary."*[24]

उपरोक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'प्रिंटिंग प्रेस' के 1860 के आसपास उछाल ने और मध्यवर्ग की बढ़ोतरी ने मिलकर 'पल्प लिट्रेचर' को इतिहास की अनिवार्यता बना दिया । हिंदी में लोकप्रिय साहित्य की समाजशास्त्रीय आलोचना के प्रति उदासीनता को लक्ष्य करते हुए समाजशास्त्रीय चिंतक गरिमा श्रीवास्तव ने लोकप्रिय साहित्य के स्वरुप और उसकी पठनीयता पर बात की है । वे लिखती हैं –"हिन्दी में लोकप्रिय

[24] . प्रिंट एंड प्लेजर – पोपुलर लिट्रेचर एंड एन्टरटेनिंग फिक्शनस इन कोलोनियल नार्थ इंडिया,फ्रेचेस्का ऑर्सिनी, पृष्ठ : -3-4

साहित्य की समाजशास्त्रीय आलोचना का अभी आभाव है । हिन्दी में लोकप्रिय उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री का नाम सबसे पहले आता है, जिनकी लोकप्रियता का बहुत बड़ा कारण उनकी भाषा है । उन्होंने 'साहित्यिक हिन्दी' न लिखकर हिन्दुस्तानी का प्रयोग किया है, जिसे थोड़ी हिन्दी, थोड़ी उर्दू जानने वाले पाठक भी समझ सकें । हिंदी का लोकप्रिय उपन्यास सैंकड़ों अनाम और वेद राही, गुलशन नंदा जैसे उपन्यासकारों तथा विदेशी लोकप्रिय साहित्य के अनुवादों के रूप में बाजार, बुक स्टाल, रेलवे स्टेशनों, पटरियों पर उपलब्ध है । इनके लेखक अपने पाठकों के सामाजिक जीवन और वर्गीय स्थितियों को ध्यान में रखकर रचना करते हैं । हिन्दी के गंभीर साहित्य की बिक्री इनकी तुलना में काफी कम है । यह लोकप्रिय साहित्य मध्यवर्ग की हिन्दी में लिखा जाता है । जनता के बीच अत्यंत लोकप्रिय व्यावसायिक फिल्मों के संवाद और गीत प्रायः बोलचाल की भाषा में ही लिखे जाते हैं । कुछ उपन्यास स्त्री वर्ग की रुचि के होते हैं, तो कुछ बच्चों की रुची के । इसके पीछे उनकी भाषा की सहजता और सहज सुबोध शैली के साथ रोजमर्रा के जीवन का चित्रण भी होना है । इनका कथा संसार पाठक को दैनंदिन यथार्थ से दूर कर कल्पना के एक ऐसे संसार में ले जाता है जहां वह अपनी अतृप्त आकांक्षाओं को पूरा होता हुआ देखते हैं । पाठक सलीके से कही गयी कथा को सुनना-पढ़ना चाहता है । कलात्मक उपन्यास भले ही गंभीर साहित्य के अंतर्गत आए साधारण पाठक उसे खरीदना पसंद नहीं करता । कम से कम पैसे में ज्यादा से ज्यादा कथारस चाहने वाला पाठक लोकप्रिय सहित्य में ही उसकी पूरी संभावना देखता है ।"[25] लोकप्रिय उपन्यास के उपरोक्त शैल्पिक वैशिष्ट्य पर दृष्टिपात करें तो उसकी लोकप्रियता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी, दुर्गाप्रसाद खत्री जैसे लेखकों ने भाषाई दृष्टि से इस बात का पूरा ख्याल रखा है कि लेखन की भाषा युगीन आम बोल-चाल की भाषा हो । उन्होंने कथारस को बनाए रखने के लिए घटना की रोचकता को बनाए रखा है । इस दृष्टि से तिलस्मी उपन्यास की तुलना में जासूसी उपन्यास यथार्थ के धरातल पर खड़ा उतरता है । औपनिवेशिक कालीन अपराध, षडयंत्र, हत्या, व्यभिचार, लूट, डकैती आदि को आधार बनाकर लिखे गए जासूसी उपन्यासों

[25] . उपन्यास का समाजशास्त्र, सं- गरिमा श्रीवास्तव, भूमिका से उद्धृत, पृष्ठ- xl

में युगीन परिवेश का चित्रण मिलता है । भारतीय क्रांतिकारियों का ब्रिटिश प्रशासन को चकमा देकर भाग जाना, उनके रोमांच और साहस की दास्तान का एक बदला रूप इन उपन्यासों में देखा जा सकता है । जो आम पाठकों को रुचिकर लगता था ।

कहना न होगा कि जिस हिन्दुस्तानी भाषा का जिक्र लोकप्रिय उपन्यासों के संदर्भ में आया है वह महत्त्वपूर्ण है । आरंभिककालीन उपन्यासकारों में विशेषकर देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी, दुर्गा प्रसाद खत्री आदि ने आम बोल-चाल की हिन्दुस्तानी भाषा का ही प्रयोग किया है । भारतेंदुकालीन हिंदी-उर्दू भाषा विवाद में न पड़कर इन्होंने हिन्दुस्तानी का ही समर्थन किया है । हिंदी-उर्दू के इस विवाद में हिंदी के पक्षधरों ने संस्कृत की ओर ध्यान देना शुरू किया और भाषा तत्समात्मक होती चली गयी । यह भाषाई विवाद से आगे बढ़कर धार्मिक विवाद में बदलता हुआ नजर आता है । ब्रिटिश सत्ता की कूटनीति यहाँ भी सिद्ध होती है । अब भाषा धर्म से जुड़ने लगी थी । "नवजागरण काल का उर्दू हिंदी विवाद केवल भाषा और लिपि के प्रश्न तक सीमित नहीं था । यह दो सम्प्रदायों, दो भाषा भाषियों के जातीय गौरव का रूप ले चूका था । यह दो समाजों के मध्य ऐतिहासिक परम्परा, राजनैतिक महत्त्व और सांस्कृतिक श्रेष्ठता का संघर्ष तो था ही, रोज़ी रोटी का बुनियादी सवाल भी इससे जुड़ा हुआ था । यह विवाद अपर इंडिया में ही मुख्य रूप से केन्द्रित रहा, लेकिन इसका प्रभाव किसी-न-किसी रूप में पूरे भारत में पड़ा था । जब तक हिन्दी समर्थकों ने उर्दू के प्रभुत्व के विरुद्ध आवाज़ नहीं उठाई, इस विवाद का क्षेत्र केवल भाषा शास्त्रियों तक सीमित रहा, लेकिन हिन्दी पत्रकारिता ने इसे प्रशासन, न्याय, शिक्षा और प्रशासनिक व अन्य राजकीय सेवाओं से जोड़ दिया था।"[26] कतिपय इस भाषा विवाद के पीछे दोनों भाषाओं की उत्त्पत्ति, उनके राजकीय और शैक्षिक महत्त्व को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है । लेकिन इस विवाद ने आपसी फूट, मन मुटाव, फ़िरका परस्ती को पैदा किया जिससे समाज के स्वस्थ विकास का मार्ग अवरुद्ध हुआ । नवजागरण काल और भाषा विवाद के संदर्भ में श्रीश जैसवाल लिखते हैं -"दोनों ही पक्षों ने भाषा के प्रश्न को धर्म से भी जोड़ने

[26] .हिन्दी का नवजागरण काल एवं भाषा विवाद, श्रीश जैसवाल, पृष्ठ-113

का प्रयास किया था, हिन्दी हिन्दुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा कही जाने लगी थी । हिन्दी आंदोलन हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित करने के लिए ही नहीं किया जा रहा था बल्कि दीर्घकालीन मुस्लिम दमन चक्र की प्रतिक उर्दू के प्रभुत्व और प्रचलन को समाप्त करने क्ले लिए भी किया जा रहा था । हिंदी, हिन्दू, हिंदुस्तान का नारा अनेक हिन्दी समर्थकों की भावना को प्रतिबिम्बित करता था ।"[27] इसी संदर्भ में वीरभारत तलवार लिखते हैं- "हिंदी नवजागरण के लेखकों ने राजनीतिक लोकतंत्र के एक संवैधानिक प्रश्न को धार्मिक सांप्रदायिक प्रश्न में बदल दिया ।"[28] यह भाषाई विवाद उस दौर की साहित्यिक अभिव्यक्तियों में भी मिलता है । लेकिन जैसा कि कहा गया, उस दौर के लोकप्रिय उपन्यासकारों ने भाषाई विवाद में न पड़ते हुए आम हिन्दुस्तानी भाषा में ही अपना लेखन कार्य किया । यह भाषा जनता के चित्त के करीब थी ।

साहित्य का समाजशास्त्र पाठकों को भी विश्लेषण के केंद्र में रखता है । पाठकों की क्रय शक्ति का साहित्य की बिक्री पर सीधा प्रभाव पड़ता है । आरंभिककालीन लोकप्रिय हिंदी उपन्यासों या बाद के लोकप्रिय हिंदी उपन्यासों की बिक्री के पीछे जो एक महत्त्वपूर्ण कारक काम कर रहा था वह उसकी सस्ती छपाई भी थी । "ये उपन्यास आर्थिक दृष्टि से पाठकों के लिए 'बटुआ फ्रेंडली' होते थे । ये किराए पर उपलब्ध रहते थे, आधे और चौथाई मूल्य में भी ख़रीदे-बेचे जाते थे । कम मूल्य में अधिक पृष्ठों वाली ये रोचक पुस्तकें पाठकों को सहज आकर्षित करती थीं । हिंदी साहित्य की इन पुस्तकों को समीक्षकों द्वारा कभी गंभीर समीक्षा के दायरे में नहीं रखा गया । मोटे, दरदरे, भूरे-पीले से सफेद कागज पर छपने वाला यह साहित्य उपन्यासों के रूप में पाठकों के दिल-दिमाग पर छाया रहता था ।"[29] यहाँ इस बात पर विचार करना महत्त्वपूर्ण होगा कि उपन्यास विधा के उदय के साथ ही इस श्रेणी के उपन्यास ने इतनी जल्दी भारतीय आवाम में कैसे लोकप्रिय हो गए ? गौरतलब है कि इन उपन्यासों में रोचक घटना क्रम के साथ-साथ औजार, अपराध, हत्या, व्यभिचार आदि भी

[27] .वही, पृष्ठ- 115
[28] . रस्साकशी, वीरभारत तलवार, पृष्ठ-285
[29] .हंस, शरद सिंह (आलेख- हिंदी साहित्य में उपेक्षित ही रहा रिकॉर्डतोड़ क्राइम पल्प फिक्शन), अंक- मार्च 2017, पृष्ठ-204

शामिल किया जाता रहा है। कहना न होगा कि अपराध दुनिया के हर समाज की असलियत है। यहीं कारण है कि अपराध का विषय सबसे अधिक चर्चित और संवेदनशील रहा है। अपराध को मुख्य रूप से दो स्तर पर देख सकते हैं – पहला मानसिक और दूसरा शारीरिक। आपराधिक वृत्ति मुख्यतः हिंसा और प्रतिस्पर्धा का ही उत्पाद है। अपराध का निर्धारण नैतिकता और अनैतिकता के आलोक में किया जाता है। जिसका आधार वैधानिक और सामाजिक मूल्य होते हैं। अपराध का संबंध सामाजिक न्याय के प्रश्न से भी जुड़ता है। "मैंडल ने अपराध कथाओं में वर्णित दुनिया का विश्लेषण करते हुए समाज से उसके संबंधों की खोज की है, समाज में बढ़ते अपराध और अपराध संबंधी उपन्यास-साहित्य के अनेक स्तरीय संबंधों की पहचान की है। प्रायः जासूसी और अपराध संबंधी उपन्यासों की लोक्प्रोयिता के कारणों पर विचार करते हुए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ये उपन्यास मनुष्य के स्वभाव में मौजूद आक्रामकता या मृत्यु से भय की अभिव्यक्ति करते हैं, इसलिए लिकप्रिय होते हैं। मैंडल के ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय विश्लेषण के सामने ऐसी मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं की निस्सारता प्रकट हुई है। उन्होंने पूंजीवादी समाज में बढ़ते अपराधों से अपराध संबंधी उपन्यासों की बाढ़ का संबंध दिखलाया है। इस प्रक्रिया में यह बात स्पष्ट हुई है कि अपराध और अपराध संबंधी उपन्यास पूंजीवादी समाज की परस्पर जुड़ी हुई वास्तविकताएं हैं। इस व्यवस्था में ऐसी मानसिकता बनती है जो सनसनी और उत्तेजना की खोज करती फिरती है।"[30] मैंडल के इस ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय विश्लेषण के आलोक में हम नवजागरण कालीन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थियों को देख सकते हैं।1857 की क्रांति की असफलता के बाद औपनिवेशिक भारत में जिस तरह की परिस्थितियां अंग्रेजी प्रशासन ने पैदा की वैसे में आम भारतीय जनता शोषण के दुष्चक्र में फंसी एक रहस्मयी वातावरण में जीने को विवश थी। भय और आतंक का माहौल बना रहता था। क्रांतिकारियों द्वारा समय-समय पर देश हित में अंग्रेजों के खिलाफ घटनाओं को अंजाम दिया जाता था। उस परिवेश में जासूसी, तिलस्मी उपन्यासों का पढ़ा जाना लाजिमी था।

[30] .साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ- 320

समाज में हमेशा से अपराध चिंता के साथ-साथ कौतूहल और जिज्ञासा का विषय रहा है । टेलीविजन, सिनेमा और मीडिया के इस दौर में अपराध सबसे अधिक लोकप्रिय विषय है और सबसे अधिक बिकने वाला विषय भी । उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के आलोक में हिंदी के जासूसी उपन्यास की पड़ताल यहाँ आगे की जाएगी । साथ ही हिंदी में जासूसी उपन्यासों के उद्भव, विकास और तात्कालीन परिवेश का अध्ययन किया जाएगा ।

1.3.जासूसी उपन्यास : परंपरा और परिवेश

उपन्यास आधुनिक युग की देन है । इसका विकास हिंदी भाषी क्षेत्रों में पुनर्जागरण के आरम्भ के साथ हुआ । भारत में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इस विधा का विकास मध्यवर्ग के उदय के साथ हुआ । भारत में उपन्यास का उद्भव जिन परिस्थितियों में हुआ वह यूरोप में उपन्यास को जन्म देनेवाली परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न एवं विपरीत थीं । यूरोप के औद्योगिकीकरण और मध्यवर्ग के विकास की जगह भारत में उपनिवेशवादी व्यवस्था थी । इससे जमींदारों का एक नया वर्ग उभरा । जमींदारों, रियासतदारों, महाजनों के अलावा पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण किया समुदाय भी था, जिसे मध्यवर्ग के अन्तर्गत रख सकते हैं । इसलिए भारतीय मध्यवर्ग और यूरोपीय मध्यवर्ग में अंतर था । इस अंतर को ऐसे समझ सकते हैं कि, "औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप में जो नया मध्यवर्ग सामने आया उसके सम्मुख परिस्थितियाँ ऐसी थी कि उनका बिना राजनीतिक शक्ति प्राप्त किये टिकना मुश्किल था, लेकिन हिन्दुस्तानी मध्यवर्ग के बारे में यह बात नहीं थी । उसका बिना राजनीतिक शक्ति पे भी विकास हुआ था और वे सुविधापूर्वक जीवन-यापन कर रहे थे ।"[31] भारतीय मध्यवर्ग के संदर्भ में पवन कुमार वर्मा लिखते हैं, कि –"भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने अपनी आत्मछवि के अनुरूप एक देसी प्रभु वर्ग की रचना की थी । यह उपनिवेशवादियों की सर्वाधिक शानदार और स्थायी उपलब्धि थी । 1835 में ही मैकाले ने अपने विख्यात शिक्षा संबंधी कार्यवृत्त-विवरण में इस इरादे को किसी हिचक और द्वैध के बिना इस प्रकार व्यक्त

[31] .भारतीय मध्यवर्ग, श्यामसुंदर घोष, पृष्ठ- 105-106

किया था : 'हमें इस समय एक ऐसे वर्ग की रचना करने के लिए भरसक कोशिश करनी चाहिए जो हम और हमारे करोड़ों शासितों के बीच दुभाषिये की भूमिका निभा सके अर्थात व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग जो रक्त्त और त्वचा के रंग में तो भारतीय हो लेकिन रुचि, अभिमत, नैतिक मानदंडों और प्रतिभा में अंग्रेज हो ।' सहस्त्रों वर्ष पुरानी सभ्यता-संस्कृति वाले देश में इस तरह की नीति-उद्घोषणा सचमुच ढिठाई और हिम्मत की बात थी । लेकिन, इस नीति में अंग्रेजों को इतनी जबर्दस्त कामयाबी मिली जितनी मैकाले को सपने में भी उम्मीद नहीं रही होगी ।"[32]

तद्युगीन राजनीतिक, शैक्षणिक और आर्थिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करें तो हम देख सकते हैं कि भारतीय मध्यवर्ग का उद्भव और विकास एक साथ और समरूप तरीके से नहीं हुआ । भारतीय समाज की स्थिति यूरोप से भिन्न होने के कारण यहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थियाँ भी भिन्न थी । ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं कि अंग्रेजों की भू-नीति ने भारतीय समाज के भीतर शक्ति के वितरण को इस तरह प्रभावित किया कि संभवतः यह वास्तव में सामाजिक परिवर्तन के अत्यंत प्रभावशाली घटक के रूप में सामने आया । इस प्रकार अंग्रेजों की भू-नीति सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख कारक साबित हुई । चूँकि अब तक भारतीय शासन में राजस्व का अधिकांश हिस्सा भूमि से आता था । इसलिए अंग्रेज इसकी अनदेखी नहीं कर सकते थे लेकिन राजस्व वसूली के लिए जिस आधारभूत संचरना की आवश्यकता थी, उसे रातोंरात खड़ा करना संभव भी नहीं था । इसीलिए अंग्रेजों को भारत में परंपरा से चली आ रही भू-राजस्व प्रणाली को स्वीकृति प्रदान करनी पड़ी । इसके परिणामस्वरूप यह हुआ कि ब्रिटिश जिला अधिकारियों के सामने बड़ी संख्या में लिपिक, चपरासी और स्क्राइब्स की तत्काल नियुक्ति का कार्य सामने आ पड़ा । अहम् और जवाबदेही वाले कुछ पदों पर उनको कुछ भारतीयों की भी नियुक्ति करनी पड़ी जैसे अमीन, तहसीलदार (स्थानीय संग्रहकर्ता), प्रधान लिपिक (अभिलेख रखनेवाला) और कानून अधिकारी । अतः यह स्पष्ट है कि अंग्रेजों की यह आधारभूत संरचना परम्परा से चली

[32] .भारत के मध्य वर्ग की अजीब दास्तान, पवन कुमार वर्मा, पृष्ठ-20

आ रही आधार भूमि पर ही निर्मित हुई । यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि अंग्रेजों ने राजस्व वसूली का आधार परंपरा से चली आती संरचना को तो बनाया लेकिन भूमि संबंधी नीतियों में व्यापक बदलाव किये । यद्यपि यह बदलाव अधिकाधिक राजस्व उगाही और अंग्रेजी सत्ता के प्रभाव विस्तार के हित को ध्यान में रख कर किया गया था, किन्तु इसके कुछ सार्थक नतीजे भारतीयों के पक्ष में भी रहे जो आगे चल कर सामने आए।

ऐसा माना जाता है कि ब्रिटिश पद्धति पर आधारित अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा की शुरुआत से भारतीय समाज में एक नए शिक्षित समाज का जन्म हुआ। इस दृष्टि से ब्रिटिश शिक्षा नीति और मध्यवर्ग के उदय के बीच सम्बन्धों को स्थापित किया जा सकता है । पी.सी.जोशी भी यही मानते हैं, कि "भारत में मध्यवर्ग का जन्म औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था के कारण हुआ।"[33]

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था दो तरीकों से मध्य वर्ग के उदय के लिए उत्तरदायी थी । पहली, नयी उद्योग व्यवस्था और भू-व्यवस्था की शुरुआत जिसने एक समूह को जन्म दिया, जिसने मध्य वर्ग के निर्माण में मदद की । दूसरी, आर्थिक शोषण की प्रकृति ने इस चेतना को बढ़ा दिया कि ब्रिटिश साम्राज्य उपनिवेशवादी था । आर्थिक बदलावों ने लोगों को अपने परंपरागत व्यवसायों से हटाकर औद्योगिक श्रम के लिए विवश किया । ब्रिटिश सरकार द्वारा किए गए विभिन्न कार्यों जैसे भू-संबंधों में बदलाव, बाहरी पूंजीवादी विश्व वाणिज्यिक और अन्य शक्तियों का भारतीय समाज में अतिक्रमण और भारत में आधुनिक उद्योगों की स्थापना जैसे कार्यों के परिणाम स्वरूप हुए मूलभूत आर्थिक परिवर्तनों के कारण ये नए वर्ग अस्तित्व में आए । सरकार द्वारा जमींदारी और रैयतवाड़ी व्यवस्था की शुरुआत से भू-क्षेत्र में निजी संपत्ति की संकल्पना का विकास हुआ जिसने नए वर्गों को जन्म दिया जिसके पास अकूत संपत्ति थी । ये लोग जमींदार और बड़े किसान थे । इसके अलावा जमीन को पट्टे पर

---

[33].बहुवचन (त्रैमासिक), पी.सी.जोशी, (आलेख- आजादी की आधी सदी), अंक-2,वर्ष-2, जनवरी-मार्च-2002, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, पृष्ठ संख्या-322

देने के अधिकार ने काश्तकारों और लघु-काश्तकारों को जन्म दिया। जमीन को खरीदने और बेचने के अधिकार के साथ-साथ मजदूरों को रखने और काम पर लगाने के प्रावधान से ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुई जिससे अनुपस्थित भू-स्वामियों और कृषि सर्वहारा वर्ग का उदय हुआ। नयी कृषि अर्थव्यवस्था के साथ जमींदार क्षेत्रों में जमींदारों और काश्तकारों के बीच मध्यस्थों की पदसोपानता और मध्यस्थों की कड़ी का विकास हुआ जिसमें साहूकार, अन्यत्र वासी जमींदार और व्यापारी प्रमुख थे। इनका विकास उन क्षेत्रों में हुआ जहां पर रैयतवाड़ी की प्रथा थी और ये राज्य एवं काश्तकारों के बीच मध्यस्थ की भूमिका अदा करते थे। कृषि प्रधान क्षेत्रों में आधुनिक साहूकारों और व्यापारियों का समूह काफी तेजी से विकसित हुआ जो कि ब्रिटिश पूर्व भारत में नहीं पाया जाता था। ये किसानों, बाज़ार और अन्यत्र वासी जमींदारों के बीच बिचौलिये थे। ग्रामीण इलाकों में, ब्रिटिश पूर्व भारत में भी साहूकारों और व्यापारियों का वर्ग पाया जाता था लेकिन नयी भूमि व्यवस्था के लागू होने से उनकी भूमिका बदल गयी। इसलिए आधुनिक साहूकारों और व्यापारियों के वर्ग को एक ऐसा नया वर्ग कहा जा सकता है जो कि नयी पूंजीवादी व्यवस्था से जुड़ा और ब्रिटिश पूर्व भारत की तुलना में उसकी भूमिकाएँ व्यापक रूप से बदल गई। ब्रिटिश शासन के अधीन आंतरिक और बाहरी व्यापार का विस्तार हुआ जिसके फलस्वरूप एक वाणिज्यिक बुर्जुआ वर्ग का उदय हुआ जो कि आंतरिक और बाहरी व्यापार का काम करता था। इस नए व्यापारी वर्ग का काम देश के हर ग्रामीण और शहरी, कृषि और औद्योगिक उत्पादों का व्यापार करना था। रेलवे की स्थापना तथा भारत के व्यापारी वर्ग के हाथों में धन के संचय से जमींदारों और धनाढ्य कुशल कामगारों के एक वर्ग ने भारतीयों के स्वामित्व वाली कपड़ा मील, खदानों और अन्य उद्योगों को जन्म दिया जिससे मिल मालिकों, खदान मालिकों, और अन्य आधुनिक पूंजीवादी उपक्रमों के मालिकों जैसे औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग का विकास हुआ। इन वर्गों के साथ-साथ एक आधुनिक सर्वहारा वर्ग जैसे फैक्ट्री कामगार, खदान मजदूर, रेलवे

कर्मचारी और बागान मजदूरों का उदय हुआ । इस प्रकार, भारत में आधुनिक उद्योगों के विकास से आधुनिक बुर्जुआ और आधुनिक सर्वहारा वर्ग अस्तित्व में आए । इसके साथ-साथ नवजागरण कालीन समाज सुधार आंदोलन का सीधा प्रभाव तद्युगीन उपन्यासों में देखा जा सकता है ।

इस युग में प्रेस एवं समाचार-पत्रों के उद्भव और विकास का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा । "हिन्दी क्षेत्र में श्रोतावर्ग के पाठकवर्ग में परिणत होने की प्रक्रिया उन्नीसवीं सदी में आरम्भ हुई । प्रशासनिक और धार्मिक कारणों से हिन्दी क्षेत्र में मुद्रण का आरम्भ उन्नीसवीं सदी में हुआ ।"[34] गोपाल राय मुद्रण संस्कृति और उपन्यास के विकास के संबंध को लक्ष्य करते हुए लिखते हैं- "1832 ई. के आसपास, हिन्दी क्षेत्र में, बनारस टकसाल प्रेस और कानपुर लीथो प्रेस से रामचरित मानस के प्रकाशित होने का पता चलता है । 1834 ई. से 1856 ई. के बीच कलकत्ता, लुधियाना, आगरा, मिर्जापुर, सिकन्दरा, बनारस, इलाहाबाद आदि शहरों में दशाधिक प्रेस स्थापित हुए थे । 1858 ई. में नवल किशोर भार्गव ने लखनऊ में नवल किशोर प्रेस की स्थापना की, जहाँ से अनेक धार्मिक तथा अन्य प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित हुईं । नवल किशोर प्रेस ने ही उर्दू में हजारों हजार पृष्ठों में दस्तानों का प्रकाशन किया था जिन्होंने समकालीन पाठक वर्ग का निर्माण तो किया ही था उर्दू और हिन्दी उपन्यास के विकास में योग भी दिया था ।"[35]

हिंदी मुद्रणालय के विकास में जहाँ ईसाई मिशनरियों का योगदान रहा वहीं फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना ने भी इसे प्रोत्साहित किया । पाठक वर्ग के निर्माण में बनारस दिवाकर छापाखाना, मथुरा प्रेस, बनारस लाजरस कंपनी, इंडियन प्रेस आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । इससे जनता में सुधार की भावना भी जागृत हुई । नवजागरण की चेतना के विकास में भी प्रेस एवं तद्युगीन पत्रिकाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही । ऐसे ही राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक परिवेश में गद्य विधाओं के विकास के साथ हिंदी

[34] . हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ- 14
[35] .वही, पृष्ठ- 15

उपन्यास का उदय होता है । भारतीय मध्यवर्ग और उपन्यास के संदर्भ में गरिमा श्रीवास्तव के विचार द्रष्टव्य है, वे लिखती हैं –"भारत में ऐसे मध्यवर्ग की शुरुआत सबसे पहले बंगाल में हुई थी । बंगाल की तरह ही देश के विभिन्न भागों में जमींदारों, आरामपसंद ईमानदारों, रियासतदारों का मध्यवर्ग विकसित हो रहा था ; इसलिए तब साहित्य का उद्देश्य ऐसे निष्क्रिय वर्ग की चेतना को और मंद बनाना ही था । यही कारण है कि उपन्यास के प्रारंभिक दौर में ऐयारी, जासूसी और तिलस्मी कथानक वाले उपन्यासों की भरमार थी । भारत में मध्यवर्ग का विकास जिन स्थितियों में हुआ था, उसके फलस्वरूप उसमें परावलंबन की मानसिकता, अंग्रेजी संस्कृति के प्रति अंधमोह, दुविधाग्रस्त मूल्य चेतना के अवगुण थे । ऐसे में जासूसी, ऐयारी, तिलस्मी कथानक वाले उपन्यास जो किसी न किसी अंग्रेजी के उपन्यास का अनुवाद होते थे, ज्यादा लोकप्रिय होते चले गए । हिंदी में देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी ऐसे ही उपन्यासकार थे जो बाजार की मांग के अनुरूप लिखते थे, इसका एक प्रमुख कारण था कि भारत में उपन्यास की परम्परा थी ही नहीं, यहां कथा और आख्यायिका की परम्परा तो मिलती थी लेकिन उपन्यास की कोई परम्परा नहीं थी । इसके लिए पाठकों को पश्चिम की ओर, और वह भी सिर्फ इंग्लैंड की ओर देखना पड़ता था । भारत की विशिष्ट औपनिवेशिक स्थिति के कारण यहां सिर्फ ब्रिटेन का साहित्य ही उपलब्ध था । वहां के घटिया जासूसी उपन्यासों का अनुवाद यहां बड़े चाव से पढ़ा जाता था ।"[36]

आरंभिक दौर में अंग्रेजी के लोकप्रिय उपन्यासों का बांग्ला, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ । तिलस्मी, जासूसी, और ऐयारी को केन्द्र में रख कर लिखे गए आरंभिक उपन्यासों का गद्य पर्याप्त विकसित न था । अतः यह कहा जा सकता हैं, कि "हिंदी उपन्यास का इतिहास किसी भी देश के इतिहास की तरह हिंदी भाषा क्षेत्र की समस्या और संस्कृति के नवीन रूप के विकास का साहित्यिक प्रतिफलन है ।"[37]

---

[36]. उपन्यास का समाजशास्त्र, गरिमा श्रीवास्तव, भूमिका से उद्धृत, पृष्ठ-xliii

[37] .साहित्यिक निबंध, उमेशचंद्र मिश्र,लक्ष्मीकांत पाण्डेय(संपादित), पृष्ठ- 11

प्रेमचंद पूर्व युग के हिंदी उपन्यासों की बात करें तो विषय और शैली की दृष्टि से इसे निम्न भागों में बाँट कर देख सकते हैं –

1. सामाजिक उपन्यास
2. ऐतिहासिक उपन्यास
3. तिलिस्मी और ऐयारी उपन्यास
4. जासूसी उपन्यास

आरंभिक कालीन हिंदी उपन्यासकारों ने सामाजिक समस्याओं को उपन्यास का विषय बनाया। सामाजिक उपन्यासकारों की धारा में पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी (भाग्यवती-1877 ई.), लाला श्रीनिवास दास (परीक्षा गुरु-1882 ई.), बालकृष्ण भट्ट (नूतन ब्रह्मचारी-1886 ई., सौ अजान एक सुजान -1892 ई.) ठाकुर जगमोहन सिंह (श्यामा स्वप्न-1888 ई.), श्री राधाकृष्ण दास (निस्सहाय हिन्दू (1881 ई.), लज्जाराम शर्मा (धूर्त रसिकलाल-1889 ई., आदर्श दम्पति-1904 ई., आदर्श हिन्दू -1914 ई.), किशोरीलाल गोस्वामी (त्रिवेणी या सौभाग्य श्रेणी-1890 ई., लीलावती या आदर्श सती-1901 ई.,पुनर्जन्म वा सौतिया दाह-1907 ई.) और मन्नन द्विवेदी (रामलाल -1917 ई.) प्रमुख हैं।

इन उपन्यासकारों ने नवजागरण कालीन सुधारवाद के दौर में तद्युगीन सामाजिक समस्याओं को लक्ष्य करते हुए उपन्यास की रचना की। कहना न होगा कि उपन्यासकारों ने सनातन हिन्दू भावना, हिन्दू आदर्श, कर्मफलवाद आदि का प्रतिपादन भी अपने उपन्यासों में किया है। साथ ही देशीयता पर भी बल दिया है।

इस युग में ऐतिहासिक विषयवस्तु पर केन्द्रित उपन्यास भी लिखे गए। यहां उपन्यासों में इतिहास का प्रयोग मुख्यतः दो वजहों से हुआ है। कुछ लेखकों ने नवजागरण की चेतना से युक्त होकर इतिहास के गौरवशाली चरित्रों और प्रसंगों का चित्रण किया तो वहीं कुछ लेखकों ने इतिहास का प्रयोग स्त्री और पुरुष के रोमांस को दिखाने के लिए आवरण की तरह किया। कहना न होगा कि इन उपन्यासों का इतिहास-बोध परिपक्व नहीं है। इनमें

ऐतिहासिक तथ्यों की संरचना काफी कमजोर है । लेकिन उपन्यास के आरंभिक काल में इतिहास को आधार बनाकर लिखे गए इन उपन्यासों का महत्त्व उपन्यास के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

इतिहास को आधार को आधार बनाकर उपन्यास लिख रहे उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, मथुरा प्रसाद शर्मा, बलदेव प्रसाद मिश्र, बाबू ब्रजनन्दन सहाय और मिश्रबंधुओं का नाम प्रमुख है । किशोरीलाल गोस्वामी ने तद्युगीन औपन्यासिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए सामाजिक, तिलिस्मी और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे । हिंदी में ऐतिहासिक रोमांस की परंपरा का सूत्रपात किशोरीलाल गोस्वामी ने ही किया । इनके द्वारा लिखे गए ऐतिहासिक उपन्यासों में – 'हृदयहारिणी वा आदर्श रमणी'(1890 ई.), 'लवंगलता वा आदर्श बाला'(1890 ई.), 'तारा वा क्षत्रकुलकमलिनी' (1902 ई.), गुलबहार वा आदर्श भातृ प्रेम (1902 ई.), 'कनन कुसुम वा मस्तानी'(1904 ई.), 'हीराबाई वा बेहयाई का बोरका'(1904 ई.), 'सुल्ताना रज़िया बेगम वा रंगमहल में हलाहल'(1904 ई.), 'मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी'(1905 ई), 'लखनऊ की कब्र वा शाही महलसरा'(1906 ई.), 'सोना और सुगंध वा पन्नाबाई'(1909 ई.), 'लाल कुँवर वा शाही रंगमहल'(1909 ई.), 'गुप्त गोदना'(1922-23 ई.) आदि प्रमुख हैं ।

पाठकों के मनोरंजन और उसकी रुचि को ध्यान में रखकर लिखे गए घटना प्रधान उपन्यासों में तिलिस्मी और ऐयारी प्रधान उपन्यासों का प्रमुख स्थान है । इसका सूत्रपात देवकीनंदन खत्री ने 'चंद्रकांता' (1888 ई.) से किया । इसके बाद उन्होंने 'चंद्रकांता संतति' और 'भूतनाथ' की रचना की । 'भूतनाथ' को पूरा करने से पूर्व ही उनका देहांत हो गया जिसे उनके पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने पूरा किया । 'चंद्रकांता' की अभूतपूर्व लोकप्रियता को लक्ष्य करते हुए गोपाल रे लिखते हैं- "चन्द्रकान्ता का प्रकाशन हिन्दी उपन्यास के इतिहास में एक ऐसी घटना है जिसने उपन्यास के स्वरूप में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया । मानों एक पहाड़ी नदी मैदान में उतर आयी हो । इसके पूर्व लगभग बीस वर्षों में केवल एक दर्जन कमोवेश

उपन्यास कहलाने योग्य मौलिक कथापुस्तकें लिखी गयी थीं। इसका प्रमुख कारण था हिन्दी क्षेत्र में पाठकों की कमी और भारतेंदु प्रभावित लेखकों का केवल 'रसिक' और 'सहृदय' पाठकों की रुची को ध्यान में रखकर उपन्यास लिखना।"[38] देवकीनंदन खत्री अपने उपन्यास की भाषा को लेकर कहते हैं –"मेरी हिंदी किस श्रेणी की हिंदी है इसका निर्धारण मैं नहीं करता परंतु मैं यह जनता हूँ कि इसको पढ़ने के लिए कोश की तलाश नहीं करनी पड़ती।"[39]

गौरतलब है कि लिथोग्राफी की क्रांति ने लोक साहित्य के साथ-साथ अन्य साहित्य को भी पाठकों के लिए सुलभ बनाया। 'चंद्रकांता' की लोकप्रियता के कई प्रमुख कारण थे , जिसकी चर्चा राजेंद्र यादव और प्रदीप सक्सेना जैसे विद्वानों ने की। राजेंद्र यादव इसे 'दयनीय महानता की दिलचस्प दास्तान' कहते हुए लिखते हैं – "पराजित और बेबस राष्ट्र को अतीत और वर्तमान दोनों धरातलों पर एकसाथ सहलाने की यही औपन्यासिक लेकिन प्रच्छन्न राष्ट्रीयता 'चंद्रकांता' की भयानक लोकप्रियता का कारण रही है।"[40] तो वहीं प्रदीप सक्सेना 'चंद्रकांता' के मूल्यांकन को सिर्फ देवकीनंदन खत्री के मूल्यांकन से जोड़कर न देखते हुए समूचे लोक साहित्य और इस तरह के तमाम काल्पनिक और मनोरंजन प्रधान साहित्य के पुनर्मुल्यांकन से जोड़कर देखते हैं। उनका मानना है कि – "चंद्रकांता एवं संतति उस नवस्फुटित यथार्थवादी दौर का महाकाव्य है।"[41] उपन्यास के क्षेत्र में देवकीनंदन खत्री लगातार प्रयोग करते हुए नजर आते हैं। बदलते परिवेश में जनता की चित्तवृत्ति को पहचानते हुए आगे बढ़ते हैं।

उपन्यास के क्षेत्र में देवकीनंदन खत्री की लोकप्रियता के बाद अनेक लेखक भी तिलिस्मी ऐयारी प्रधान रोमांस कथा लेखन में प्रवृत्त हुए जिनमें हरिकृष्ण जौहर, किशोरीलाल गोस्वामी, निहाल चंद वर्मा और दुर्गा प्रसाद खत्री का नाम उल्लेखनीय है। इसी पाठकीय भावबोध की अगली कड़ी है जासूसी उपन्यास।

---

[38] .हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ- 69
[39] .हिन्दी कथासाहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव, गोपाल राय, पृष्ठ- 274
[40]. अठारह उपन्यास, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ- 40
[41] .तिलिस्मी साहित्य का साम्राज्यवाद-विरोधी चरित्र , प्रदीप सक्सेना, पृष्ठ- 44

जासूसी उपन्यास हिंदी साहित्य के लिए एक नया विषय था । इसका आगमन यूरोप से बंगाल होता हुआ हिंदी प्रदेश में हुआ । हिंदी में जासूसी उपन्यास लेखन की शुरुआत का श्रेय गोपालराम गहमरी को जाता है । उन्होंने हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में एक नयी परंपरा की नींव रखी । "गहमरी जी ने हिंदी में उत्पन्न नये पाठक वर्ग को, जो ऐयारी-तिलिस्म प्रधान रोमंसों में लीन था, स्वाद बदलने के लिए, अपराध प्रधान और जासूसी कथाएँ उपलब्ध करायीं । इन कथापुस्तकों का नयापन यह था कि इनके केंद्र में तिलिस्मी कथा की तरह कोई प्रेमकथा न होकर कोई 'अपराध' होता था । इस बीच अंग्रेजी के लेखक कॉनन डायल की जासूसी कथापुस्तकें अन्य भाषाओं में भी अनूदित होकर काफी लोकप्रिय हो रही थीं । बंगला इनमें सबसे आगे थी । इन कथाओं में एक तरह की आधुनिकता थी । इनमें बौद्धिक क्रीड़ा के लिए अपरिमित अवकाश था । आधुनिक अपराधशास्त्र और अपराध मनोविज्ञान के विकास ने जासूसी कथाओं के लिए अनन्त संभावनाएँ प्रस्तुत कर दी थीं । जासूसी कथाओं में रहस्य-निर्माण और उसके उद्घाटन के लिए सूक्ष्म पर्यवेक्षण, विलक्षण बुद्धिमत्ता तथा तर्कशृंखला अपेक्षित होती है ।"[42] कहने का तात्पर्य यह है कि युगीन औपनिवेशिक परिवेश में साम्राज्यवादी ताकतों के शोषण, सामाजिक विषमता, गरीबी आदि ने इस तरह के अपराध-प्रधान जासूसी उपन्यासों के प्रचारित-प्रसारित होने का अवसर दिया । इन उपन्यासों पर प्रारंभ में विदेशी जासूसी उपन्यासों का प्रभाव जरूर रहा लेकिन शीघ्र ही इसने अपना मौलिक रूप पा लिया था । ध्यातव्य है कि उपन्यास के विकास के आरंभिक दौर में ही कलात्मक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के बीच एक विभाजन रेखा खींची जाने लगी और लोकप्रिय साहित्य मसलन तिलस्मी और जासूसी साहित्य को साहित्यिक कोटि से बाहर कर दिया गया । साहित्य की अवधारणा ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज होती है इसीलिए इतिहास प्रक्रिया में साहित्य की अवधारणा भी बदलती रहती है । जासूसी उपन्यास तात्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश की देन थी । किन्तु इसका विवेचन, विश्लेषण साहित्यालोचकों की उदासीनता के कारण संभव नहीं हो सका । प्रदीप सक्सेना, जिन्होंने तिलस्मी साहित्य को लेकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया । उनका

[42] .हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ- 98

सुप्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा जी के साथ एक पत्र-व्यवहार मिलता है । जिसमें रामविलास शर्मा लिखते हैं –"जासूसी साहित्य साम्राज्यविरोधी चेतना फैलाने का साधन बन सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं।"[43] लेकिन साहित्यालोचकों की उदासीनता ने लोकप्रियता और व्यावसायिकता के कारण इस ओर ध्यान दिया ।

जासूसी उपन्यास हिंदी साहित्य के लिए एक नवीन उपलब्धि थी । लेकिन इसकी शुरुआत पाश्चात्य साहित्य में बहुत पहले हो चुकी थी । शुरुआत में जो जासूसी उपन्यास हिंदी भाषा में लिखे गए वे मूलतः अंग्रेजी और बांगला के जासूसी उपन्यासों के अनुवाद और रूपांतरण के फलस्वरूप ही आए । हरिकृष्ण जौहर ने अंग्रेजी के 'फास्ट' नामक उपन्यास का अनुवाद 'नर पिशाच' नाम से हिंदी में किया । इन्होंने रेनाल्ड्स के 'ब्रोंच स्टेच्यू' नामक उपन्यास का अनुवाद 'पीतल की मूर्ति' नाम से किया । गंगाप्रसाद गुप्त ने भी रेनाल्ड्स के 'द यंग फिशरमैन' का हिंदी अनुवाद 'किले की रानी' नाम से किया । कहना न होगा कि अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाली 'ब्लैक सिरीज', 'सिक्स पेन्स सिरीज' और 'फोर पेन्स सीरिज आदि का भी हिंदी की जासूसी उपन्यास की परंपरा पर गहरा प्रभाव पड़ा । गोपालराम गहमरी स्वयं इस क्षेत्र में अनुवाद के कारण आते हैं । ज्ञानचंद जैन इस बारे में लिखते हैं, कि "उनके साहित्यिक जीवन में मोड़ 1897 में आया । ट्रिब्यून संपादक नगेन्द्रनाथ गुप्त लिखित जासूसी उपन्यास 'हीरार मूल्य' प्रयाग से निकलने वाले बंगला मासिक पत्र 'प्रदीप' में छपा । उन्होंने इसका अनुवाद 'हीरे का मोल' शीर्षक से करके 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' में छपवा दिया । यह पाठकों को इतना पसंद आया कि इसे पढ़ने के लिए पत्र के बहुत-से नए ग्राहक बन गये । सब यही लिखते थे कि जिस अंक से यह उपन्यास छपना शुरू हुआ है उस अंक से हमको ग्राहक बना लीजिए । इससे इनकी प्रधान रुचि जासूसी उपन्यास लिखने की ओर हो गई और इन्होंने गहमर आकर 'जासूस' निकालना आरम्भ कर दिया ।"[44]

[43] .तिलस्मी साहित्य का साम्राज्यवाद-विरोधी चरित्र, प्रदीप सक्सेना, आमुख से, पृष्ठ-6
[44] .प्रेमचंद-पूर्व के हिन्दी उपन्यास, ज्ञानचंद जैन, पृष्ठ -164-165

पश्चिम में जासूसी उपन्यासों की एक लंबी परंपरा दिखाई देती है । जिस पर साहित्यिक आलोचकों ने लिखा भी है । पश्चिम में जासूसी उपन्यासों के उदय की पड़ताल करते हुए कृष्णा मजीठिया का कथन अवलोकनीय है-"उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक संसार के प्रायः समस्त भागों की भौगोलिक खोज हो चुकी थी । कितने ही वैज्ञानिक अविष्कार हो चुके थे । रेल, तार, डाक आदि का आविर्भाव हो चुका था । जासूसी साहित्य के उदय के लिए इन भौतिक साधनों ने काफी सहायता पहुंचाई । इतिहास में तो जासूसों की इस परम्परा का उद्भव बहुत पहले ही देखा जा सकता है । आधुनिक जासूसी संस्थाओं के उदय होने से साहित्य में उसका आविर्भाव हुआ ।"[45] इंग्लैंड और अमेरिका में पुलिस विभाग के साथ ही जासूसी संस्थाएं भी खुलने लगीं । इसने जासूसी साहित्य के उद्भव और विकास धरातल प्रदान किया । नरसिंहराव दीक्षित अपने अनूदित किताब 'ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के रहस्य' जिसके मूल लेखक ई. एच. कुकरिज हैं उसमें जासूसी संस्थाओं और जासूसों के प्रशिक्षण और कारनामों का विवरण देते हैं । जासूसों और जासूसी संगठनों के महत्त्व को रेखांकित करते हुए वे बताते हैं, कि –"द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जनता का ध्यान जल, स्थल, और आकाश में होने वाली उन बड़ी-बड़ी लड़ाइयों की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था जिसमें लाखों की संख्या में मनुष्य भाग ले रहे थे तथा जिनका प्रभाव सभी देशों के स्त्री-पुरुषों और बच्चों पर पड़ रहा था । यद्यपि इन लड़ाइयों के समाचार बड़े मोटे-मोटे शीर्षकों में छपा करते थे जिनका ऐतिहासिक महत्त्व भी था, तथापि उन्हीं दिनों दोनों पक्षों के बीच एक दूसरी तरह की लड़ाई भी लड़ी जा रही थी । यह संघर्ष बुद्धि-चातुर्य का था जिसमें दोनों ओर से कई सहस्त्र नर-नारी भाग ले रहे थे । दोनों पक्षों के जासूसी संगठनों के बीच होने वाले इस संघर्ष के परिणाम के ऊपर अनेक बार बड़े-बड़े जल, थल तथा वायु युद्धों के निर्णय निर्भर रहते थे । इन तथाकथित गुप्तचर विभागों का काम शत्रु-पक्ष के सेनापतियों और राजनैतिक नेताओं की योजनाओं का पता लगाना था जिससे उनकी सरकारें तथा उनके सेना-नायक जवाबी चाल सकें । यही नहीं, गुप्तचरों को शत्रु के भेदियों से अपने देश के सैनिक-रहस्य

[45] .हिन्दी के तिलस्मी व जासूसी उपन्यास, कृष्णा मजीठिया, पृष्ठ-126

छिपाने का भी यत्न करना पड़ता था जिससे शत्रु पक्ष के राजनीतिज्ञ और सामरिक निर्णायक धोखे में रहें, शत्रुओं के प्रयत्न विफल हो जायँ और उनका मनोबल टूट जाय ।"[46] कहने का तात्पर्य यह है कि जासूसी संस्थाएं हो या फिर जासूसी उपन्यास दोनों जगह संघर्ष बुद्धि-चातुर्य का ही है । हिंदी जासूसी उपन्यासों में भी वर्णित जासूसों का बुद्धि-चातुर्य देखने लायक है ।

ऐसा माना जाता है कि अंग्रेजी भाषी दुनिया में जासूसी कथा की शुरुआत-1841 ई. में एडगर एलन पो के 'द मर्डर्स इन द रू मोर्ग्यु'(The Murders in the Rue Morgue) के प्रकाशन के साथ हुई थी । 'सीअगस्टे डुपिन .', एडगर एलन पो द्वारा निर्मित एक काल्पनिक जासूसी चरित्र है । ड्यूपिन ने पो के 'द मर्डर्स इन द रू मोर्ग्यु' में अपनी पहली उपस्थिति दर्ज की जिसे खूब प्रसिद्धि मिली । "जिस परम्परा का श्रीगणेश पो ने किया था उसी में बाद में अंग्रेजी को शर्लक होम्स, मार्टिन हिवेट रैफल्स, थार्नडाइक, हनौड़ और पायरोट जैसे जासूसी पात्र प्राप्त हुए । ये जासूसी नायक अपनी खोज बीन करने के लिए अकेले नहीं आते, इनके साथ इनके सहायक आदि भी होते हैं । जैसे शर्लक होम्स के साथ वाटसन, मार्टिन हिविट के साथ ब्रेट, साहित्य में जासूसी नायकों और उनके सहायकों की जोड़ियां एक प्रकार से प्रसिद्ध ही हो गई । एक का नाम लेते ही बरबस दूसरे का नाम आ ही जाता है । ये जासूसी नायक बहुश्रुत और बहुविज्ञ होते हैं । उनके सहायक की बुद्धि का मापदंड बहुधा उतना ही होता है जितना कि जासूसी साहित्य के पाठकों से अपेक्षित होता है । ये सहायक प्रायः उन बातों से अनभिज्ञ रहते हैं जो कि अपराध का पता लगाने से पूर्व जासूस को सूझती है ।"[47] जासूस नायक और उसके सहायक की यह परंपरा हिंदी के जासूसी उपन्यासों में भी दिखाई देता है । गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास 'झंडा डाकू' में जासूस पोखरमल का सहायक रोशन सिंह दिखाई देता है । वैसे ही "बांग्ला के जासूसी साहित्य में, प्रारंभ से ही जासूस एवं उसके सहायकों की जुगलबंदी देखने को मिलती है जैसे पांचकौड़ी दे (जासूस देवेन्द्र विजय और

[46] .ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के रहस्य, ई. एच. कुकरिज, अनुवाद-नरसिंहराव दीक्षित, भूमिका से उद्धृत, पृष्ठ-i
[47] .हिन्दी के तिलस्मी व जासूसी उपन्यास, कृष्णा मजीठिया, पृष्ठ -127-128

उनके सहायक अरिन्दम), नीहार रंजन गुप्त (जासूस किरीटी राय व उनके सहायक सुब्रतो), हेमेन्द्र कुमार राय (जयंत व सहायक माणिक) इत्यादि ।"[48]

फ्रांसीसी लेखक एमिल गैबोरियाउ का 'ल'एफ़ेयर लेरौज'(L'Affaire Lerouge-1866 ई.) एक बेहद सफल उपन्यास था जिसके कई सीरिज निकले थे। विल्की कॉलिन्स का 'द मूनस्टोन' (1868 ई.) बेहतरीन अंग्रेजी जासूसी उपन्यासों में से एक है। अन्ना कैथरीन 'ग्रीन द लीवेनवर्थ केस' (1878 ई.) के साथ पहले अमेरिकी जासूसी उपन्यासकारों में से एक बन गईं। ऑस्ट्रेलियाई फर्गस ह्यूम द्वारा लिखित 'द मिस्ट्री ऑफ ए हैंसोम कैब' (1886 ई.) ने अभूतपूर्व व्यावसायिक सफलता पायी थी । 20वीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों में कई विशिष्ट जासूसी उपन्यासों का निर्माण हुआ, उनमें से मैरी रॉबर्ट्स राइनहार्ट की 'द सर्कुलर स्टेयरकेस'(1908 ई.) और जी.के. चेस्टरटन की 'द इनोसेंस ऑफ फादर ब्राउन' (1911 ई.) आदि महत्त्वपूर्ण हैं । इसी कड़ी में अगाथा क्रिस्टी कृत 'द मिस्टीरियस अफेयर एट स्टाइल्स' (1920 ई.), और मिस मार्पल कृत 'मर्डर एट द विकारेज' (1930 ई.), एस.एस. वैन डाइन कृत 'द बेन्सन मर्डर केस' (1926 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं । इस दृष्टि से, बीसवीं सदी का तीसरा जासूसी कथा-साहित्य का स्वर्ण युग था ।

पश्चिम में "सर्वश्रेष्ठ जासूसी उपन्यासकार जिनकी कृतियों की सर्वसाधारण में धूम हुई, कानन डायल थे । उनके उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता उकी तर्कसंगता व वैज्ञानिक विचार प्रणाली है । कानन डायल ने सन् 1887 में जासूसी उपन्यास लिखना प्रारंभ किया और साहित्यालोचकों के तीव्र विरोध के बावजूद ये उपन्यास आश्चर्यजनक रूप से साधारण जनता में लोकप्रिय हो गए । इनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कानन डायल के जीवन काल में ही बंगला में इनके जासूसी उपन्यासों और दीर्घकथाओं का अनुवाद होना प्रारंभ हो गया । बंगला में जासूसी उपन्यास लिखने वालों में पांचकौड़ी दे का नाम

[48] .हंस, 'बांग्ला जासूसी कथा साहित्य में सहायक-जासूसों की भूमिका', (आलेख), अनिन्द्य गंगोपाध्याय, अंक-मार्च 2017, पृष्ठ-196

अग्रगण्य है। उन्होंने मौलिक जासूसी उपन्यास भी लिखे और कानन डायल के कई उपन्यासों का अनुवाद भी किया। इंग्लैंड की भांति बंगाल में भी यह नए ढ़ंग के उपन्यास जनता में खूब लोकप्रिय हुए।"[49] कहना न होगा कि इस नए ढंग के उपन्यास की लोकप्रियता ने ही हिंदी में गोपालराम गहमरी को जासूसी उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित किया। बांग्ला जासूसी कथा साहित्य में श्री प्रियनाथ मजुमदार, काली प्रसन्नो चटोपाध्याय, नीहार रंजन गुप्त, हेमेन्द्र कुमार राय, शरदींदु बंदोपाध्याय, प्रेमेन्द्र मित्र, सत्यजीत राय, समरेश बसु, नलिनी दास, सुनील गंगोपाध्याय, विमल कर, नारायण सान्याल, सुचित्रा भट्टाचार्य आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने बंगाल में जासूसी कथा साहित्य को दिशा प्रदान की।

ओड़िया भाषा में भी जासूसी उपन्यासों की एक सुदीर्घ परंपरा दिखाई देती है। जिसमें चंद्रमणि दास , द्वारकानाथ दास, कंडूरीचरण दास, योगीन्द्र कुमार महांति, गोविंद चंद्र त्रिपाठी, रमाकांत मिश्र, नरेन महांति, स्नेह प्रभा जेना, वंशीधर भूयां, और पद्मचरण पट्टनायक आदि के नाम प्रशंसनीय और उल्लेखनीय हैं।

ध्यातव्य है कि उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रायड के मनोवैज्ञानिक विचार ने जासूसी उपन्यास के पठन-पाठन को प्रभावित किया। विज्ञान के विस्तार ने इस तरह के उपन्यासों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अंग्रेजी और बांग्ला से होता हुआ उपन्यास की यह धारा हिंदी क्षेत्र में आई। गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की लोकप्रियता की लोकप्रियता ने तद्युगीन कई लेखकों को इस क्षेत्र में लेखन के लिए प्रेरित किया। इस परंपरा में किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'जिन्दे की लाश', 'नौलाखाहार, 'खूनी औरत का सात खून', दुर्गाप्रसाद खत्री कृत 'प्रतिशोध', 'लालपंजा', 'रक्तमंडल', 'सुफेद शैतान', रामलाल वर्मा कृत 'चालाक चोर', 'जासूस के घर खून', 'अस्सी हज़ार की चोरी ', हरिकृष्ण जौहर कृत ' छाती का छुरा', जयरामदास गुप्त कृत 'लंगड़ा खूनी', 'काला चाँद', रामलाल प्रसाद कृत 'हमाम का मुर्दा' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों की परंपरा से हिंदी में आए इन उपन्यासों के लेखन में हिंदी उपन्यासकारों ने अग्रेजी जासूसी उपन्यास लेखन की

[49] .हिन्दी के कुतूहलप्रधान उपन्यास, विमलेश आनन्द, पृष्ठ- 42

टेकनीक को अपनाते हुए भारतीय परिवेश में उसे चित्रित किया । पात्र-परिकल्पना और समसामयिकता का ख्याल रखते हुए इन्होंने आम बोलचाल की भाषा में लेखन कार्य किया । एक तरफ इन्होंने पाठकीय आग्रह का ख्याल रखा तो वहीं सुधारवादी आंदोलन के प्रभाव को भी ग्रहण किया । इन उपन्यासों में लेखक ने स्त्री चरित्रों युगीन आदर्श के साथ हिन्दू मर्यादा का विशेष ख्याल रखा है । इन उपन्यासों में गृहस्थ जीवन का आदर्श रूप भी देखने को मिलता है । पुनरुत्थानवादी दौर में पाठक इन उपन्यासों के माध्यम से तर्क और ज्ञान के नए रूपों से साक्षात्कार कर रहा था । इन उपन्यासों के महत्त्व को लक्ष्य करते हुए विमलेश आनन्द लिखते हैं, कि "गद्य-भाषा के विकास व रूप-निर्धारण के क्षेत्र में आलोच्य साहित्य ने अपूर्व योगदान दिया । उसने एक ओर तो भाषा का सरल, सहज स्वाभाविक, कुछ सशक्त स्वरूप प्रस्तुत किया दूसरी ओर भाषा का जन-साधारण में खूब प्रचार भी किया । हिंदी भाषा व उपन्यास साहित्य के विकास में आलोच्य साहित्य के लेखकों की सेवाएँ अविस्मरणीय हैं ।"[50]

गौरतलब है कि अंग्रेजी से बांग्ला और बांग्ला से हिंदी में जासूसी उपन्यासों की यह यात्रा मात्र साहित्यिक यात्रा नहीं है । यह एक सांस्कृतिक यात्रा भी है । परिवेशगत भिन्नता में हिंदी के उपन्यासकार जिस तरह जासूसों की संरचना करते हैं और कथा के रोमांच को बनाए रखते हैं वह पठनीय है । तिलस्मी उपन्यासों की तरह यहाँ ऐयारी नहीं है, चमत्कार नहीं है । सम्पूर्ण घटनाकर्म यहाँ बौद्धिक चातुर्य पर निर्भर करता है । विज्ञान, तथ्य, अपराध, सबूत, हथियार यहाँ रोचक अंदाज में प्रस्तुत होता है । संक्रमणकालीन औपनिवेशिक दौर में तद्युगीन जटिल परिस्थितियों के बीच साहित्यिक उपन्यासों में चित्रित जासूस की लोकप्रियता आज के फिल्मी नायकों जैसी थी ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जासूसी उपन्यासों ने हिंदी उपन्यास के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । इन उपन्यासों में मनोरंजन के साथ-साथ तद्युगीन भारतीय समाज का चित्रण हुआ है । उपन्यास के विकास के साथ-साथ इन उपन्यासों का विश्लेषण

[50] . हिन्दी के कुतूहलप्रधान उपन्यास, विमलेश आनन्द, पृष्ठ-269

सामाजिक बदलाव और पाठकीय रुचि की ओर भी ध्यान खींचता है । प्रिंटिग प्रेस की सुलभता और सचित्र कलेवर में इसकी छपाई ने भी पाठकों को आकर्षित किया । इन उपन्यासों के नाम भी प्रायः कौतूहल पैदा करने वाले होते थे । जो पाठकों को पढ़ने के लिए प्रेरित करता था । पाठक पढ़ते हुए एक रोमांचक यात्रा सा अनुभव करता था । घटनाक्रम की बुनावट उसकी जिज्ञासा को बनाए रखती थी । अपनी लोकप्रियता और व्यावसायिक सफलता के साथ इन उपन्यासों का ट्रीटमेंट यथार्थपरकता के करीब है । जिसके तहत तद्युगीन भारतीय समाज विशेषकर उच्चमध्यवर्गीय समाज की इच्छाएँ, आकांक्षाएं, सपने, बनावटी जीवन, पूर्वाग्रह, संस्कार, आधुनिकता आदि का समावेश हुआ है । राष्ट्र की चिंता, स्वदेशीयता आदि को भी उपन्यासकार ने उपन्यास के कलेवर में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । आज जिस तरह से पूरी दुनिया में सरकारी, गैर-सरकारी जासूसी संस्थाओं का विकास हुआ है वह देखने लायक है । जासूसी प्रधान फिल्मों और सीरियल्स की भरमार लगी हुई है । आज भी जनता का आकर्षण इसके प्रति कम नहीं हुआ है । ऐसे में इन उपन्यासों का विश्लेषण जासूसी चरित्रों की विकास यात्रा साथ ही उपन्यास की विकास यात्रा को समझने में सहायक है ।

अध्याय : दो

गोपालराम गहमरी : व्यक्तित्व और कृतित्व

गोपालराम गहमरी ने हिंदी में जासूसी उपन्यास लेखन का सूत्रपात किया । ऐसे समय में जब हिंदी भाषा और साहित्य की पठनीयता का संकट था उन्होंने कथा को रोचक और लोकप्रिय बनाकर पाठक वर्ग का निर्माण किया । पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका योगदान सराहनीय है । उनके द्वारा लिखे गए संस्मरण तद्युगीन साहित्यिक समाज और उनकी वैचारिकी को समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । हर साहित्यकार की तरह उनकी रचनाओं में उनका युग और परिवेश बार-बार आता है । गोपालराम गहमरी के विविध लेखन में उनका युग, युगीन मूल्य और समाज का चित्रण मिलता है । यहाँ उनके कृतित्व पर दृष्टिपात करने से पूर्व उनके जीवन-वृत्त को जानना आवश्यक है ।

2.1. गोपालराम गहमरी और उनका जीवन :

गोपालराम गहमरी का जन्म पौष कृष्ण 8, गुरुवार संवत् 1923 (1866 ई.) में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के गहमर गाँव में हुआ था। इनके परदादा श्री जगन्नाथ साहू जी फ्रांसीसी छींट के व्यापारी थे । रघुनंदन और बृजमोहन उनके दो पुत्र थे । रघुनंदन जी के तीन पुत्र हुए रामनारायण, कालीचरण और रामदास । गोपालराम गहमरी, रामनारायण जी के इकलौते पुत्र थे। कालीचरण निःसंतान थे और महावीर प्रसाद गहमरी भी रामदास जी इकलौते पुत्र थे । गोपालराम गहमरी के एक ही पुत्र थे इकबाल नारायण ।

गोपालराम गहमरी जब छह माह के थे तभी उनके पिता का देहांत हो गया था । तब इनकी माँ 'सुमित्रा देवी' इन्हें लेकर अपने नैहर गहमर चली आईं। गहमर में ही गोपालराम गहमरी का लालन-पालन प्रारंभ हुआ । अपने संस्मरण 'मेरा बचपन' में वे लिखते हैं –"मैं 'गहमर' के मदरसे में जब 1871 में पढ़ने बैठा था, उस समय मैं पाँच वर्ष का था । उन दिनों स्कूल का नाम कोई नहीं लेता था, मदरसा ही सब लोग समझते थे । मदरसे के हेडमास्टर थे बाबू रामनारायण सिंह, नीचे के मास्टर थे मुंशी योगेश्वर प्रसाद और सबसे नीचे के मास्टर

काली प्रसाद श्रीवास्तव । मुंशी काली प्रसाद 'गहमर' में लड़कों को बुलाकर मदरसे में पहुँचाने और अक्षर-परिचय कराने का काम करते थे । उनको वेतन यही मिलता था कि जितने लड़के पढ़ने आते थे, अपने कलेवे के लिये लाये हुए चबेने में से चुंगी की तरह कुछ दे देते थे । सैकड़ों लड़कों के चबेने की चुंगी से मुंशी कालीजी का झोला भर उठता था । दस पंद्रह सेर चबेना ही कालीजी का पर्याप्त धन था, कुछ मासिक भी लड़कों से मिल जाता था ।"[1] वहीं वे आगे लिखते हैं –"अक्षर-परिचय और वर्णमाला पढ़ने के बाद हम लोग 'बालबोध' पढ़ते थे । दोनों पुस्तकें श्री राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' की बनाई हुई थीं । इनको पढ़ लेने पर तीसरी पुस्तक 'विद्यांकुर' पढ़ाई जाती थी ।"[2] गाँव 'गहमर' से अतिरिक्त प्रेम के कारण उन्होंने अपने नाम के साथ अपने इस ननिहाल का नाम जोड़ लिया और गोपालराम गहमरी कहलाने लगे।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा गहमर में हुई थी। वे जब छठी कक्षा में थे तब राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' उनके स्कूल आए थे । इस घटना को याद करते हुए वे लिखते हैं- "जब छठी में पढ़ते थे तभी राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' गहमर स्कूल का निरीक्षण करने आये । मेरी पटिया पर, जो नव इंच चौड़ी रही होगी, पाँचों अक्षर दो-दो इंच के अंतर पर देख कर बड़े खुश हुए । उन्होंने मुझे एक रुपया ईनाम दिया था । सब लड़के देखा देखी उसी तरह के साफ अक्षर दूर-दूर लिखने लगे । अब सुंदर अक्षर लिखने की सबमें चाह बढ़ी ।"[3] कुछ इसी तरह के परिवेश और प्रेरणा के साथ उन्होंने वहीं से वर्नाक्यूलर मिडिल की शिक्षा ग्रहण की। सन् 1879 में उन्होंने मिडिल पास किया। इस समय उनकी उम्र 13 वर्ष थी । कम उम्र के कारण नार्मल स्कूल में उनका दाखिला नहीं हो पाया । इस वजह से वे वहीं 'गहमर' स्कूल में चार साल तक वहां के छात्रों को पढ़ाते रहे और स्वयं भी उर्दू और अंग्रेजी का अभ्यास करते रहे। इसके बाद सन् 1883 में पटना नार्मल स्कूल में भर्ती हुए, और सन् 1888 में फर्स्ट ग्रेड में नार्मल की परीक्षा पास की। नार्मल में

[1] .हिंदी के पहले जासूसी कथाकार गोपालराम गहमरी के संस्मरण, संजय कृष्ण (सं.), पृष्ठ-8
[2]. वही, पृष्ठ- 8
[3] .वही, पृष्ठ-9

पढ़ते हुए उन्हें 5 रुपए मासिक स्कॉलरशिप मिलती थी। जिसमें से दो रुपए प्रति माह वे अपनी माँ को भेजा करते थे।

जब गोपालराम गहमरी पटना के नार्मल स्कूल में पढ़ रहे थे, उसी समय बलिया में बंदोबस्त का काम हिंदी में हो रहा था। गौरतलब है कि बलिया प्रदेश का पहला जिला था जहाँ सरकारी कार्यालय में हिंदी का प्रवेश हो रहा था। इस कारण हिंदी जानने वालों की वहाँ आवश्यकता पड़ी। गोपालराम गहमरी लिखते हैं –"सन् 1884 में बलिया जिले का बंदोबस्त हिंदी में हो रहा था। वहाँ के इंचार्ज मुंशी चेथरूलाल डिप्टी कलेक्टर थे और राबर्ट रोज साहब हिंदी के प्रेमी थे। कानूनगो धनपतराय सुंदर हिंदी लिखने वालों की खोज में पटना नार्मल स्कूल पहुँचे। वहाँ से चालीस छात्रों को बलिया लाये। मैं भी उन्हीं में पटना से बलिया आया। बलिया जिले के गड़वार में बंदोबस्त का दफ्तर था। हिंदी के कई सुलेखक उसमें काम करते थे। खसरा जमाबंदी सुबोध सुंदर देवनागरी अक्षरों में लिखने वाले मुहर्रिर सफाई कहलाते थे। सौ नंबर खेतों का खसरा लिखने पर चार आना मिलता था, इस काम से बहुत से हिंदी लेखक अपना उदर-भरण करते थे। मथुरा के मातादीन शुक्ल और जोरावर मिश्र उसमें सुयशमान सुलेखक थे कलेक्टर साहब के हिंदी प्रेम का उन दिनों डंका बज गया था।"[4] कहना न होगा कि यह वह समय था जब हिंदी की स्थिति दयनीय थी। सरकारी कार्यालयों में फारसी का दबदबा था। फारसी को अंग्रेजी शासन का प्रश्रय भी प्राप्त था। यही वह दौर था जब हिंदी के साहित्यकार भाषा के प्रश्न को लेकर काफी मुखर थे।

नवंबर सन् 1888 में गोपालराम गहमरी रोहतासगढ़ में हेडमास्टर नियुक्त हो गए। लेकिन यहाँ उनका मन नहीं लगा और बंबई के प्रसिद्ध प्रकाशक सेठ गंगाविष्णु खेमराज के आमंत्रण पर सन् 1891 में बंबई चले गए। गहमरी जी जब रोहतासगढ़ में थे तो वहीं से पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाएं भेजा करते थे। बंबई में रहते हुए वहाँ उन्होंने पुस्तक के प्रकाशन का

[4] .वही, पृष्ठ- 36

कार्यभार संभाला । लेकिन वहाँ उनके लिए रचनात्मक अवकाश नहीं था । पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी वहाँ से नहीं होता था। इसलिए रचनात्मक संतुष्टि न पाकर वे वहां से त्यागपत्र देकर सन् 1892 में राजा रामपाल सिंह के बुलावे पर कालाकांकर चले आए । गहमरी जी, राजा रामपाल सिंह के संरक्षण में कालाकांकर (प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश) से निकलने वाले दैनिक 'हिन्दोस्थान' के नियमित लेखक थे। इसके साथ ही उस समय की श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाएं 'बिहार बंधु', 'भारत जीवन', 'सार सुधानिधि' में भी नियमित रूप से लिखते थे। कालाकांकर में वे संपादकीय विभाग से सम्बद्ध हो गए और एक वर्ष तक यहीं रहे। यहीं पर काम करते हुए उन्होंने बांग्ला सीखी और अनुवाद के जरिए साहित्य को समृद्ध करने का भी प्रयास किया। "कालाकांकर में उन दिनों एक नवरत्न सभा थी, जिसमें पं. प्रतापनारायण मिश्र, बाबू शशिभूषण चटर्जी, पं. गुरुदत्त शुक्ल एवं स्वयं राजा साहब थे । 'हिन्दोस्थान' बनारस से निकलने वाला दैनिक आज का आधा केवल चार पेज का निकलता था । बाबू बालमुकुंद गुप्त अग्रलेख के सिवा टिप्पणियाँ भी लिखते थे । बाक़ी समाचार, कुछ साहित्य और स्तंभ गोपालराम गहमरी लिखते थे । पं. प्रतापनारायण मिश्र 'हिन्दोस्थान' पत्र के काव्य भाग के संपादक थे । जन्माष्टमी, पितृपक्ष, दशहरा, होली-दिवाली आदि अवसरों पर वे कविता लिखते थे । पं. राधारमण चौबे और गुलाब चंद जी अंग्रेजी अख़बारों का सार संकलन करते थे । 'इंग्लिश मैन', 'पायनियर', 'मॉर्निंग पोस्ट' और 'सिविल मिलिटरी गजट' उन दिनों एंग्लो-इंडियन अख़बारों में मुख्य थे । उनका मुँहतोड़ जवाब राजा रामपाल सिंह 'हिन्दोस्थान' में दिया करते थे ।"[5] इस तरह तद्युगीन सम्मानित रचनाकारों के साथ रहने और सीखने का अवसर उन्हें मिला ।

कालाकांकर से निकलकर सन् 1893 में वे बंबई की ओर फिर से उन्मुख हुए और यहाँ से निकलने वाली पत्रिका 'बंबई व्यापार सिंधु' का संपादन करने लगे। इस पत्र को जेनरल पोस्ट

[5] गोपालराम गहमरी (विनिबंध), संजय कृष्ण, पृष्ठ-12

ऑफिस बम्बई के एक पोस्टमैन श्री गयाप्रसाद अवस्थी ने साप्ताहिक रूप में निकाला था । लेकिन यह पत्र भी साल भर के भीतर बंद हो गया । फिर वहीं के एक हिंदी प्रेमी एस.एस. मिश्र ने गहमरी जी के आग्रह पर 'भाषा भूषण प्रेस' स्थापित करके उन्हें 'भाषा भूषण' के संपादन का भार सौंपा। यह एक मासिक पत्र था। लेकिन कुछ समय बाद यह पत्र भी बंद हो गया। इसके बंद होने के पीछे प्रकाशन और सेंसरशिप संबंधी समस्या थी ।

अपने तहसीलदार मित्र बाल मुकुंद पुरोहित के आग्रह पर वे सन् 1894 में वे बंबई से लौटकर मंडला आ गए । अपने मंडला प्रवास के बारे में वे लिखते हैं –"मंडला नर्मदा नदी के बाएं किनारे बसा है । दाहिने किनारे ठीक उसी के सामने महाराजपुर गाँव है । वहाँ के माननीय जमींदार राय मुन्ना लाल बहादुर एक सुयशवान् परोपकारी वैश्य थे । उनके उत्तराधिकारी बाबू जगन्नाथ प्रसाद चौधरी एक हिंदी प्रेमी युवक ने तहसीलदार साहब के द्वारा मुझे बुलाया था । मैं जब वहाँ पहुँचा तब चौधरी साहब ने मुझे बांग्ला पढ़ाने का काम सौंपा । चौधरी साहब को मैंने बांग्ला भाषा की शिक्षा दी और उन्होंने मेरे वहीं रहते ही बांग्ला से दो पुस्तकों का हिंदी अनुवाद करके छपवाया । एक 'दीवान गंगा गोविन्द सिंह', दूसरी पुस्तक 'महाराजा नन्द कुमार को फांसी' थी ।"[6] मंडला प्रवास के दौरान गोपालराम गहमरी जी को अच्छा सृजनात्मक अवकाश प्राप्त हुआ । इस दौरान उन्होंने कई उपन्यास भी लिखे । मंडला के आसपास मधुपुरी गाँव में डाकुओं का आतंक, वहां के पहाड़ी परिवेश आदि ने उनके जासूसी कथाओं को भी आधार प्रदान किया । "गहमरी जी ने बांग्ला उपन्यासों के आधार पर अंग्रेजी जासूसी उपन्यासों से भिन्न हिंदी में भी छोटे-छोटे उपन्यासों की रचना प्रारंभ की तथा मंडला में रहकर उनके प्रकाशन की भी व्यवस्था कराई । यहाँ पर रहते हुए गहमरी जी ने 1893 में 'चतुर चंचला' नामक मौलिक उपन्यास की रचना की । यह यूनियन प्रेस जबलपुर से छपा । 'नए बाबू' भी यहीं से छपा और

[6] .हिंदी के पहले जासूसी कथाकार गोपालराम गहमरी के संस्मरण, संजय कृष्ण (सं.), पृष्ठ- 82

इसे जगन्नाथ चौधरी को समर्पित किया । इसके अलावा 'देश दशा', 'यौवन योगिनी', 'दादा और मैं','नेमा', 'तीन पतोहू' भी प्रकाशित हुए ।"[7]

मंडला प्रवास के बाद वे पुनः बंबई आ गए । "खेमराज जी ने 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' नाम से पत्र का प्रकाशन शुरू कर दिया था। यह पत्र गहमरी जी के कुशल संपादन में थोड़े समय में ही लोकप्रिय हो गया। इसी दौरान प्रयाग से निकलने वाले 'प्रदीप' (बंगीय भाषा) में ट्रिब्यून के संपादक नगेंद्रनाथ गुप्त की एक जासूसी कहानी 'हीरार मूल्य' प्रकाशित हुई थी। गहमरीजी ने इस कहानी का हिंदी में अनुवाद कर श्री वेंकटेश्वर समाचार में कई किश्तों में प्रकाशित किया। यह जासूसी कहानी पाठकों को इतनी रुचिकर लगी कि कई पाठकों ने इस पत्र की ग्राहकता ले ली ।"[8]

कहना न होगा कि औपनिवेशिक परिवेश और व्यवस्था के "उस दौर में जासूसी ढंग की कहानियों में पाठकों की गहरी रुचि जग रही थी। इसमें रोचकता और रहस्य की ऐसी कथा गुंफित होती थी कि पाठकों के भीतर रोमांच का अनुभव होता और वे पढ़ने को विवश हो जाते थे । गहमरी जी पाठकों के मन-मस्तिष्क को समझ चुके थे। 'हीरे का मोल' के अनुवाद की लोकप्रियता और 'जोड़ा जासूस' लिखकर पाठकों की प्रतिक्रियाओं से वे अवगत हो चुके थे। इस लोकप्रियता के कारण वे कई तरह की योजनाएं बनाने लगे। वे यह भी समझ चुके थे कि जासूसी ढंग की कहानियों के जरिए ही पाठकों का विशाल वर्ग तैयार किया जा सकता है। गहमरी जी पूरी तैयारी के साथ जासूसी ढंग के लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। उल्लेखनीय बात यह भी है कि उनके साथ घटी कुछ घटनाओं ने भी जासूसी ढंग के लेखन की ओर उन्हें ढकेला ।"[9]

---

[7]. गोपालराम गहमरी (विनिबंध), संजय कृष्ण, पृष्ठ- 16
[8].वही, पृष्ठ- 16
[9].वही, पृष्ठ- 16

इस तरह कालाकांकर, कलकत्ता, मंडला, बम्बई जैसे जगहों से अनुभव एकत्रित कर सन् 1899 में ही वे घर आकर 'जासूस' पत्रिका निकालना चाहते थे, लेकिन बालमुकुंद गुप्त जी के पुत्र की शादी होने वाली थी और इसी व्यस्तता के मध्य वे 'भारत मित्र' के संपादन का भार गहमरी जी को देकर अपने गांव गुरयानी चले गए। कुछ दिनों तक गोपालराम गहमरी जी ने 'भारत मित्र' का कुशलता पूर्वक संपादन किया। इसी कारण से 'जासूस' का प्रकाशन कुछ समय के लिए स्थगित हो गया। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि 'सरस्वती' के साथ ही 'जासूस' का भी प्रकाशन हो, लेकिन यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी । अंततः 'जासूस' का प्रकाशन मई सन् 1900 में शुरू हुआ। गौरतलब है कि गोपालराम गहमरी जी ने 'भारत मित्र' के सम्पादन के दौरान ही 'जासूस' के निकलने की सूचना दे दी थी। इसका लाभ यह हुआ कि सैकड़ों पाठकों ने प्रकाशित होने से पहले ही पत्रिका की ग्राहकी ले ली। क्योंकि अनूदित कहानी 'हीरे का मोल' की लोकप्रियता ने पाठकों में इस तरह की कथा के लिए पर्याप्त रुचि जगा दी थी । "उन्होंने अपनी पत्रिका का नामकरण ऐसे किया जिससे आम पाठक आसानी से उसकी विषय वस्तु को समझ सके । 'जासूस' शब्द से हालांकि यह बोध होता है कि इसमें जासूसी ढंग की कहानियां ही प्रकाशित होती होंगी, लेकिन ऐसी बात नहीं थी। उसके हर अंक में एक जासूसी कहानी के अलावा समाचार, विचार और पुस्तकों की समीक्षाएं भी नियमित रूप से छपती थीं। जासूस निकालने के लिए उन्हें कुछ धन की आवश्यकता थी, इसकी पूर्ति उन्होंने 'मनोरमा' और 'मायाविनी' लिखकर कर ली । 'जासूस' का पहला अंक बाबू अमीर सिंह के हरिप्रकाश प्रेस से छपकर आया और पहले ही महीने में वीपीपी से पौने दो सौ रुपए की प्राप्ति हुई। इस पत्रिका ने अपने प्रवेशांक से ही लोकप्रियता की सारी हदों को पार करते हुए शिखर को छू लिया था। इसकी अपार लोकप्रियता को देखकर गोपालराम गहमरी जब जासूसी ढंग की कहानियों और

उपन्यासों के लेखन की ओर प्रवृत्त हो हुए तो फिर उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा । उन्होंने प्रवेशांक में जासूस का परिचय कुछ इस अंदाज में पेश किया- "डरिये मत, यह कोई भकौआ नहीं है, धोती सरियाकर भागिए मत, यह कोई सरकारी सीआईडी नहीं है। है क्या? क्या है? है यह पचास पन्ने की सुंदर सजी-सजायी मासिक पुस्तक, माहवारी किताब जो हर पहले सप्ताह सब ग्राहकों के पास पहुंचती है। हर एक में बड़े चुटीले, बड़े चटकीले, बड़े रसीले, बड़े गरबीले, बड़े नशीले मामले छपते हैं। हर महीने बड़ी पेचीली, बड़ी चक्करदार, बड़ी दिलचस्प घटनाओं से बड़े फड़कते हुए, अच्छी शिक्षा और उपदेश देने वाले उपन्यास निकलते हैं।..कहानी की नदी ऐसी हहराती है, किस्से का झरना ऐसे झरझराता है कि पढ़ने वाले आनंद के भंवर में डूबने-उतराने लगते हैं ।"[10]

इस तरह 'जासूस' पत्रिका अपने रोचक विषय और पाठकों की बदौलत पूरे 38 वर्ष तक 'गहमर' जैसे गांव से अनवरत निकलती रही। पाठकीय संस्कृति के विकास में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा ।

गोपालराम गहमरी ने जासूसी साहित्य से हटकर आध्यात्मिक विषयक दो पुस्तकें भी लिखीं। 'इच्छाशक्ति' उनकी बांग्ला से अनुवादित रचना थी और 'मोहिनी विद्या', मैस्मेरिज्म पर अनूठी और हिंदी में संभवतः पहली रचना थी। गौरतलब है कि उपरोक्त दोनों पुस्तकें हिंदी पाठकों द्वारा काफी पसंद की गईं। इस तरह वे एक कुशल लेखक के साथ-साथ एक कुशल अनुवादक और सजग संपादक के रूप में जीवन पर्यंत साहित्य सेवा में लगे रहे । उनका देहांत 20 जून सन् 1943 को हुआ । उनके देहांत के बाद उनके साहित्यिक अवदान को रेखांकित करते हुए मार्च सन् 1950 में 'हैहय क्षत्रिय मित्र' पत्रिका का गहमरी-गौरव-अंक प्रकाशित हुआ था । आज

[10] .वही, पृष्ठ- 17-18

जरूरत है कि तमाम पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर उनके साहित्यिक अवदान का अध्ययन-अनुशीलन हो। यह अध्ययन उस युग की पाठकीय वृत्ति को समझने में सहायक है।

2.2.गोपालराम गहमरी का रचना संसार:

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के विकास में गोपालराम गहमरी का योगदान अविस्मरणीय है। हिंदी को उस दौर में पाठकों तक पहुँचाने के लिए उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में उन्होंने लेखन कार्य किया। यह हिंदी जगत का दुर्भाग्य है कि साहित्येतिहास में उपेक्षित गोपालराम गहमरी के साहित्य का संरक्षण भी सही से नहीं हो पाया। ज्ञानचंद जैन ने भी अपनी किताब 'प्रेमचंद-पूर्व के हिंदी उपन्यास' में इस तरफ ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने गोपालराम गहमरी के साहित्यिक अवदान को रेखांकित करते हुए लिखा है-"कथा क्षेत्र में गोपालराम गहमरी के योगदान के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने अपने जासूसी उपन्यासों में भी सामाजिक उपन्यासों का रंग भरा है। यह बात उनकी सत्य घटनाओं पर आधारित रचनाओं पर विशेष रूप से लागू होती है। वह अपने जासूसी उपन्यासों की कथाभूमि अपने समकालीन समाज के जन-जीवन के अनेकानेक बोलते हुए चित्रों से सजा देते हैं। गोपालराम गहमरी ने अपनी जिस भाषा-शैली के आधार पर उपन्यास पाठकों के दिल में अपनी जगह बनाई वह 'जासूस' के संपादन काल में विकसित हुई। इस भाषा-शैली की विशेषताएँ थीं- दैनिक बोलचाल की व्यंजक भाषा, युगीन सामाजिक परिवेश का चित्रण तथा समकालीन शहरी तथा ग्रामीण जन-जीवन के बोलते चित्र।"[11]

विभिन्न इतिहास ग्रंथों, श्यामसुन्दर दास कृत 'हिंदी के निर्माता'(भाग-2), गोपालराम गहमरी के संस्मरणों और गोपालराम गहमरी पर लिखे गए विनिबंध के आधार पर उनके रचनाकर्म की एक सूची यहाँ प्रस्तुत है –

[11] .प्रेमचंद-पूर्व के हिंदी उपन्यास, ज्ञानचंद जैन, पृष्ठ- 170

मौलिक जासूसी उपन्यास :

1.'अजीब तारा' 2.'जासूस की जवाँमर्दी' 3.'गुप्त भेद' 4.'जासूस पर जासूसी' 5. 'डबल जासूस' 6. 'जैसा मुंह वैसा थप्पड़' 7. 'खूनी कौन' 8. 'सरवर की सुरागरसानी' 9. 'गाड़ी में खून' 10. 'चाँदी का चक्कर' 11. 'जासूस की भूल' 12. 'खूनी की चालाकी' 13. 'अंधे को आंख' 14. 'घूसन लाल दरोगा' 15. 'जासूस की चोरी' 16. 'भीतर का भेद' 17. 'किले में खून' 18. 'धुरंधर जासूस' 19. 'जासूस पर जासूस' 20. 'हमारी डायरी' 21. 'भयंकर चोरी' 22. 'रूप संन्यासी' 23. 'जासूस की डायरी' 24. 'लटकती लाश' 25. 'जासूस की बुद्धि' 26. 'कोचवान का खून' 27. 'कैदी की करामात' 28. 'हम हवालात में' 29. 'देवी नहीं दानवी' 30. 'खूनी' 31. 'लड़कों की चोरी' 32. 'ठगों का ठाठ' 33. 'सोहनी गायब' 34. 'लाश किसकी है' 35. 'डॉक्टर की कहानी' 36. 'केशिनी बाई' 37. 'केतकी की शादी' 38. 'खूनी का भेद' 39. 'घर का भेदी' 40. 'मत्तो-मत्तो' 41. 'हत्या कृष्ण' 42. 'नेमा' 43. 'अपराध की चालाकी' 44. 'योग महिमा' 45. 'सुंदर वेणी' 46. 'अर्थ का अनर्थ' 47. 'अपनी राम कहानी' 48. 'मरे हुए की मौत' 49. 'विकट भेद' 50. 'जासूस की विजय' 51. 'भयंकर चोरी' 52. 'मुर्दे की जांच' 53. 'मेम की लाश' 54. 'जासूस जगन्नाथ' 55. 'डकैत कालूराम' 56. 'स्वयंबरा' 57. 'भंडाफोड़' 58. 'हंसराज की डायरी' 59. 'होली का हर भोंग' 60.'रहस्य विप्लव' 61. 'जमींदार का जुल्म' 62. 'नगदनारायण' 63 'झंडा डाकू'. 64. 'डबल बीबी' 65. 'गेरुआ बाबा' 66. 'ठनठन गोपाल' 67. 'जासूस की डाली' 68. 'बलिहारी बुद्धि' 69. 'मायावी' 70. 'मनोरमा' 71. 'सिरकटी लाश'

अनूदित जासूसी उपन्यास :

1.'हीरे का मोल' 2.'विकट बदलौअल' 3.'नीलवसना सुंदरी' 4.'मायाविनी' 5. 'कपट रूप वाला' 6.'जासूस के चक्कर' 7.'जय-पराजय' 8. 'प्रतिज्ञापालन' 9.'लाइन पर लाश' 10.'भयंकर भूल' 11.'मृत्युविभीषिका' 12.'डाकू की पहुनाई' 13.'कामरूप का जादू'

अन्य ग्रंथों से प्रेरित जासूसी उपन्यास:

1.'दो बहन' 2.'भानुमति' 3.'जोड़ा डिटेक्टिव' 4.'जालराजा' 5.'संदूक में मुर्दा', 6.'डबल चोर' 7.'बेगुनाह का खून' 8.'फिरोजा बीबी' 9.'वाह रे जासूस' 10.'घटना घटाटोप' 11.'थाना की चोरी' 12.'देवी सिंह' 13.'हरिदास की गिरफ्तारी' 14.'जाली बीबी और डाकू साहब' 15.'सती शोभना' 16.'खूनी की खोज' 17.'सुमित्रा देवी' 18.'अद्‌भुत खून' 19.'साहब जासूस' 20.'बेकसूर की फाँसी' 21.'वजीरन बीबी' 22.'कटा सिर' 23.'खून' 24.'जासूसी तिगड्डा' 25. 'विलायती जासूस' 26.'दो लाख रुपया' 27.'मरियम' 28.'शठ-शिरोमणि' 29.'केंचुए के बिल में साँप' 30.'अद्‌भुत जासूस' 31.'चोर की चालाकी' 32.'मस्तराम का झोला' 33.'सुनहरी टोली' 34.'गाड़ी में लाश' 35. 'गाड़ी में मुर्दा' 36.'चक्रभेद' 37.'जमुना बेगम' 38.'घरेलू घटना' 39.'परिचय' 40.'पिशाच लीला' 41.'साहब की गिरफ्तारी' 42.'गुप्त पुलिस' 43.'काशी की घटना' 44.'उड़न खटोला' 45.'यारों की लीला' 46.'मेरी वह मेरीना'

सामाजिक उपन्यास : 1.'चतुर चंचला' 2.'नए बाबू' 3.'बाकी बेबाक' 4.'आदमी बनो' 5.'ननद भौजाई' 6.'संकट में शिक्षा' 7.'पत्नी' 8.'आशा' 9.'अंधे के हाथ बटेर' 10. 'दादा और मैं' 11.'डबल बीबी' 12.'माधवी कंकण' (अनूदित) 13.'कर्म मार्ग'(अनूदित)

सामाजिक उपन्यास अन्य ग्रंथ पर आधारित:

1.'सास पतोहू' 2.'तीन पतोहू' 3.'गृहलक्ष्मी' 4.'बड़ा भाई' 5.'देवरानी जेठानी'

ऐतिहासिक उपन्यास:

1.'अमर सिंह' 2.'खून' 3.'हम हवालात में' 4.'बेबादल का ब्रज' 5.'आसमानी कातिल' 6.'घड़े में थाली' 7.'थानेदार को थप्पड़' 8.'चोर की बुद्धि ' 9.'लंगड़ बाबू' 10.'संदेह भंजन' 11.'भगेलू का भाग्य' 12.'एक्सीडेंटल'

नाटक:

1.'वर्तमान बंचक चपेट एकांकी' 2.'देशदशा' 3.'विद्या विनोद' 4.'जीवन सुधार' 5.'बभ्रु वाहन' 6.'जन्मभूमि' 7.'बनवीर' 8.'यौवन योगिनी'(अनूदित)

जासूसी कहानियाँ:

1.'डिप्टी का न्याय' 2.'अपराधी की वकालत' 3.'सूम का मंत्र' 4.'हीरे की धुकधुकी' 5.'गुप्तकथा' 6.'अटल प्रतिज्ञा' 7.'प्रेमी को फांसी' 8.'चित्र में चलो सैंया' 9.'विफल प्रयास' 10.'लीलाधर की कहानी' 11.'गुप्त फ़ोटो' 12.'हीरों का कंठा' 13.'जाली काका' 14.'लंगड़े की सैर' 15.'मालगोदाम में चोरी' 16.'जासूस का धोखा'

आध्यात्म संबंधी रचनाएँ:

1.'इच्छा शक्ति' 2.'जीवन मृत रहस्य' (अनुवाद) 3 .'मोहिनी विद्या'

काव्य रचनाएँ:

1.'सोना शतक' 2.'वसंत विलास' 3.'चित्रांगदा'(रवींद्रनाथ टैगोर की रचना का अनुवाद)

व्यंग्य प्रधान रचनाएँ:

1.'प्लेग का वक्तव्य' 2.'गोबर गणेश संहिता' (अनुवाद), 3.'रंग की बातें'

अन्य फुटकर रचनाएँ:

1.'विचित्र चोरी' 2.'गुमनाम चिट्ठी' 3.'सच्ची घटना' 4.'भर्तृहरिसार'(संकलन) 5.'छापेखाने का कानून'(अनुवाद) 6.'ततिया की बहादुरी'(अनुवाद) 7.'मन्नू से रे मुन्ना लाल बहादुर' 8.'दीर्घ जीवन'।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गोपालराम गहमरी ने तमाम साहित्यिक विधाओं में भरपूर लेखन किया। कहना न होगा कि हर युग की अपनी सीमाएँ होती हैं। इसी तरह हर आलोचक की भी अपनी सीमाएँ होती हैं। युग परिवेश और सामाजिक अहर्ताओं को देखते हुए साहित्य की परिभाषाएँ गढ़ी जाती है। इस परिभाषा की परिधि में कुछेक रचनाकार नहीं शामिल हो पाते हैं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता है कि उनका साहित्यिक अवदान कुछ भी नहीं है। हिंदी साहित्येतिहास में गोपालराम गहमरी के लेखन को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल से लेकर तमाम आलोचकों ने जगह दी है। यह अलग बात है कि किसी ने पाठकीय वृत्ति के विकास में उनके योगदान को सराहा है तो किसी ने भाषा की प्रशंसा की है और किसी ने जासूसी उपन्यास की नवीन धारा के जनक के रूप में उन्हें याद किया है। लेकिन लोकप्रिय साहित्य और गंभीर साहित्य के बँटवारे के फलस्वरूप उन जैसे लेखकों का सम्यक मूल्यांकन संभव नहीं हो पाया। यह साहित्यिक पूर्वाग्रह ही है कि हम पीछे मुड़कर देखना तक नहीं चाहते। जबकि साहित्य के विकास और भाषा के विकास के संदर्भ को व्याख्यायित करने के लिए हमें उस दौर में लौटना ही होगा ताकि उन रचनाकारों का भी उचित मूल्यांकन हो सके जो अभी तक साहित्यालोचकों के पूर्वाग्रहों के शिकार हैं।

2.3. हिंदी पत्रकारिता और गोपालराम गहमरी : हिंदी साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत 30 मई 1826 ई. से

प्रथम हिंदी साप्ताहिक पत्र 'उदंत मार्तण्ड' के प्रकाशन से मानी जाती है । इसके संपादक पंडित जुगलकिशोर थे । इस पत्रिका के कुल 79 अंक ही प्रकाशित हो पाए और 4 दिसंबर 1827 ई. को आखिरी अंक के साथ इसका प्रकाशन बंद हो गया । 1826 ई. से 1873 ई. तक को हम हिंदी पत्रकारिता का पहला चरण कह सकते हैं। 1873 ई. में भारतेंदु ने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' की स्थापना की। एक वर्ष बाद यह पत्र 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नाम से प्रसिद्ध हुआ। ध्यातव्य है कि भारतेंदु का 'कविवचन सुधा' पत्र 1867 ई. में ही सामने आ गया था और उसने पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान भी दिया किंतु नई भाषा-शैली का प्रवर्तन 1873 ई. में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' से ही हुआ। हरिश्चंद्र मैगजीन' ने जहाँ एक ओर हिंदी पत्रकारिता का आदर्श स्वरूप स्थापित किया, वहीं उसने खड़ी बोली को व्यावहारिक रूप देने का भी प्रयास किया । हिंदी गद्य-शैली के विकास में इसका योगदान महत्त्वपूर्ण है । 'उदंत मार्तण्ड' के बाद निकलने वाली प्रमुख पत्रिकाएँ निम्नलिखित हैं-

बंगदूत (1829 ई.), प्रजामित्र (1834 ई.), बनारस अखबार (1845 ई.), मार्तंड पंचभाषीय (1846 ई.), ज्ञानदीप (1846 ई.), मालवा अखबार (1849 ई.), जगद्दीप भास्कर (1849 ई.), सुधाकर (1850 ई.), साम्यदन्त मार्तंड (1850 ई.), मजहरुलसरूर (1850 ई.), बुद्धिप्रकाश (1852 ई.), ग्वालियर गजेट (1853 ई.), समाचार सुधावर्षण (1854 ई.), दैनिक कलकत्ता, प्रजाहितैषी (1855 ई.), सर्वहितकारक (1855 ई.), सूरजप्रकाश (1861 ई.), जगलाभचिंतक (1861 ई.), सर्वोपकारक (1861 ई.), प्रजाहित (1861 ई.), लोकमित्र (1835 ई.), भारतखंडामृत (1864 ई.), तत्वबोधिनी पत्रिका (1865 ई.), ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका (1866 ई.), सोमप्रकाश (1866 ई.), सत्यदीपक (1866 ई.), वृत्तांतविलास (1867 ई.), ज्ञानदीपक (1867 ई.), कविवचनसुधा (1867 ई.), धर्मप्रकाश (1867 ई.), विद्याविलास (1867 ई.), वृत्तांतदर्पण

(1867 ई.), विद्यादर्श (1869 ई.), ब्रह्मज्ञानप्रकाश (1869 ई.), अलमोड़ा अखबार (1870 ई.), आगरा अखबार (1870 ई.), बुद्धिविलास (1870 ई.), हिंदू प्रकाश (1871 ई.), प्रयागदूत (1871 ई.), बुंदेलखंड अखबर (1871 ई.), प्रेमपत्र (1872 ई.) और बोधा समाचार (1872 ई.)।

इन पत्रों में से कुछ मासिक थे, कुछ साप्ताहिक। लेकिन भारतेंदु के आगमन के साथ ही हिंदी पत्रकारिता का दूसरा चरण प्रारंभ होता है। इस चरण को सन् 1900 तक मान सकते हैं। 1873 ई. से 1900 ई. के बीच पत्रों की संख्या साढ़े तीन सौ के करीब पहुँच गई थी जो देश के विभिन्न क्षेत्रों से निकलती थी। 1873 ई. से 1900 ई. के मध्य निकलने वाली पत्रिकाओं में जो प्रमुख थे उनके नाम निम्नलिखित हैं –

पंडित रुद्रदत्त शर्मा, (भारतमित्र, 1878 ई.), बालकृष्ण भट्ट (हिंदी प्रदीप, 1877 ई.), दुर्गाप्रसाद मिश्र (उचित वक्ता, 1880 ई.), पंडित सदानंद मिश्र (सारसुधानिधि, 1878 ई.), पंडित वंशीधर (सज्जन-कीर्त्ति-सुधाकर,1878 ई.), बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' (आनंदकादंबिनी, 1881 ई.), देवकीनंदन त्रिपाठी (प्रयाग समाचार, 1882 ई.), राधाचरण गोस्वामी (भारतेन्दु, 1882 ई.), पंडित गौरीदत्त (देवनागरी प्रचारक, 1882 ई.), राज रामपाल सिंह (हिन्दोस्थान,1885 ई.), प्रतापनारायण मिश्र (ब्राह्मण, 1883 ई.), अंबिकादत्त व्यास, (पीयूषप्रवाह, 1884 ई.), बाबू रामकृष्ण वर्मा (भारतजीवन, 1884 ई.), पं. रामगुलाम अवस्थी (शुभचिंतक, 1888 ई.), श्रीमती हेमंत कुमारी देवी (सुगृहिणी मासिक 1888 ई.), योगेशचंद्र वसु (हिंदी बंगवासी, 1890 ई.), पं. कुंदनलाल (कवि व चित्रकार, 1891 ई.), बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (नागरी नीरद, 1892 ई.) और बाबू देवकीनंदन खत्री एवं बाबू जगन्नाथदास (साहित्य सुधानिधि, 1894 ई.),

1896 ई. में 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ हुआ । इस पत्रिका के माध्यम से गंभीर साहित्य-समीक्षा का आरंभ हुआ । इसमें शोधपरक साहित्यिक और सांस्कृतिक रचनाओं का प्रकाशन होता था । आरंभ में इसके संपादक बाबू श्यामसुन्दर दास, सुधाकर द्विवेदी, कालिदास और राधाकृष्ण दास थे ।

सन् 1900 से 1920 के मध्य हिंदी पत्रकारिता को एक नई दिशा मिली । सन् 1900 में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के नए युग का आरंभ है । सन् 1903 में इसके संपादन का कार्यभार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने संभाला । इससे पूर्व तीन वर्षों तक 'सरस्वती' का संपादन नागरी प्रचारिणी सभा की समिति के निर्देशन में श्यामसुंदर दास ने किया । "भारतेंदु ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से खड़ी बोली का स्वरूप सामने रखा । द्विवेदी जी ने खड़ी बोली गद्य को शब्दानुशासन के ढांचे में डाला, उसे काट-छांट कर अभिव्यक्तिपूर्ण, सरल वाक्य तथा सबकी समझ में आनेवाले शब्दों को चलाया । इस प्रकार उन्होंने हिंदी भाषा पक्ष को मजबूत किया । दूसरी ओर न केवल साहित्य बल्कि दर्शन, विज्ञान, आर्थिक साहित्य आदि पर भी लेखों का संकलन कर प्रकाशित किया ।"[12] द्विवेदी जी ने लगभग सभी अंक में भाषा एवं लिपि की चर्चा को स्थान दिया । "'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में हिन्दी और नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के अनेक पहलुओं पर विचार किया गया था । द्विवेदी जी की उदार विचारधारा, उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण और उनका विभिन्न भाषाओं का गहन भाषा शास्त्रीय एवं साहित्यिक अध्ययन उन्हें किसी भी भाषा या लिपि का विरोधी बनने से रोकता था । इसीलिए उनके नेतृत्व में हिन्दी आंदोलन नवजागरण काल के हिन्दी आंदोलन की तुलना में अधिक संयत, परिष्कृत और उदार दिखाई पड़ता है ।"[13]

गोपालराम गहमरी को जासूसी उपन्यासकार के रूप में ही जाना जाता है । लेकिन उन्होंने हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में जो योगदान दिया वह अविस्मरणीय है । वे अपने समय के

[12] .हिन्दी पत्रकारिता भारतेन्दु-पूर्व से छायावादोत्तर-काल तक, धीरेन्द्रनाथ सिंह, पृष्ठ- 61
[13] .संयुक्त प्रांत की हिन्दी पत्रकारिता में भाषा चेतना का विकास, श्रीश चन्द्र जैसवाल, पृष्ठ-146

कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं से बतौर संपादक और सहायक संपादक जुड़े रहे । इन पत्रिकाओं में 'जासूस', 'समालोचक', दैनिक 'हिन्दोस्थान' 'भारतमित्र', बंबई व्यापर सिंधु', 'भाषा भूषण', 'साहित्य सरोज', और 'बिहार बंधु' आदि को गिना जा सकता है । उन्होंने एक लंबा समय पत्रकारिता के क्षेत्र में व्यतीत किया । यह वह दौर था जहाँ एक तरफ औपनिवेशिक सत्ता प्रेस संबंधी सेंसरशिप लागू करने में जुटी थी तो वहीं इन पत्रिकाओं के माध्यम से भारतीय जनता में नवजागरणकालीन चेतना जगाने का प्रयास किया जा रहा था । यह दौर साहित्येतिहास की दृष्टि में पाठकीय संस्कृति पैदा करने और भाषा के विकास की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है । कहना न होगा कि तद्युगीन साहित्यकार पत्रिकाओं के माध्यम से इस कार्य में जुटे थें ।

गोपालराम गहमरी ने न केवल हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में जासूसी उपन्यासों का सूत्रपात किया बल्कि 'जासूस' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने पाठकीय संस्कृति के विकास में भी अपना योगदान दिया । उन्होंने मई सन् 1900 में मासिक पत्रिका 'जासूस' का प्रकाशन शुरू किया । ज्ञानचंद जैन लिखते हैं –"जिस प्रकार बालकृष्ण भट्ट ने अपना पेट काट और खून सुखाकर 'हिन्दी प्रदीप' को 33 साल तक प्रदीप्त रखा, उसी प्रकार गोपालराम गहमरी ने 'हैन्ड टू माउथ' जिन्दगी गुजारते हुए 'जासूस' को 38 वर्ष तक चलाया । उससे जो आय होती थी उसी में लग जाती थी ।"[14] "जासूस अपने विषय की अकेली पत्रिका थी, जिसने लोकप्रियता के साथ-साथ स्थायित्व ग्रहण किया । यद्यपि इससे संबंधित कुछ और पत्रिकाओं का उल्लेख मिलता है लेकिन वे न इतनी लोकप्रिय हो सकीं और न उन्हें स्थायित्व ही मिल सका । यह गोपालराम गहमरी की जीवटता और बुद्धिमत्ता ही थी कि उन्होंने अनेक झंझावतों-संघर्षों को झेलते हुए इसे निरंतर प्रकाशित किया और हिंदी भाषा के विकास व विस्तार के लिए सदैव प्रतिबद्ध रहे ।"[15] आज भी कितनी ही पत्रिकाएँ पाठकों के आभाव और अर्थाभाव में बंद हो जाती हैं । उस दौर में चार दशक तक एक पत्रिका का निरंतर प्रकाशित होते रहना मामूली बात नहीं थी । यहाँ

[14] .प्रेमचंद-पूर्व के हिन्दी उपन्यास, ज्ञानचंद जैन, पृष्ठ- 163
[15] .गोपालराम गहमरी (विनिबंध), संजय कृष्ण, पृष्ठ- 22-23

गोपालराम गहमरी का श्रम साफ झलकता है । कहना न होगा कि 'जासूस' के प्रकाशन का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं था । मनोरंजन के साथ-साथ अपने समय और समाज की विसंगतियों से पाठकों का साक्षात्कार कराना भी एक मुख्य उद्देश्य था । "जासूस के प्रत्येक अंक में कहानी अथवा उपन्यास प्रकाशित होते थे । पत्रिका में साहित्यिक एवं ग़ैर साहित्यिक समाचार, विचार पुस्तकों की समालोचना अथवा अन्य सूचनाएँ दी जाती थीं । इनर कवर पर पत्र के क़ानून अथवा अन्य सूचनाएँ दी जाती थीं ।"[16]

गोपालराम गहमरी का पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने न केवल जासूसी कथाओं को लोगों तक पहुँचाया बल्कि हजारों पाठकों की रुचि को समझते हुए उनकी अपेक्षाओं पर भी खड़े उतरे । औपनिवेशिक शासन के अँधेरे में जन्म ले रही अपराध वृत्ति के सामाजिक समीकरण को भी उन्होंने 'जासूस' के माध्यम से जासूसी कथाओं में बुनकर लोगों तक पहुँचाया । साहित्यिक सम्मेलन, प्रकाशन संबंधी चर्चाओं के साथ ही उस दौर की साहित्यालोचना को लेकर भी गोपालराम गहमरी चिंतित दिखाई देते हैं । 'जासूस' में नागरी प्रचारक से संबंधित अपनी एक टिप्पणी में वे लिखते हैं –"इन दिनों हिंदी में समालोचना लेखकों की भिन्न –भिन्न रुचि का एग्जीविशन हो रहा है । कोई गुण वर्णन को ही समालोचना कहते हैं, कोई केवल दोष ही दोष देखने को समालोचना बतलाते हैं, कोई बाहर के ही दोष दर्शन में फँस जाते हैं, कोई विज्ञापन की भांति कीर्तन को ही समालोचना का शीर्षक बनाते हैं किंतु ये सब समालोचना नहीं, बल्कि स्वार्थ के घोड़े पर खोगीर का काम करते हैं । ख़ुशी की बात है कि सहयोगी नागरी प्रचारक समालोचना के इस अकाल में भी इसका स्वाद चखाया करता है । लेख इसके उत्तम एवं उपयोगी होते हैं । इसमें कविता भी चुटीली और हृदयग्राहिणी

[16] . वही, पृष्ठ- 23

छपती है । हास परिहास के लेख भी समयानुसार रहते हैं । कहने का मतलब यह कि इसमें सब रस मौजूद हैं ।"[17]

उपरोक्त टिप्पणी से न केवल तद्युगीन साहित्यालोचना की दशा का पता चलता है बल्कि गोपालराम गहमरी की साहित्यालोचना के प्रति चिंता भी जाहिर होती है । आज सौ साल बाद भी साहित्यालोचना की दशा क्या है! वह किसी से छुपी नहीं है । साहित्यालोचना के नाम पर पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले लेख साहित्यिक राजनीति के शिकार मालूम होते हैं ।

गोपालराम गहमरी ने 'समालोचक' पत्रिका के माध्यम से साहित्यालोचना को दिशा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया । यह साहित्येतिहास का दुर्भाग्य ही है कि 'समालोचक' पत्रिका के संपादक के रूप में सिर्फ चंद्रधर शर्मा गुलेरी को याद किया जाता रहा है जबकि हकीक़त यह है कि गोपालराम गहमरी इसके पहले संपादक थे । इस पत्रिका का प्रकाशन अगस्त 1902 में आरंभ हुआ था । यह एक मासिक पत्रिका थी । गोपालराम गहमरी जुलाई 1903 तक 'समालोचक' के संपादक बने रहे और उसके बाद चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने इसका कार्यभार संभाला । संजय कृष्ण लिखते हैं- "अपने समय के कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं के संपादक रहे गोपालराम गहमरी को भी जासूसी लेखक के तौर पर सीमित कर उनके काम को नजरंदाज करने की कोशिश की गई जबकि 'समालोचक' के पहले संपादक गोपालराम गहमरी थे, चंद्रधर शर्मा गुलेरी नहीं । गहमरी के संपादन में निकलने वाली इसी पत्रिका में कविता में खड़ी बोली को लेकर बहस चली थी । गहमरी अन्यत्र खड़ी बोली के पक्ष में लिख चुके थे । उनका साफ मानना था कि यह कवि पर निर्भर करता है भाषा पर नहीं । उस समय यह बात कहना बड़ी बात थी । लेकिन गहमरी जी खड़ी बोली के साथ खड़े थे । इस तरह का पत्र था 'समालोचक' ।"[18]

[17] . वही, पृष्ठ- 31

[18] .गोपालराम गहमरी और 'समालोचक', संजय कृष्ण (लेख),आजकल (पत्रिका), अंक-अप्रैल 2020, पृष्ठ- 33

गोपालराम गहमरी ने 'समालोचक' के कुल आठ अंकों का संपादन किया । जनवरी-फरवरी 1903, मार्च-अप्रैल-मई 1903 और जून-जुलाई 1903 अंक संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हुआ । इसका पहला अंक यूनियन प्रेस कम्पनी लिमिटेड, जबलपुर से प्रकाशित हुआ । दूसरा(सितम्बर,1902), तीसरा(अक्टूबर,1902), चौथा(नवंबर,1902), पांचवां(दिसंबर ,1902) और छठवाँ-सातवाँ (सयुक्तांक, फरवरी,1903) अंक धार्मिक प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ । आठवाँ-नौवां-दसवां (संयुक्तांक, मई,1903) और ग्यारहवां-बारहवां(संयुक्तांक, जुलाई,1903) अंक चंद्रप्रभा प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुआ । जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह एक तरह की साहित्यालोचना केंद्रित पत्रिका थी । इस पत्रिका की नियमावली जो हर अंक के शुरुआत में ही लिखी होती थी उससे इस पत्रिका और इसके संपादक की साहित्यालोचना के प्रति गंभीरता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । नियमावली कुछ इस प्रकार है :

"1. 'समालोचक' हर अंग्रेजी महीने के दूसरे सप्ताह में निकला करेगा ।

दाम इसका सालाना १।।) है । साल भर से कम का कोई ग्राहक न हो सकेगा और उसका टिकट भेजे बिना नमूना भी नहीं पा सकेगा ।

2. 'समालोचक' में जो विज्ञापन छपेंगे उनमें कुछ भी झूठा व अतिरंजित होगा तो उसकी समालोचना करके सर्व साधारण को धोखे से बचाने की चेष्टा की जायगी । कोई विज्ञापन बिना पूरी जाँच किये नहीं छापी जायगी ।

3. आयी हुई वस्तुओं की बारी २ से समालोचना होगी । किसी की व्यक्तिगत विरोध से भरी वा असभ्य शब्द पूरित समालोचना नहीं छापी जायगी। जिस वस्तु की समालोचना छापी जायगी उसकी न्याय और युक्ति पूर्ण पक्षपात शून्य समालोचना छापी जायगी ।

4.जो पुस्तक व पोथी जघन्य अथवा महानिन्दित और सर्व साधारण के लिए अहितकर होगी उसका प्रचार और प्रकाश बन्द करने के लिए उचित उद्योग किया जायगा । जो उत्तम, उपकारी और सर्व साधारण में प्रचार योग्य होगी उसके प्रचार का उचित उद्योग

किया जायगा, इन पुस्तकों के सुलेखकों को प्रशंसा-पत्र व पुरस्कार प्रदानादि से उत्साहित किया जायगा ।

5. जो समालोचना समालोचक समिति के विद्वान और सभ्यों की लिखी वादाविवाद से उत्तम और सुयुक्तिपूर्ण होगी वही छापी जायगी । समालोचक की छपी समालोचना किसी व्यक्ति विशेष की लिखी नहीं समझना चाहिये ।

6.समालोचक के लिए लेख, समाचार पत्र, पुस्तक आदि समालोचक सम्पादक के नाम गहमर (गाजीपुर) को भेजना चाहिये और मूल्यादि ग्राहक होने की चिट्ठी, पता बदलने के पत्र विज्ञापन के मामले की चिट्ठी पत्री सब समालोचक के मैनेजर मिस्टर जैनवैद्य जौहरी बाज़ार जैपुर के पते पर भेजना चाहिये ।"[19]

नियमावली की भाषा को यहाँ ज्यों का त्यों रखा गया है । पत्रिका के प्रकाशन और वितरण संबंधी ये छह नियम थे । प्रवेशांक के अगले ही पन्ने पर आगमन के अंतर्गत लिखा मिलता है, कि "इस पत्र का मुख्य उद्देश्य समालोचना होगा उसके साथ साहित्य की आलोचना भी इसमें रहा करेगी ।"[20] गोपालराम गहमरी ने इसके विभिन्न अंकों में उन्होंने 'हिंदी की चिंदी', 'पद्य की भाषा', 'हिंदी साहित्य की वर्तमान दशा', 'खड़ी बोली पद्य का अनुकूल समय', 'साहित्य और समालोचना', 'खड़ी बोली की कविता', 'नाटक की भाषा','भारतवर्ष का इतिहास', 'राष्ट्रभाषा', 'उपन्यास में स्त्री चरित्र' जैसे लेख लिखे । 'समालोचक' के दिसंबर 1902 अंक में नाटक की भाषा को लेकर एक लेख छपा था । नाट्य लेखन के उस शुरूआती दौर में पात्रानुकूल भाषा को लेकर बहस जारी थी । इस विषय में हस्तक्षेप करते हुए गहमरी जी लिखते हैं –"नाटक और उपन्यासादि में पात्रानुसार कथोपकथन की भाषा और ग्राम्यता व्यवहार से सुकुमार साहित्य शिल्प की शोभा वृद्धि होती है उसको साहित्य सेवीमात्र स्वीकार करेंगे । इसका कारण यह है कि नाटकादि के विवृत चरित्र नाना प्रकार और विविध श्रेणी के होते हैं । अतएव उनकी

[19] .नियमावली, गोपालराम गहमरी (सं.), समालोचक(पत्रिका), अंक-1, भाग-1, अगस्त-1902, पृष्ठ-2
[20] आगमन, वही, पृष्ठ-3

भाषा भी उसी प्रकार नाना श्रेणी की होनी चाहिए। नाटक में राजा, मानती, सभासद व संभ्रांत वंश के नायक-नायिका की भाषा, शास्त्रदर्शी ब्राह्मण पंडित की भाषा, दूत-दूतिनी, प्रतिहारी, दास-दासी अथवा अन्यान्य पात्र-पात्रियों की भाषा समान होने पर नाटकादि का सौन्दर्य और रस भंग होता है।"[21]

राष्ट्रभाषा का प्रश्न उस दौर में जातीयता से जुड़ता है। गहमरी जी 'समालोचक' के जनवरी-फरवरी 1903 अंक में पं. बामन पेठे द्वारा मराठी में लिखित और पं. गंगा प्रसाद अग्निहोत्री द्वारा हिंदी में अनूदित 'राष्ट्रभाषा' पुस्तक की समीक्षा करते हुए हिंदी और राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विस्तृत चर्चा करते हैं। 'समालोचक' के मार्च-अप्रैल 1903 अंक में 'उपन्यास में स्त्री चरित्र' शीर्षक से उन्होंने एक लेख लिखा जिसमें बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यासों में स्त्री चरित्र पर लग रहे आक्षेपों की आलोचना की है। वे लिखते हैं, कि "आजकल बंग साहित्य के पण्डितों में यह बात उठी है कि सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक राय बहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपने उपन्यासों में जो भारतवर्षीय स्त्रियों के चरित्र अंकित किये हैं वह ठीक हिन्दू नारी के अनुरूप नहीं है। नारी चरित्र दो भावों से अच्छी तरह प्रस्फुटित होता है। एक उसका पत्नीत्व और दूसरा मातृत्व। इन्हीं पत्नीत्व मातृत्व दोनों भावों की उपयुक्तता और नित्य सम्बन्ध नारीचित्र को सम्पूर्णता प्रदान करता है, हमारे देश के नारी चरित्र में इसी मातृभाव को ही समाधिक प्राधान्य दिया गया था। हम समझते हैं बंकिम चन्द्र ने प्राचीन आर्यरमणी की उज्ज्वल मातृ मूर्ति के बगल में वैसे ही आदर्श नारीचित्र खींचने की आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने स्त्री चरित्र की दूसरी पीठ दिखा दी है यह पत्नीत्व है। हिन्दू नायक जिसको पत्नीत्व कहे हैं। नारी चरित्र का यह पत्नीत्व प्रेम ही से जीता है और प्रेम ही में परिणतिलाभ करता है। बायरन ने कहा है – 'Love is women's whole existence.' बंकिम बाबू ने प्रेम के प्रकाश में इस पत्नीत्व का

[21] .नाटक की भाषा (लेख), गोपालराम गहमरी (सं.), समालोचक(पत्रिका), अंक-5, दिसंबर-1902, पृष्ठ -5

विभिन्न चित्र अंकित करके हम लोगों को दिखा दिया है ।"[22] यहाँ गहमरी जी का प्रगतिशील व्यक्तित्त्व सामने आता है। जहाँ स्त्री-पुरुष संबंध में प्रेम और समानता की बात करते हैं।

आलोचना केंद्रित यह पत्रिका अपनी प्रकृति में विशिष्ट थी । उस दौर के श्रेष्ठ रचनाकार इससे जुड़े हुए थे । पत्रिकाओं, पुस्तकों के प्रकाशन की सूचना के साथ-साथ इसके अंतर्गत व्याकरण, भाषा, साहित्य समीक्षा, वर्तनी, लिपि दोष आदि की विवेचना होती थी । साहित्येतिहास में उपेक्षित यह पत्रिका तद्युगीन साहित्यालोचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । गोपालराम गहमरी के संपादन में निकले 'समालोचक' के अंकों से होकर गुजरना तद्युगीन साहित्यिक बहसों और उसके महत्त्व को समझने की दृष्टि प्रदान करता है। इन अंकों के अध्ययन से गोपालराम गहमरी जासूसी उपन्यासकार से अलग एक कुशल संपादक के रूप में नजर आते हैं जिनकी चिंता साहित्य, समाज और भाषा को लेकर उतनी ही थी जितनी तद्युगीन सम्मानित साहित्यकारों की रही । लेकिन उन्हें वह सम्मान नहीं मिला । गोपालराम गहमरी ने अपने साहित्य और पत्रकारिता दोनों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

2.4. गोपालराम गहमरी और उनके संस्मरण:

कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि की तरह संस्मरण भी एक स्वतंत्र और प्रतिष्ठित साहित्यिक विधा है। संस्मरण मूलतः अंग्रेजी के 'मेमायर्स' का हिंदी अनुवाद है, यह स्मृति के आधार पर लिखा गया साहित्य का एक रूप है। स्मृति के इसी महत्त्व को रेखांकित करते हुए डॉ.नगेन्द्र ने संस्मरण को "वैयक्तिक अनुभव तथा स्मृति से रचा गया इतिवृत्त अथवा वर्णन माना है ।"[23] संस्मरण विधा को लेकर उनका मानना है, कि "साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में कार्य करने वाले विख्यात व्यक्ति स्वभावतः जब किसी महापुरुष अथवा विशिष्टता संपन्न सामान्य पुरुष के संबंध में चर्चा करते हैं, अथवा स्वयं के

[22] .उपन्यास में स्त्री चरित्र (लेख), गोपालराम गहमरी (सं.), समालोचक(पत्रिका), अंक-8,9,10 (संयुक्तांक), मार्च-अप्रैल-मई 1903, पृष्ठ-46-47
[23]. मानविकी परिभाषिक कोश, नगेन्द्र (सं.), पृष्ठ-167

जीवन के किसी अंश को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करते हैं, तब संस्मरण का जन्म होता है । ये संस्मरण अतीत को सजीव करते हैं ।"[24]

स्मृति को आधार बना कर लिखी गई इस विधा में व्यक्तित्व-चित्रण, आत्मीयता और तथ्यात्मकता जैसे तत्त्व प्रमुखता से मिलते हैं । इसे मूलतः दो वर्गों में रखकर देखा जा सकता है, पहला चरित्र प्रधान और दूसरा घटना प्रधान । चरित्र-प्रधान संस्मरण में संस्मरणकार का ध्यान किसी विशिष्ट व्यक्ति के चारित्रिक विशेषताओं की तरफ होता है तो वहीं घटना-प्रधान संस्मरण में संस्मरणकार की रुचि किसी घटना विशेष को प्रस्तुत करना होता है । ध्यातव्य है कि संस्मरण में व्यक्ति विशेष से संबंधित विवरण के आधार पर उसकी चारित्रिक रेखाओं को जोड़ कर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रभाव को ग्रहण करने का प्रयास किया जाता है । यह किसी व्यक्ति का भी हो सकता है और किसी घटना का भी। यहाँ केवल वर्णन या विवरण ही नहीं होता बल्कि वर्ण्य विषय के साथ लेखक की आत्मीयता से उद्भूत प्रतिक्रियाओं का लेखा-जोखा भी होता है । संस्मरणकार अपने संस्मरणों के माध्यम से न केवल किसी व्यक्ति या घटना विशेष का वर्णन कर रहा होता है बल्कि वह अपने समय को भी दर्ज कर रहा होता है । संस्मरण एक तरह से ऐतिहासिक स्रोत का कार्य करता है जो किसी युग के परिवेश, युगबोध और विशिष्ट चरित्र आदि की पड़ताल को संभव बनाने का साधन बनता है ।

गोपालराम गहमरी साहित्य की लगभग हर विधा में सक्रिय थे । साहित्य के प्रति उनकी रचनात्मक प्रतिबद्धता उनके द्वारा लिखे गए संस्मरणों में साफ झलकती है । इन संस्मरणों से उनकी साहित्यिक दृष्टि, तद्युगीन साहित्यिक बहसों और साहित्यिक प्रवृत्तियों के बारे में पता चलता है । गौरतलब है कि गोपालराम गहमरी की मृत्यु (20 जून 1946 ई.) के बाद सन् 1950 में श्यामसुंदर जायसवाल और बैजनाथ सिंह के संपादन में 'हैहय क्षत्रिय मित्र'(फरवरी-मार्च 1950 ई.) पत्रिका का गहमरी-गौरव अंक प्रकाशित हुआ था । इस अंक में

[24].हिंदी वांग्मय : बीसवीं सदी, नगेन्द्र (सं.), पृष्ठ- 361

गोपालराम गहमरी के कुछ संस्मरण और कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं। इसी अंक में गोपालराम गहमरी के साहित्यिक अवदान पर टिप्पणी करते हुए राहुल सांस्कृत्यायन लिखते हैं, कि "स्वर्गीय गोपालराम गहमरी हिंदी के पिछले 50 साल के विकास के जीवित इतिहास थे। उसके विकसित होते गद्य को उन्होंने केवल साक्षीरूप में नहीं देखा, बल्कि उसके निर्माण में सक्रिय भाग लिया। एक समय था जब उनका 'जासूस' हजारों पाठकों के लिए मनोरंजन की आकर्षक सामग्री प्रति मास प्रस्तुत करता था। बड़ी भारी संख्या में लोगों ने जासूस के द्वारा हिंदी सीखी। जब स्वर्गीय गहमरी जी ने अपने संस्मरण को लिखना शुरू किया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता रहा कि इस तरह हिंदी के विकास का एक मनोरंजक और प्रामाणिक अभिलेख हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिये तैयार हो जायेगा। शोक है कि गहमरी जी अपने इस कार्य को पूरा न कर सके। लेकिन पूर्ण या अपूर्ण जो भी उन्होंने लिखा है, उसको एकत्रित छपाकर सुरक्षित कर देना हमारा कर्तव्य है।"[25] 'हैहय क्षत्रिय मित्र' पत्रिका के इस अंक और जून सन् 1950 में प्रकाशित अंक की सामग्री का संपादन संजय कृष्ण ने किया है। जो ऑनलाइन पोर्टल नोटनल पर 'गोपालराम गहमरी के संस्मरण' नाम से प्रकाशित है।

कहना न होगा कि गोपालराम गहमरी के इन संस्मरणों से होकर गुजरना तद्युगीन हिंदी साहित्य और भाषा के इतिहास से होकर गुजरने जैसा है। इन संस्मरणों में तद्युगीन साहित्यिक बहसों के साथ-साथ गोपालराम गहमरी ने उन घटनाओं का भी जिक्र किया है जो उनके जासूसी साहित्य का हिस्सा बने। अपने बचपन के साथ-साथ उन्होंने भारतेंदु, हिंदी सेवी और 'हिन्दोस्थान' पत्रिका के स्वामी कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, लोकमान्य तिलक, कुंभ यात्रा और कुछ पत्रिकाओं के बारे में अपने संस्मरण लिखे हैं, जिसके संपादन से वे जुड़े रहें।

[25]. गोपालराम गहमरी जी, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन (टिप्पणी), हैहय क्षत्रिय मित्र पत्रिका, अंक- फरवरी-मार्च 1950, पृष्ठ- 66

अपने बचपन के दिनों को याद करते हुए वे लिखते हैं, कि "मिडिल पास करने पर शोहरत हुई कि गहमर का एक लड़का 13 वर्ष की उम्र में मिडिल पास हुआ है । वह समय विक्रम संवत् 1936 का था । गाँव में तीन लड़के पास हुए । मैं सबसे छोटा था । शिक्षितों की बड़ी कमी थी । गाँव के बहुत लोग और स्त्रियाँ मुझसे अपने हित-मित्रों के यहाँ चिट्ठी लिखाने आती थीं । मेरी प्रसिद्धि इस वास्ते भी थी कि लिखावट इतनी अच्छी है कि सब जगहें उचरती हैं । आई हुई चिट्ठियों को पढ़ने के लिए भी मैं घर पर बुलाया जाता था ।"[26] यहाँ इस बात से तद्युगीन भारत में शिक्षा की स्थिति का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है ।

अपने सहित्यिक संस्मरण में गोपालराम गहमरी ने हिंदी सेवी और 'हिन्दोस्थान' पत्रिका के स्वामी, कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह को याद करते हुए 'हिन्दोस्थान' पत्रिका के बारे में लिखते हैं, कि "हिंदी में तब यही एक दैनिक पत्र था । साप्ताहिक और मासिक तो बहुत से निकलते थे । लेकिन दैनिक यही एक था । कानपुर से 'भारतोदय' नाम का एक दैनिक कुछ सप्ताह निकलकर अस्त हो गया था । जिन दिनों की बात मैं कहता हूँ उन दिनों प्रयाग से 'हिंदी प्रदीप', वृन्दावन से 'भारतेंदु', लखनऊ से 'रसिक मित्र', कलकत्ते से 'धर्मदिवाकर', मिर्जापुर से 'आनन्द कादम्बिनी', भागलपुर से 'पीयूष प्रवाह' नाम के मासिक निकल रहे थे । साप्ताहिकों में 'सारसुधानिधि' और 'उचितवक्ता' तथा 'भारतमित्र' कलकत्ते से निकलते थे । पटना से 'बिहारबन्धु', बेतिया से 'चम्पारणी चन्द्रिका', इलाहाबाद से 'प्रयाग समाचार' और बनारस से 'भारत जीवन' का प्रकाशन होता था ।"[27] वहीं वे आगे लिखते हैं- "राजा रामपाल सिंह 'हिन्दोस्थान' के लिए एक हजार रुपए मासिक व्यय करते थे । उनका कहना था कि जब तक भारत वर्ष में दस रुपया सालाना देकर एक भी ग्राहक हिन्दोस्थान का पढ़ने वाला रहेगा, तब तक हिन्दोस्थान जारी रक्खेंगे । राजा साहब बड़े सत्यप्रिय थे । हिन्दोस्थान के माथे पर

[26] .हिंदी के पहले जासूसी कथाकार गोपालराम गहमरी के संस्मरण, संजय कृष्ण (सं.), पृष्ठ-10
[27] .वही, पृष्ठ- 43

'सत्यश्रमाभ्या सकलार्थसिद्धिः' का ही मोटो रहता था ।"[28] कहना न होगा कि तद्युगीन पत्रिकाओं का समाज सुधार के साथ-साथ हिंदी भाषा के विकास में अविस्मरणीय योगदान रहा है । तद्युगीन साहित्यकार लेखन के साथ-साथ पत्रिकाओं के संपादन का दायित्व भी संभाल रहे थे । पत्र-पत्रिकाओं का वह दौर स्वस्थ साहित्यिक बहसों का भी केंद्र हुआ करता था । पत्रिकाओं की सोद्देश्यता स्पष्ट थी । गोपालराम गहमरी ने भी 'जासूस', 'समालोचक' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से यह कार्य किया ।

गोपालराम गहमरी जब राजा रामपाल सिंह के संरक्षण में प्रकाशित हो रहे 'हिन्दोस्थान' से जुड़े उस समय वहाँ 'हिन्दोस्थान' पत्रिका के संपादक मंडल का जिक्र करते हुए वे लिखते हैं, कि "राजा साहब के यहाँ उन दिनों सुलेखकों की नवरत्न कमेटी सी बन गई थी । पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित राधारमण चौबे, पंडित गुलाबचंद, पंडित रामलाल मिश्र, श्री बालमुकुन्द गुप्त, श्री शशिभूषण चटर्जी, सबके शिरोमणी राजा रामपाल सिंह स्थायी रूप से वहाँ थे । महामना मदनमोहन मालवीय सप्ताह में एक बार शनिवार को पधारते थे ।"[29] उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि पत्रिका का संपादन बहुत ही गंभीर कार्य माना जाता था । तद्युगीन साहित्यकार एक संस्था की तरह कार्य करते थे । उनके लिए पत्रिका धनार्जन का विषय न होकर समाज और भाषा के विकास का विषय था । पत्रिका के माध्यम से वे एक तरफ स्वस्थ समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे थे तो वहीं हिंदी भाषा और साहित्य की दिशा तय कर रहे थे ।

हिंदी साहित्येतिहास में ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली संबंधी विवाद काफी चर्चित रहा है । यह विवाद तब पैदा हुआ जब गद्य और पद्य दोनों की भाषा खड़ी बोली होने की बात चली । ब्रजभाषा के माधुर्य को ध्यान में रखते हुए प्रतापनारायण मिश्र, भारतेंदु सहित अनेक साहित्यकार काव्य लेखन हेतु ब्रजभाषा के पक्ष में थे वहीं श्रीधर पाठक जैसे साहित्यकार काव्य

[28] .वही, पृष्ठ- 43
[29] .वही, पृष्ठ- 21

के क्षेत्र में भी खड़ी बोली के पक्षधर थे। गोपालराम गहमरी इस विवाद को याद करते हुए और खड़ी बोली के पक्ष में अपनी बात रखते हुए लिखते हैं, कि "पंडित जी के कालाकांकर में रहते हुए पंडित श्रीधर पाठक की पुस्तक 'एकान्तवासी योगी' का प्रकाशन हुआ और खड़ी बोली में व्यवहृत हो इस पर बड़ा विवाद छिड़ा। 'हिन्दोस्थान' में 'स्वतंत्र स्तंभ' नाम का एक अलग कॉलम था। उसमें खड़ी बोली की कविता के पक्ष और विपक्ष के लेख सालाना प्रकाशित किए जाते थे। पाठक जी के पक्ष में मुजफ्फरपुर की कलक्टरी के पेशकार बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री मुख्य थे। उन्होंने विलायत से सुंदरतापूर्वक खड़ी बोली काव्य छपवाकर यहाँ मंगाया और बिना मूल्य वितरित किया। खड़ी बोली की कविता का प्रचार ही उनका मुख्य उद्देश्य था। इसके सिवा गढ़वाल के पं. गोविंद प्रसाद मिश्र खड़ी बोली में कविता करके उत्साह बढ़ाते थे। लेकिन विपक्ष में बड़े-बड़े प्रभावशाली कवियों ने कलम उठाए थे। पं. प्रतापनारायण मिश्र खड़ी बोली की कविता के विरोधियों में प्रधान थे। लखनऊ के 'रतिक पंथ' के संपादक, लेखक व सुकवि पं. शिवनाथ शर्मा भी खड़ी बोली की कविता के विरोधी थे। लेकिन राष्ट्रभाषा के प्रचार को और जिस भाषा का साधारण बोल-चाल में प्रचार है उसको कविता में भी अधिकार देना उसकी और राष्ट्रभाषा दोनों की उन्नति के लिए परमावश्यक है, इस विचार से प्रेरित होकर सबको खड़ी बोली की कविता के आगे अवनत होना पड़ा। इसके सिवा पं. श्रीधर पाठक ने भी यह सत्य प्रमाणित कर दिया कि उत्तम और रोचक लालित्य पूर्ण कविता करना कवि की शक्ति पर निर्भर है, भाषा पर नहीं।"[30]

हम देख सकते हैं कि किस तरह से छायावाद तक खड़ी बोली हिंदी काव्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होती है। जिस भाषा में काव्य लेखन को लेकर संशय बना हुआ था उसी भाषा में कविता अपने लालित्य को व्यंजित करती है। लेकिन भारतेंदु काल से छायावाद काल तक की यह भाषाई यात्रा किन बहसों और विवादों से होकर गुजरी है उसको जानना भी महत्त्वपूर्ण है। जो इन संस्मरणों में मौजूद है। गोपालराम गहमरी अपने एक संस्मरण 'हिंदी की चिन्दी' में

[30] .वही, पृष्ठ- 58

हिंदी भाषा-प्रयोग और तद्युगीन परिवेशगत विसंगतियों की बात करते हुए लिखते हैं, कि "इन दिनों जब हमारी माननीय मातृभाषा हिंदी सब तरह से राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर विराजने के लिए अग्रसर होकर उस मर्यादा पर अधिष्ठित हो रही है, हिंदी लेखकों में बेमाथे की दंवरी देखकर दुःख होता है । आजकल के नव शिक्षित युवक लेखकों में एक बड़ा रोग देखने में यह आता है कि वे अंगरेजी के नियम और कानून से हिंदी को जकड़ देना चाहते हैं । इस प्रयास में वे अपने समान ही हिंदी के अनभिज्ञ सहयोगियों के समर्थन से लाभ उठाकर सफल भी होते जा रहे हैं । दूसरी ओर हिंदी में अनमेल वाक्य रचना, अशुद्ध प्रयोग और भद्दे मुहावरों की भरमार होती जा रही है ।"[31] इसी प्रसंग में वे रामचंद्र वर्मा की पुस्तक 'अच्छी हिंदी' की प्रशंसा भी करते हैं । वस्तुतः गोपालराम गहमरी के संस्मरणों से गुजरना एक साहित्यिक यात्रा की तरह ही है जिससे तद्युगीन साहित्य और भाषा के विकास की समझ विकसित होती है । इसकी पड़ताल इसलिए आवश्यक है क्योंकि "साहित्य के इतिहास लेखन में एक महत्वपूर्ण समस्या साहित्य और समाज के विकास के साथ भाषा के विकास का अध्ययन भी है । साहित्य के प्रसंग में भाषा केवल अभिव्यक्ति का ही माध्यम नहीं है, वह चिंतन का भी माध्यम है । भाषा यथार्थ और चेतना के बीच माध्यमिकता का काम करती है, इसलिए भाषा की समस्या साहित्य के इतिहास की आंतरिक समस्या है ।"[32]

गोपालराम गहमरी जी ने अपने संस्मरणों में बालमुकुन्द गुप्त जी को भी बहुत ही आदर के साथ याद किया है । 'हिन्दोस्थान', 'भारत मित्र' पत्रिका के संपादक और हिन्दी-फारसी के विद्वान के रूप में उन्होंने बालमुकुन्द जी को याद किया है । गुप्त जी द्वारा 'भारत मित्र' के संपादन की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं –"गुप्त जी ने 'भारत मित्र' को ऐसा उन्नत किया, जैसा वह अपनी चालीस वर्ष की जिन्दगी में कभी नहीं हुआ था । 'भारत मित्र' एक सुधारक पत्र था, लेकिन सनातनी सिद्धांत का शत्रु नहीं था । गुप्त जी ने उसकी नीति किसी पक्ष पर नहीं, सत्य पर

[31] . वही, पृष्ठ- 69
[32] .साहित्य और इतिहास दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ-208

रक्खी और दो टूक न्याय की बात कहना उन्होंने अपना सिद्धांत रक्खा । इस कारण सब पक्ष के लोगों में 'भारत मित्र' की बड़ी मर्यादा बढ़ी । गुप्त जी व्यंग्यभरी कविता भी 'भारत मित्र' में समय-समय पर लिखते थे ।"[33]

प्रतापनारायण मिश्र जी को याद करते हुए गोपालराम गहमरी जी ने हिंदी की दीन-दशा का भी उल्लेख किया है । वे लिखते हैं -"मिश्र जी हिंदी की दीन-दशा पर बड़ा दुख करते और साथ ही बांग्ला की उन्नतावस्था पर बहुत प्रसन्न होते थे । वे कहा करते थे कि देशी भाषाओं में बंग भाषा का साहित्य खूब भरा-पूरा है । इसका कारण यह है कि उसके लेखक धनी-मानी और समृद्धशाली तथा ऊँचे पदों पर पहुँचकर भी अपनी मातृभाषा के प्रचार का खूब उद्योग करते हैं । उसके लेखक अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में ऊँचा ज्ञान प्राप्त कर उन भाषाओं के सब उपयोगी विषय अपनी मातृभाषा में लाकर साहित्य भण्डार भरने में सदा सहायक होते हैं ।"[34] हिंदी की दीन-दशा कहाँ तक ठीक हुई है इसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी हम देख सकते हैं । बांग्ला भाषा और उसकी साहित्यिक समृद्धि से पूरा नवजागरण काल भरा पड़ा है । यही कारण रहा कि आधुनिक चेतना का प्रचार-प्रसार भी सर्वप्रथम बंगाल में ही हुआ । हिंदी में गद्य विधाओं के विकास में बांग्ला साहित्य का योगदान अभूतपूर्व है ।

हिंदी की दीन-दशा और पाठक की कमी और प्रतापनारायण मिश्र की चिंता का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं, कि "पंडित जी कहा करते थे- भारतेन्दु के पास धन था । उनकी कीर्ति धन-बल से ही थोड़े ही दिनों में खूब फैली । मेरे पास भी रुपया होता तो मैं भी हिंदी में बहुत कुछ काम करता । हिंदी में पाठकों की संख्या इतनी कम है कि उनके भरोसे कोई ग्रंथकार उत्साहित होकर आगे नहीं बढ़ सकता । वे दिन भी कभी आएंगे, जब हिंदी के पाठक बांग्ला के पाठकों की तरह खूब बढ़ेंगे, जिनके भरोसे हिंदी के ग्रंथकार फलेंगे-फूलेंगे और उदा-भरण की चिंता से मुक्त होकर हिंदी में ग्रन्थ-रत्न संग्रह करके गरीबिनी हिंदी को उन्नत करेंगे । शायद मेरे

[33] .हिंदी के पहले जासूसी कथाकार गोपालराम गहमरी के संस्मरण, संजय कृष्ण (सं.), पृष्ठ- 63
[34] .वही, पृष्ठ- 55

मरने के बाद वे दिन आयें ।"[35] कहना न होगा कि प्रतापनारायण मिश्र हिंदी की जिस दशा का वर्णन कर यहाँ कर रहें हैं वह उस समय का सच था और कमोबेश वैसी ही स्थिति आज भी बनी हुई है । हिंदी की पठनीयता को लेकर आज भी साहित्यिक बहस जारी है । इस संदर्भ में यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि किस तरह से देवकीनंदन खत्री और गोपालराम गहमरी ने अपने साहित्य के माध्यम से हिंदी की पठनीयता को बढ़ाने और पाठकों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया ।

हिंदी गद्य के विकास के साथ ही हिंदी नाटक का भी विकास होता है । इससे पहले भारत में नाटक की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है । संस्कृत रंगमंच के साथ-साथ लोकनाट्य की परंपरा दिखाई देती है । 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जहाँ पारसी रंगमंच अपनी व्यवसायिक प्रवृत्ति के कारण भारतेंदुयुगीन साहित्यकारों की नजर में तिरस्कृत थी । वहीं हिंदी में अव्यवसायिक रंगमंच की शुरुआत सन् 1868 में 'बनारस थिएटर' के साथ हुआ । वहीं सन् 1884 में बनारस में 'नेशनल थियेटर' की स्थापना हुई । हिंदी रंगमंच के उद्भव और विकास की दृष्टि से भारतेंदु युग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । गोपालराम गहमरी अपने 'कुंभ यात्रा' विषयक संस्मरण में न केवल राधेश्याम कथावाचक रचित 'कृष्णावतार' के प्रदर्शन की चर्चा करते हैं बल्कि बलिया में भारतेंदु कृत 'सत्य हरिश्चंद्र' के मंचन और भारतेंदु के अभिनय का भी वर्णन करते हैं । वे लिखते हैं- "बयालीस बरस पहले की बात है जब काशी के भारतेंदु बाबू ने बलिया में 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक स्वयं हरिश्चंद्र बनकर खेला था । जिसमें हिंदी के सुलेखक 'दुःखिनी बाला' के लेखक बाबू राधाकृष्ण दास सरीखे हिंदी सेवक, रविदत्त शुक्ल जैसे कवियों ने पार्ट लिया था । उस समय पर्दा और सीनों का सुंदर जमाव नहीं था लेकिन जो कुछ स्टेज उस समय बना था,

[35] वही, पृष्ठ- 55-56

बजाज के कपड़े तानकर जो काम भारतेंदु जी ने कर दिया था उसकी महिमा यूरोपियन लेडियों तक ने गायी थी ।"[36]

गौरतलब है कि हिंदी रंगमंच के विकास में 'बलिया नाट्य समाज' (1884 ई.) की भूमिका ऐतिहासिक मानी जाती है। सन् 1884 ई. में यहीं बलिया के दादरी मेले में भारतेंदु ने एक लंबा और सार्थक भाषण दिया था । सन् 1884 में यहीं बलिया में 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक का मंचन किया गया था। इसी मंचन में भारतेंदु ने हरिश्चंद्र की भूमिका निभाई थी जिसका जिक्र गोपालराम गहमरी ने किया है । इस नाटक के मंचन को उस क्षेत्र में अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। इस संदर्भ में गोपालराम गहमरी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि "पात्रों का शुद्ध उच्चारण हमने उसी समय हिंदी में नाटक स्टेज पर सुना था।"[37] प्रसिद्ध रंगालोचक महेश आनंद अपनी पुस्तक 'रंग दस्तावेज' के दूसरे खंड में गोपालराम गहमरी के इस संस्मरण के महत्त्व पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, कि "गोपालराम गहमरी ने अपने संस्मरण में 1927 में कुंभ मेले के समय राधेश्याम 'कथावाचक' द्वारा रचित 'कृष्णावतार' के प्रदर्शन के बहाने 1884 में मंचित भारतेंदु के नाटक 'सत्य हरिश्चंद्र' का उल्लेख किया है । एक संवेदनशील कथाकार-नाटककार का यह रोचक संस्मरण नाटकलेखन और उसकी प्रस्तुति- दोनों पक्षों को समेटता हुआ तत्कालीन रंगकर्म से साक्षात्कार कराता है । छोटी-छोटी टिप्पणियों के रूप में बिखरी हुई इस प्रकार की प्रामाणिक सामग्री हिंदी रंगपरिवेश के महत्त्वपूर्ण सूत्रों से परिचय में सहायक है । इसीलिए गहमरी का यह रंगानुभव हिंदी रंगमंच के इतिहास को समझने के लिए अनिवार्य दस्तावेज है ।"[38] वहीं वे आगे लिखते हैं, कि "गहमरी के लेख के अतिरिक्त भारतेंदु द्वारा अभिनीत हरिश्चंद्र की भूमिका का

[36] .वही, पृष्ठ- 122
[37] .वही, पृष्ठ- 123
[38] .रंग दस्तावेज़, महेश आनंद, खंड दो, पृष्ठ- 91

उल्लेख कहीं नहीं मिलता ।"[39] इस आलोक में गहमरी जी के संस्मरणों के महत्त्व को समझा जा सकता है ।

गोपालराम गहमरी अपने संस्मरण में लोकमान्य तिलक की गिरफ़्तारी का भी वर्णन किया है । वे लिखते हैं – "पुणे में फैले प्लेग और अकाल आदि के विषय पर तिलक जी के जो लेख उनके 'केसरी' में छपे थे और अकाल के आन्दोलन से सरकार की कुदृष्टि महामना तिलक पर और खर हो चुकी थी । राजद्रोह उन्हीं लेखों का परिणाम हुआ । गिरफ्तार होने पर तिलक ने सार्जेंट के साथ रवाना होने के पहले वकील दाजी खेर जी से कह दिया था कि जमानत के लिए उद्योग कीजिएगा । दाजी खरे महोदय ने अपने सहयोगियों सहित जमानत की कोशिश करके भी सफलता नहीं पायी तब पुलिस कमिश्नर के बंगले में स्थित उस कोठरी का द्वार खटखटाने पहुंचे जहाँ रात को तिलक महाराज बंद कमरे में खर्राटे ले रहे थे क्योंकि उनके जमानत पर छूटने का रास्ता तो था ही नहीं । जमानत नहीं ही हुई । प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट आरंभिक जाँच कर रहे थे । मुकदमा सेशन में भेजे जाने का समय आया । मजिस्ट्रेट स्लेटर साहब ने 28 जुलाई सन् 1897 को जाँच आरंभ की । बैरिस्टर मिस्टर रसल और खरे साहब तथा माधवराव बोडस पैरवी में थे । प्रार्थना केवल जमानत के लिए थी लेकिन वह भी स्वीकृत नहीं हुई । निदान 29 जुलाई को श्री दाजी खरे और सातलबड़ ने स्लेटर साहब फैसले के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की । वहाँ श्री गोविंद महादेव रानाडे और श्री पार्सन्स नाम के जजों की जोड़ी न्यायासन पर विराजमान थी । जजों ने स्लेटर साहब का निर्णय यह कह कर बहाल रखा कि दो दिन बाद ही अभियोग की सुनवाई आरंभ होगी । इस कारण जमानत पर नहीं छोड़ा जाएगा अगर विलंब होगा तो इस पर विचार किया जायेगा । आरंभिक जाँच की दूसरी पेशी 31 जुलाई को हुई । उस दिन बैरिस्टर साहब के स्थान पर पैरवी के लिए श्री दावर खड़े हुए । सोमवार 2 अगस्त को

[39] वही, पृष्ठ- 92

बहस शुरू हुई । उस दिन मानो सारी बंबई तिलक महाराज के दर्शन को उमड़ पड़ी ।"[40] यहाँ उपरोक्त संस्मरण के आधार पर औपनिवेशिक परिवेश में प्रेस को लेकर जिस तरह का सेंसरशिप था उसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । साथ ही जनता के बीच लोकमान्य तिलक जी की लोकप्रियता का भी परिचय मिलता है ।

गोपालराम गहमरी अपने संस्मरणों में उन घटनाओं और व्यक्तियों का भी जिक्र करतें हैं जो उनके जासूसी कथाओं के आधार बने । मंडला के पुलिस इन्स्पेक्टर मुहम्मद सरवर ऐसे ही व्यक्ति हैं । मुहम्मद सरवर के बारे में गोपालराम गहमरी लिखते हैं –"उनकी सच्चाई और जासूसी के काम में निपुणता के कारण मेरी उनकी जान पहचान हो गई थी । मैंने पहले पहल 'गुप्त कथा' नाम से एक मासिक पत्र वहीं से निकाला था । जिसको पढ़कर मुहम्मद सरवर ने मुझ पर अपनी प्रसन्नता प्रगट की । मेरा उनका बहुत साथ रहता था । वहाँ कई खून और चोरों के मुकदमे हुए, जिनके अपराधियों का पता मुहम्मद सरवर ने बड़ी चतुराई और सहूलियत से निकाल कर अपराधियों को पकड़ा था ।"[41] 'बहराम की गिरफ़्तारी' कहानी में मुहम्मद सरवर की जासूसी का ही चित्रण उन्होंने किया है जो एक यथार्थ घटना थी ।

इस प्रकार गोपालराम गहमरी के संस्मरणों से होकर गुजरना न केवल साहित्येतिहास के उस कालखंड को समझने में सहायक है बल्कि तद्युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों, परंपराओं, भाषा के विकास, प्रेस संबंधी प्रशासनिक नियंत्रण, सेंसरशिप आदि को समझने में भी मददगार है । जासूसी कथा लेखन की तरफ गोपालराम गहमरी की रुचि के विकास का भी पता इन संस्मरणों से पता चलता है । हिंदी रंगमंच और हिंदी पत्रकारिता के शैशव काल में किस तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता था, इसकी जानकारी यहाँ मिलती है । गोपालराम गहमरी के संस्मरण इस दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व की चीज है जिसकी पड़ताल हिंदी साहित्य के विकास को समझने में सहायक है ।

---

[40]. हिंदी के पहले जासूसी कथाकार गोपालराम गहमरी के संस्मरण, संजय कृष्ण (सं.), पृष्ठ- 71-72

[41] . वही, पृष्ठ- 87

2.5. गोपालराम गहमरी और उनका समकाल:

साहित्येतिहास में भारतेन्दु युग नवीन परिस्थितियों एवं आधुनिक चेतना के साथ उपस्थित होता है । तद्युगीन साहित्य में रुढ़िवादिता का विरोध, सांस्कृतिक प्रेम, राष्ट्रीयता, धर्मनिष्ठा और सामाजिक विसंगतियों का उल्लेख मिलता है। 19वीं. शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक बदलाव के कारण युगीन जनता की नैतिक भावना, सामाजिक दशा, धार्मिक विश्वास और जीवन मूल्य भी परिवर्तित हो रहे थे । यह समाज सुधार और नवजागरण का काल था । ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी जैसी संस्थाएँ समाज सुधार की भावना को बढ़ावा दे रहे थे । उनका प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर भी पड़ रहा था । प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास में संक्रमणकाल से गुजर रहे भारतीय समाज के विभिन्न रूपों का चित्रण दिखाई देता है। प्रेमचंद-पूर्व उपन्यासकारों में श्रद्धाराम फिल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, राधाकृष्णदास बालकृष्ण भट्ट, किशोरी लाल गोस्वामी, देवकी नन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी, लज्जाराम मेहता, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और ब्रजनन्दन सहाय आदि लेखकों की कृतियों में तद्युगीन समाज और विकसित हो रहे मध्यवर्ग की समस्याओं और विसंगतियों का विश्लेषण हुआ है।

श्रद्धाराम फिल्लौरी ने अपने उपन्यास 'भाग्यवती' में स्त्री जीवन की समस्या के साथ-साथ बाल विवाह, दहेज प्रथा, प्रदर्शनप्रियता, संयुक्त परिवार आदि समस्याओं का चित्रण किया है। तद्युगीन समाज में बाल विवाह की कुप्रथा के कारण ही बाल विधवाओं का बाहुल्य था। उसके क्या कुपरिणाम होते थे, इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में मिलता है । तद्युगीन सामाजिक व्यवस्था के बीच विकसित हो रहे मध्यवर्गीय समाज को आधार बनाते हुए

श्रीनिवासदास ने 'परीक्षागुरू' नामक उपन्यास लिखा । श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरु' को हिंदी का प्रथम उपन्यास माना जाता है। लेखक ने इस उपन्यास में मध्यवर्ग की झूठी प्रदर्शन प्रियता, चाटुकारिता, अकर्मण्यता, विदेशी सभ्यता की दासता, आर्थिक विषमता, बेरोजगारी तथा शिक्षा की स्थिति आदि समस्याओं का चित्रण किया है। बालकृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' को सामाजिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है। 'नूतन ब्रह्मचारी' एक आदर्शपरक सुधारवादी उपन्यास है जिसमें नायक विनायक के चारित्रिक प्रभाव से से डाकुओं की प्रवृत्ति के सुधर जाने की कथा वर्णित है। 'सौ अजान एक सुजान' भी एक सामाजिक उपन्यास है । इसके बारे में ज्ञानचंद जैन लिखते हैं, कि "यह उपन्यास उन्नीसवीं शताब्दी के संक्रांतिकालीन समाज का एक दर्पण है । उस काल का, जब हमारा पुराना सामंती समाज टूट रहा था और नया शहरी मध्यमवर्गीय समाज आकार ग्रहण कर रहा था, एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक दस्तावेज है ।"[42]

जगमोहन सिंह कृत 'श्यामा स्वप्न' भी एक सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास को स्वयं लेखक ने काल्पनिक माना है । लेकिन काल्पनिक कथा होते हुए भी ब्राह्मणकुमारी श्यामा और क्षत्रियकुमार श्याम सुन्दर के प्रणय संबंध की संभावना की ओर संकेत करके नवीन समाज की नवीन मान्यताओं का प्रतिनिधित्व किया गया है। राधाकृष्णदास ने 'निःसहाय हिन्दू' नामक उपन्यास गोवध निवारण की समस्या की भावना से प्रेरित होकर लिखा। इस संदर्भ में ज्ञानचंद जैन लिखते हैं –"'निःसहाय हिन्दू'हिंदी का पहला उपन्यास है जिसमें लेखक ने प्रेमचंद के उपन्यासों की याद दिलाते हुए एक ऐसी समसामयिक घटना को अपनी कथावस्तु का आधार

[42] .प्रेमचंद-पूर्व के हिंदी उपन्यास, ज्ञानचंद जैन, पृष्ठ-138

बनाया है जिसने उस काल के हिन्दू समाज को आंदोलित कर रखा था ।"[43] इस उपन्यास और तद्युगीन समाज को लेकर ज्ञानचंद जैन लिखते हैं –"उस समय भारतीय समाज दोरंगा था । एक ओर तो पुरानी चाल पर चलने वाले पुरनिया लोग थे, दूसरी ओर मुट्ठीभर शिक्षित मध्यमवर्गीय समाज के नई रोशनी तथा सुधारवादी विचार वाले लोग जिन्हें पुरनिया लोग किरिस्तान कहते थे । एक ओर वे लोग थे जो आँख पर मुर्खता की पट्टी बाँधे थे, कुँए के मेढक, काठ के उल्लू और पिंजड़े के गंगाराम थे जिनमें विवाह में गधे को चना खिलाकर पूजने जैसी अंधविश्वासोत्पन्न सामाजिक कुरीतियाँ फैली थीं, दूसरी ओर सामाजिक पाखंडों का खंडन करने वाले, वेदादि आर्ष ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों को अप्रमाण मानने वाले और मूर्ति-पूजा का निषेध करने वाले दयानंदी थे । एक ओर कोठीवाल महाजन थे जो नई विधा, नए उद्यम तथा ज्ञान-विज्ञान की नई प्रगति से सर्वथा बेखबर रहकर कैथी पढ़ लेना ही यथेष्ट मानते थे तो दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षित थे जो बैरिस्टर बनने के लिए विलायत गमन कर रहे थे ।"[44] संक्रमण कालीन यह दौर आधुनिकता और पुरातनता के द्वंद्व का भी दौर था । यह द्वंद्व तत्कालीन साहित्यकारों में दिखाई देता है ।

लज्जाराम मेहता ने 'धूर्त रसिक लाल', 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी', 'आदर्श दम्पत्ति', 'बिगड़े का सुधार', 'सुशीला विधवा', 'आदर्श हिन्दू' आदि कई उपन्यास लिखे । इनके उपन्यास एक दृढ़ सनातनधर्मी हिन्दू के जीवन-मूल्य से प्रभावित थे । संक्रांति काल में एक सनातनधर्मी हिन्दू विकसित हो रहे नवीन जीवन-मूल्यों को किस रूप में देख रहा था उसकी प्रतिक्रियाएँ कैसी थीं, यह सब इनके उपन्यासों में देखा जा सकता है ।

देवकीनंदन खत्री ने तिलस्म और ऐय्यारी प्रधान उपन्यासों की रचना की । लेकिन तिलिस्म और ऐय्यारी के ताने-बाने के बीच लेखन ने तद्युगीन समाज के जीवन मूल्यों, उसकी

[43] . वही, पृष्ठ- 84
[44] . वही, पृष्ठ- 76

चिंतन प्रणाली, षड्यंत्र आदि को बखूबी चित्रित किया है । "'चंद्रकांता' तथा 'चंद्रकांता संतति' की कथा पाठकों का मन उसी प्रकार बाँध लेती थी, जिस प्रकार बायस्कोप की चलती फिरती तसवीरें उसका मन बाँधती थीं । उसमें भांति-भांति की सीनरी पहाड़ों, बगीचों, पहाड़ी झरनों, जंगलों, पुराने खंडहरों, निर्जन खोहों, महलों के गुप्त तहखानों तथा सुरंगों का विशद वर्णन था । उसमें एक ओर यदि प्रेम, साहस, शौर्य, वीरता तथा कर्तव्य-परायणता के चित्र थे तो दूसरी ओर विश्वासघात, छल-प्रपंच, धोखाधड़ी तथा मानव-स्वाभाव की कुटिलता के चित्र खींचे गए थे । उसकी कथा में उस काल के विगलित सामंतवादी परंपराओं वाले देशी रजवाड़ों में चलने वाले अनवरत कुटिल षड्यंत्रों, आपसी ईर्ष्या-द्वेष, धनलोलुपता, दंभ तथा कामासक्ति की झलक मिलती है ।"[45]

किशोरी लाल गोस्वामी प्रेमचन्द पूर्व युग के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इनके उपन्यासों में सनातन धर्म की आदर्शवादी मान्यताएं प्रमुखता से मिलती हैं। तद्युगीन सामाजिक समस्याओं के चित्रण की दृष्टि से देखें तो 'त्रिवेणी या सौभाग्य श्रेणी, 'प्रणयिनी परिणय', 'तरुण तपस्विनी', 'पुनर्जन्म या सौतिया डाह', 'माधवी माधव व मदन मोहिनी', 'कुसुम कुमारी वा स्वर्गीय कुसुम', 'अंगूठी का नगीना' तथा 'लीलावती' आदि उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। इनके उपन्यासों में मध्यवर्गीय स्त्री जीवन की समस्याओं का अंकन पुरातन रुढ़िवादी विचारों के आधार पर हुआ है। पतिव्रत संस्कारों की सीमाओं में अवरुद्ध नारी को इन्होंने ने आदर्श माना है साथ ही पाश्चात्य संस्कृति का विरोध किया है।

हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने दो उपन्यास भी लिखे हैं । मध्यवर्गीय समाज में विवाह, प्रेम की समस्या तथा धार्मिक अन्धविश्वास का चित्रण उन्होंने

[45] .वही, पृष्ठ-156

अपने उपन्यासों 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' में किया है। पहले उपन्यास में उन्होंने बेमेल विवाह का दुष्परिणाम तथा दूसरे में धर्म की महत्ता प्रतिपादित की है और प्रसंगानुसार धार्मिक अंधविश्वासों के दुष्परिणाम भी दिखाए गए हैं।

ब्रजनन्दन सहाय भी इस काल के प्रमुख उपन्यासकार थे । उन्होंने 'सौन्दर्योपासक' 'राधाकान्त' और 'अरण्यबाला' शीर्षक से उपन्यास लिखे। 'राधाकान्त' और 'अरण्यबाला' दोनों रचनाओं में देश की आर्थिक विषमता का विस्तार से चित्रण किया गया है। नई शिक्षा व्यवस्था और प्रगतिशील विचारों का समर्थन इन उपन्यासों में दिखाई देता है जो इस बात का द्योतक है कि प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यासों में मध्यवर्ग की चेतना जागरूक हो रही थी। ध्यातव्य है कि आर्थिक दुर्दशा, बेरोजगारी, स्त्री-शिक्षा तथा देश की राजनीतिक दुर्दशा जैसे प्रश्नों को इन उपन्यासों में उठाया गया है।

गोपालराम गहमरी ने भी अपने समकाल को रेखांकित करते हुए जासूसी उपन्यासों के साथ-साथ सामाजिक उपन्यास भी लिखे । 'डबल बीवी', 'तीन पतोहू', 'पत्नी', 'ननद भौजाई', 'नए बाबू' आदि उनके सामाजिक उपन्यास हैं । गोपालराम गहमरी एक सजग रचनाकार के रूप में सामने आते हैं । वे अपने समय की चिंताओं से सीधा संवाद करते हैं । प्रश्न चाहे भाषा को लेकर हो या फिर खड़ी बोली की कविता को लेकर, वे माकूल हस्तक्षेप करते हैं । उनके उपन्यासों में उनका समकाल अपने विविधवर्णी रूपों में अभिव्यक्त हुआ है । उनके स्त्री पात्रों की आधुनिक चेतना कहीं-कहीं देखते बनती है । सही मायनों में वे एक प्रगतिशील सर्जक के रूप में अपने समय को चित्रित करने वाले रचनाकार है जिनकी भूमिका हिंदी साहित्य और भाषा के विकास की दृष्टि से सराहनीय है ।

कहना न होगा कि प्रेमचंद-पूर्व युग ऐतिहासिक रूप से समाज-सुधार युग था । इस दौर के सभी रचनाकार अपने-अपने स्तर पर समाज सुधार में संलग्न दिखाई देते हैं । परंपरा और प्रगतिशीलता का द्वंद्व भी तद्युगीन रचनाकारों में दिखाई देता है । इसलिए युगीन उपन्यासों में युगीन समाज की समस्याओं का चित्रण भी सुधारवादी दृष्टिकोण से हुआ है। युगीन रचनाकार सनातन धर्म में अटूट आस्था रखने वाले थे। उनके सांस्कृतिक मूल्यों तथा नैतिक दृष्टिकोण को निश्चित करने वाला प्रमुख तत्त्व सनातनधर्मी दृष्टिकोण ही था । उस युग में नवोदित मध्यम वर्ग में मेहनत-मजदूरी करके पेट पालने वाले किसान, मजदूर, कारीगर, दस्तकार आदि वर्गों को छोड़कर समाज के ऊपर के सभी वर्गों को सम्मिलित किया जाता था । उसमें उच्च आय वर्ग के आभिजात्य वर्ग के लोग भी थे,जैसे धनी महाजन, सेठ, साहूकार, कोठीवाल, जमींदार आदि और सामान्य तथा अल्प आय वर्ग के लोग भी थे, जैसे अध्यापक, वकील , मुख़्तार, डाक्टर, सरकारी दफ्तरों, कचहरियों, रेल कम्पनियों तथा निजी प्रतिष्ठानों का बाबू वर्ग तथा छोटे-बड़े दुकानदार, सौदागर आदि । इस पंचमेल वर्ग का रहन-सहन कैसा था, उसके आचार-विचार क्या थे, उसकी आशा-आकांक्षाएँ क्या थीं, उस काल के समाज में परिवर्तन की हवा किस प्रकार बह रही थी, नए शहरी मध्यम वर्ग का क्रमिक विकास शहरों तथा कस्बों में किस प्रकार हुआ, इसके अनेक चित्र प्रेमचंद-पूर्व के उपन्यासों में देखे जा सकते हैं । इन्हीं बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए आगे गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में तद्युगीन समाज और उनके समय की उपस्थिति का विस्तार से विवेचन-विश्लेषण किया जाएगा । साथ ही पाठकीय संस्कृति के निर्माण में गोपालराम गहमरी की भूमिका को उनके औपन्यासिक चरित्रों और शिल्प के आधार पर देखा-समझा जाएगा ।

अध्याय : तीन

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

प्रारंभिक हिंदी उपन्यास लेखन की वह धारा जिसके अंतर्गत जासूसी उपन्यासों को गिना जाता है वह साहित्येतिहास में उपेक्षित रही है। यही कारण रहा है कि इसका संरक्षण भी उचित रूप से नहीं हो पाया। साहित्येतिहास में इन उपन्यासों को मनोरंजन प्रधान कहकर फुटकर खाते में डाल दिया गया। ऐसी स्थिति में इन उपन्यासों का विवेचन-विश्लेषण युगीन परिवेश और लोकवृत्ति के आलोक में संभव नहीं हो पाया। साहित्य की शुचिता का प्रश्न कह लीजिए या फिर युगीन आलोचकीय प्रभाव; उसी दौर में कलात्मक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के बीच एक विभाजन रेखा खींची जाने लगी और लोकप्रिय साहित्य मसलन तिलस्मी और जासूसी साहित्य को साहित्यिक कोटि से बाहर कर दिया गया। हालाँकि आगे चलकर कुछ गंभीर अध्येताओं ने तिलस्मी साहित्य पर युगीन सन्दर्भों के आलोक में विवेचन-विश्लेषण का काम किया किंतु उसी दौर में लिखे जा रहे जासूसी उपन्यासों पर उचित ढ़ंग से काम नहीं हो पाया। कहना न होगा कि समाज में पाठकों के कई वर्ग हैं और जिस प्रकार वर्ग अलग है ठीक वैसे ही उनकी रुचियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। हिंदी का आरंभिक जासूसी साहित्य भी उसी रुचि का परिणाम है। हिंदी उपन्यास लेखन के प्रारंभिक दौर में इस तरह के उपन्यासों का लिखा जाना और पाठकों की स्वीकृति तत्कालीन समाज की व्याख्या एवं मनोविज्ञान को समझने की कुंजी है। तद्युगीन सन्दर्भों में इनका आलोचनात्मक और समाजशास्त्रीय अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। गोपालराम गहमरी का लेखन तत्कालीन पाठकों की दिलचस्पी एवं स्वीकृति की देन है जिसे प्रमुख उपन्यास आलोचक गोपाल राय ने भी रेखांकित किया है। ऐसे में तत्कालीन समय और रचना के पारस्परिक संबंध की उपेक्षा करके साहित्येतिहास नैरंतर्य को नहीं समझा जा सकता।

3.1. आरंभिक हिंदी उपन्यास और हिंदी आलोचना

आरंभिक हिंदी उपन्यास लेखन के दौर में ही धीरे-धीरे पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यालोचना का भी विकास हो रहा था। हिंदी साहित्यालोचना आरंभिक दौर से ही कविता

केंद्रित रही । आधुनिक काल में गद्य की अन्य विधाओं के उदय के साथ ही आलोचना का भी आर्विभाव हुआ। गौर करने वाली बात यह है कि जिस हिंदी आलोचना की शुरुआत कविता को केन्द्र में रखकर विकसित हुई, उसकी शुरूआत 'नाट्यलोचना' से हुई। इस दृष्टि से भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा 1983 ई. में लिखी गई संक्षिप्त पुस्तिका 'नाटक अथवा दृश्य काव्य' से हिंदी आलोचना की शुरूआत मानी जाती है । इसी विकास-क्रम में साहित्य की उपयोगिता और उसके उद्देश्य को लेकर तद्युगीन लेखकों के विचार-विमर्श दिखाई देते हैं । यह विचार-विमर्श न केवल गद्य साहित्य की प्रमुख विधा उपन्यास को लेकर है बल्कि कविता, उसके विषय और उसकी भाषा को लेकर भी है । तद्युगीन साहित्यकारों और चिंतकों के समक्ष अंग्रेजी सत्ता के सामने भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता को प्रस्तुत करने की एक चुनौती थी । इस चुनौती का हल निकालते हुए लेखकों और चिंतकों ने एक ओर पुनरुत्थानवादी नजरिये को अपनाया तो वहीं दूसरी ओर साहित्य की सोद्देश्यता के प्रति सचेत हुए । इस पुनरुत्थानवादी चिंतन का एक परिणाम हिंदी-उर्दू के भाषाई विवाद में दिखाई देता है । इसी सोद्देश्यता के परिणामस्वरूप जिन साहित्यिक प्रतिमानों की स्थापना शुरू हुई उसमें युगीन तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों को मनोरंजन प्रधान कहकर नकार दिया गया जबकि युगीन पाठकों ने इसे खूब सराहा और पढ़ा । यहीं नहीं यह प्रतिमानीकरण कविता के संदर्भ में शृंगार विषयक रचनाओं को लेकर भी देखने को मिलता है ।

इस प्रतिमानीकरण के कारण भारतेन्दुकालीन लेखक शृंगार को लेकर आत्मालोचना की स्थिति दिखाई पड़ती है । बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' साहित्य-निर्माण प्रक्रिया और युगीन संदर्भों में शृंगार विषयक रचनाओं की अप्रासंगिकता पर विचार करते हुए लिखते हैं : "साहित्य का संगठन समय के अनुसार हुआ करता है । उस समय जब के बने वे ग्रंथ हैं इससे अधिक की लोगों को आवश्यकता न थी । रुचि भी ऐसी ही अधिकांश लोगों की हो रही थी, विशेषकर हमारे देश के राजा बाबू और अमीरों का शृंगार से ही काम था । आज समय दूसरा है ।

देश की दुर्दशा ने सबकी मुटाई झाड़ दी है । अब वे बातें नहीं जँचती, इसी से आज की आवश्यकता को आजकल के सुलेखकों और ग्रंथकारों को पूरा करना चाहिए ।"[1] कहना न होगा कि तद्युगीन सुलेखकों ने युगीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए साहित्य के शिक्षाप्रद होने और उसकी सोदेश्यता पर विचार करते हुए संगठित हो रहे थे । इसका एक प्रमुख कारण नवजागरण का प्रभाव भी था जिसके अंतर्गत तमाम तरह के समाजसुधार की बातें हो रहीं थीं । लेकिन ऐसा भी नहीं है कि उस दौर में शृंगार विषयक रचनाएँ लिखी नहीं जा रही थी । गौरतलब है कि किसी भी समाज का लोकवृत्त और उसकी रुचि का निर्माण सूचनाओं की सार्वजनिकता के मध्य बनता है । जिसके फलस्वरूप उस पर किसी का एकाधिकार नहीं रह जाता । यही कारण है कि साहित्य के शिक्षाप्रद होने और उसके उपयोगी होने की माँग करने वाले इस युग में साहित्य का प्रयोग मनोरंजन के अर्थ में भी हो रहा था । इस दृष्टि से नवलकिशोर प्रेस, भारत जीवन प्रेस आदि ने उल्लेखनीय कार्य किया ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साहित्येतिहास तक हिंदी साहित्य का संस्थानीकरण हो गया था । लोकप्रिय साहित्य को गंभीर साहित्य से सचेत रुप से अलग कर दिया गया । नागरी आंदोलन के फलस्वरूप 'नागरीप्रचारिणी सभा'(16 जुलाई, 1893 ई.) की स्थापना हो गयी थी । उस समय साहित्य की परिभाषा 'जनसमूह के चित्त के विकास' के रूप में हुई और इसे 'जातीय उन्नति' के साथ जोड़ते हुए साहित्य के शिक्षाप्रद होने को उसकी कसौटी मानी गई । लेकिन इन प्रतिमानों के बाहर लोक अभिरुचि को आधार बनाकर भी साहित्य लिखा जा रहा था । समाज में रहस्य-रोमांच का स्थान था और प्रकाशन व्यवसाय इनके अनुकूल पुस्तकें प्रकाशित कर रहा था । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों को साहित्यिक कोटि से बाहर रखते हुए लिखा है : "पहले मौलिक उपन्यास लेखक, जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुई, काशी के बाबू देवकीनंदन खत्री थे । द्वितीय उत्थानकाल के पहले ही नरेंद्रमोहिनी, कुसुमकुमारी, वीरेंद्रवीर आदि कई उपन्यास लिख चुके थे । उक्त काल के आरंभ में तो 'चंद्रकांता'

[1] .प्रेमघन-सर्वस्व द्वितीय भाग, प्रभाकेश्वर प्रसाद उपाध्याय, दिनेश नारायण उपाध्याय (संपादन), पृष्ठ : 367

और 'चंद्रकांता संतति' नामक इनके ऐयारी के उपन्यासों की चर्चा चारों ओर इतनी फैली कि जो लोग हिंदी की किताबें नहीं पढ़ते थे वे भी इन नामों से परिचित हो गये। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटनावैचित्र्य रहा, रससंचार, भावाविभूति या चरित्रचित्रण नहीं। ये वास्तव में घटना प्रधान कथानक या किस्से हैं जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य कोटि में नहीं आते। पर हिंदी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनंदन का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किये उतने और किसी ग्रंथकार ने नहीं। चंद्रकांता पढ़ने के लिए न जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने हिंदी सीखी। चंद्रकांता पढ़ चुकने पर वे 'चंद्रकांता' की किस्म की कोई किताब ढूँढने में परेशान रहते थे। शुरू-शुरू में चंद्रकांता और चंद्रकांता संतति पढ़कर न जाने कितने नवयुवक हिंदी के लेखक हो गये। 'चंद्रकांता' पढ़कर वे हिंदी की और प्रकार की साहित्यिक पुस्तकें भी पढ़ चले और अभ्यास हो जाने पर कुछ लिखने भी लगे।"[2] एक तरफ रामचंद्र शुक्ल देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों का पाठकों पर पड़ रहे प्रभाव और हिंदी के विकास के लिए उनकी सराहना करते हैं तो वहीं दूसरी तरफ उनके उपन्यासों में केवल 'घटना वैचित्र्य' का हवाला देते हुए उसे साहित्यिक कोटि से बाहर कर देते हैं। उसी तरह गोपालराम गहमरी के सन्दर्भ में लिखते हुए वे भाषा-शैली की सराहना करते हैं लेकिन उन्हें भी साहित्यिक कोटि में नहीं रखते हैं। वे लिखते हैं : "भाषा उनकी चटपटी और वक्रतापूर्ण है। ये गुण लाने के लिए कहीं-कहीं उन्होंने पूरबी शब्दों और मुहावरों का भी बेधड़क प्रयोग किया है। उनके लिखने का ढंग बहुत ही मनोरंजक है।"[3]

आरंभिक उपन्यास लेखन के लोकप्रिय उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री और गोपालराम गहमरी का नाम प्रमुख है। लेकिन उस युग में विकसित हिंदी आलोचना की उपयोगितावादी दृष्टि के कारण इन लोकप्रिय उपन्यासकारों को साहित्यिक कोटि से बाहर कर दिया गया। कहना न होगा कि लोकप्रिय साहित्य और गंभीर साहित्य का यह विभाजन हिंदी

[2] .हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ : 334
[3] .वही, पृष्ठ :334

आलोचना में आज तक चल रहा है। इस शुचिता भाव के कारण आरंभिक हिंदी उपन्यास में इन लोकप्रिय उपन्यासकारों का गंभीर विश्लेषण संभव नहीं हो सका । लोकप्रिय उपन्यासों का अपना समाजशास्त्र होता है। मनोरंजन भी साहित्य का एक अंग है। साहित्य की अवधारणा भी समय के साथ बदलती रहती है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि किसी भी साहित्य का उदय समाज से एकदम विच्छिन्न होकर नहीं होता है। युगीन समाज का चित्रण उसमें जरूर मिलता है । आरंभिक लोकप्रिय उपन्यासों में भी तद्युगीन समाज अपनी धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ उपस्थित है। जहाँ तक गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का सवाल है उसका तो वर्ण्य विषय ही युगीन समाज में हो रहे लूट, डकैती और हत्या जैसे अपराध से जुड़ा हुआ है।

रामचंद्र शुक्ल के बाद 'पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी' 'इलाचन्द्र जोशी' और 'देवराज उपाध्याय' का नाम कथा-आलोचना में महत्त्वपूर्ण है । इन्होंने कथा-आलोचना में पूर्वाग्रह मुक्त आलोचकीय समझ के साथ कथा-आलोचना को नई दिशा दी । पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कथालोचना के क्षेत्र में अपनी दो पुस्तकों से खूब चर्चित हुए, उन्होंने अपनी पहली पुस्तक 'विश्व-साहित्य' के माध्यम से भारतीय पाठकों को विश्व साहित्य से अवगत कराया। इस किताब के माध्यम से वे विश्व साहित्य के समानांतर भारतीय साहित्य के मूल्यांकन की तुलनात्मक पद्धति की शुरूआत करते हैं। उनकी दूसरी पुस्तक 'हिंदी कथा साहित्य' जो सन् 1954 में प्रकाशित हुई, हिंदी आलोचना के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप थी। मधुरेश लिखते हैं: "लोकप्रियता बनाम कलात्मकता के द्वंद्व में बख्शी जी लोकप्रियता की उपेक्षा नहीं करते, इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से भिन्न वे देवकीनन्दन खत्री के चमत्कारिक प्रभाव को गहराई से रेखांकित कर पाने में

सफल हुये हैं।"[4] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी अपनी किताब 'हिन्दी साहित्य विमर्श' में साहित्य और लोक रुचि पर विचार करते हुए महत्त्वपूर्ण बात लिखते हैं : "इसमें संदेह नहीं कि सामयिक साहित्य लोकरुचि की उपेक्षा नहीं कर सकता। यदि लोक रुचि विकृत है तो सामयिक साहित्य पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। सामयिक साहित्य को लोकप्रिय होने के लिए विकृत लोकरुचि का भी अनुसरण करना पड़ेगा। जो साहित्य लोकरुचि के प्रतिकूल है वह लोकप्रिय कैसे हो सकता है ? इसलिए लोकप्रियता पर जिस साहित्य का अस्तित्व निर्भर है उसके लिए यह संभव नहीं कि वह 'सु' और 'कु' की विवेचना करे। यदि वह देखेगा कि लोग 'सु' की अपेक्षा 'कु' की ओर झुक रहे हैं तो वह उसको ग्रहण करने में संकोच नहीं करेगा। विचारणीय यह है कि साधारण लोग झुकते किस ओर हैं। विद्वानों की राय है कि साधारण लोग साहित्य में सत् और असत् की विवेचना नहीं कर सकते। विवेचना करने का भार विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है। तो भी विद्वानों की रुचि सदैव लोकरुचि के अनुकूल नहीं होती। इससे यह तो प्रकट हो जाता है कि सर्वसाधारण भी विद्वानों के विरुद्ध अपनी कोई सम्मति रखते हैं। यदि यह बात न होती तो हमें साहित्य में एक भी ऐसा उदाहरण न मिलता जहाँ सर्वसाधारण और विद्वानों में विरोध हो। सभी लोकप्रिय ग्रंथों की प्रशंसा विद्वान नहीं करते और न विद्वानों द्वारा प्रशंसित सभी ग्रन्थ लोकप्रिय होते हैं। यह होने पर भी ऐसे लोकप्रिय ग्रंथों का आभाव नहीं है जो विद्वानों को भी तोष प्रद है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि लोकप्रिय ग्रन्थ बुरे ही होते हैं।"[5] कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी समाज में कला या साहित्य की शास्त्रीयता या मानकीकरण के सामानांतर उसी समाज में लोक अपनी रुचि के अनुसार किसी भी कला या साहित्य को लोकप्रिय बना सकता है भले ही उसमें श्रेष्ठता का भाव हो। शास्त्रीय रंगमंच के सामानांतर लोक-रंगमंच का उद्भव और विकास इसी का परिचायक है।

[4] . हिंदी आलोचना का विकास- मधुरेश, पृष्ठ : 32
[5] .हिन्दी साहित्य विमर्श, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पृष्ठ : 187-188

आगे आरंभिक हिंदी उपन्यास आलोचना में गोपाल राय और ज्ञानचंद जैन का नाम प्रमुख है। जिन्होंने आरंभिक हिंदी उपन्यास और लोकप्रिय उपन्यासकारों पर अपनी बात रखते हुए लोकप्रियता के कारणों की भी पड़ताल करते हुए नजर आते हैं। इन्होंने इन उपन्यासों पर बात करते हुए युगीन समाज और पाठक वर्ग की रुचि का भी विश्लेषण किया है जो सराहनीय है। इसी क्रम में आगे चलकर तिलस्मी साहित्य पर प्रदीप सक्सेना की पुस्तक 'तिलस्मी साहित्य का साम्राज्यवाद-विरोधी चरित्र', राजेंद्र यादव की पुस्तक 'अठारह उपन्यास' में संकलित लेख 'दयनीय महानता की दिलचस्प दास्तान : चंद्रकांता संतति' और विमलेश आनंद की पुस्तक 'हिंदी के कुतूहलप्रधान उपन्यास' महत्त्वपूर्ण हैं। इससे आरंभिक हिंदी उपन्यास की इस लोकप्रिय धारा को समझने की एक दृष्टि मिलती है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिंदी आलोचना के उदय के साथ ही साहित्य और उसकी उपयोगिता, उसकी शुचिता का प्रश्न शुरू हो जाता है। नवजागरण और पुनरुत्थानवादी विचार के प्रभाव में हिंदी आलोचना का संस्थानीकरण हुआ और युगीन समाज में लोकप्रिय तिलस्मी और जासूसी साहित्य को साहित्यं की कोटि से बाहर कर दिया गया। लेकिन संस्थानीकरण के बावजूद इस साहित्य का प्रभाव लोक में रहा और आलोचना में समाजशास्त्र के प्रवेश के साथ इन लोकप्रिय उपन्यासों के विवेचन-विश्लेषण का भी द्वार खुलने लगा।

3.2. गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास और उसकी पठनीयता

गोपालराम गहमरी हिंदी कथा साहित्य में जासूसी उपन्यासों के जनक माने जाते हैं। उनके उपन्यासों की पठनीयता पर कोई संकट नहीं था। लोकरुचि को ध्यान में रखते हुए उन्होंने युगीन समाज में हो रहे अपराध से जुड़ी घटनाओं को अपने कथा का वर्ण्य-विषय बनाकर पाठक वर्ग को सांसारिक, विश्वसनीय, बुद्धिगम्य और रोचक सामग्री प्रदान करने की कोशिश की। उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं था। उनका उद्देश्य यह था कि अच्छे और सदाचारी पात्रों का शुभ देखकर पाठक अपना आचरण सुधारे। दुराचारी, कुपथगामी लोगों की दीन-हीन दशा

पर विचार कर वे अवगुणों से दूर रहें। यही कारण है कि उन्होंने अपने उपन्यासों सत् के विजय को दिखाया है। समाजसुधार काल में उन्होंने अपने जासूसी उपन्यासों के माध्यम से समाज को सत् मार्ग पर लाने के लिए अपराध वृत्ति से बचने का सूत्र दिया है। उन्होंने सरल एवं आमजन की भाषा में उपन्यास की रचना करते हुए तद्युगीन जीवनमूल्यों और सामाजिक मान्यताओं को अपने उपन्यास में संयोजित किया है। यथार्थ के धरातल पर अपने उपन्यासों की रचना करते हुए उन्होंने पाठकों के मनोरंजन और कौतूहल का भी विशेष ध्यान रखा है। कहना न होगा कि इन औपन्यासिक विशेषताओं के कारण प्रेमचंद पूर्व हिंदी पाठकों में उनके उपन्यास खूब लोकप्रिय हुए।

इन औपन्यासिक विशेषताओं के अलावा भी कई सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारण थे जिन्होंने इनके उपन्यासों को पाठक वर्ग में लोकप्रिय बनाया। पश्चिमोत्तर क्षेत्र में प्रिंटिग प्रेस का तेजी से विकास हो रहा था और विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ भी निकल रही थीं। इन पत्रिकाओं में समाज सुधार की प्रधानता दिखती है तो वहीं इनमें पुनरुत्थानवादी विचारधारा का भी समावेश मिलता है। ऐसे समय में गोपालराम गहमरी अपने जासूसी उपन्यासों के माध्यम से हिंदी क्षेत्र के पाठकों को तर्क और ज्ञान के नए रूपों से परिचित करा रहे थे। इससे पहले देवकीनंदन खत्री उपन्यास को 'लोकप्रिय विधा' के रूप में अवतरित कर चुके थे। गोपालराम गहमरी ने पाठकों के आस्वाद और रुचि के साथ-साथ व्यावसायिक लेखन तीनों को एकसाथ साधने का काम किया। आजकल जिस तरह से व्यावसायिक लेखन पर अश्लीलता का आरोप लगता है वैसा आरोप गोपालराम गहमरी के लेखन पर नहीं लगाया जा सकता है। उन्होंने साहित्य की सोद्देश्यता का ख्याल रखते हुए हिंदी में व्यावसायिक लेखन को साधा जो महत्त्वपूर्ण है।

मीनाक्षी मुखर्जी जासूसी उपन्यासों पर अपनी बात रखते हुए इसके आस्वाद को औपनिवेशिक संस्कृति के संक्रमण से जोड़ कर देखती हैं, वे लिखती हैं : *'Early Hindi*

detective novels document nor merely a shift in taste from the marvelous to the verisimilar. This shift in taste was the result of a cultural transaction in colonial India that paralleled other transaction: between old and new types of societal arrangements, legal systems, authorities, elites and dominant cultures.Quite unlike those serious first Indian novels which directly confronted the question of colonial society and colonial subjects."[6] कहना न होगा कि औपनिवेशिक व्यवस्था के बीच संक्रमण से गुजर रहे भारतीय समाज में नए न्यायिक व्यवस्था, प्रशासन और नए प्रभुत्व वर्ग के उदय ने जासूसी उपन्यास को वह आधारभूत सामग्री प्रदान की जिसकी बुनियाद पर इन उपन्यासों का सृजन संभव हुआ। फ्रेंचेस्का ऑर्सिनी जासूसी उपन्यास को किस्सा और दास्तान से अलगाते हुए लिखती हैं : *"Jasoosi upanyas were immediately distinguishable from qissa and dantans. What distinguished them was the novelistic formula. Rather than recognized by the plot- someone has been killed or kidnapped and the hero/es must find him or her and uncover the murderous plan- jasoosi stories were recognized as such by their narrative arrangements and by certain key elements. As we all know, any story can be turned into a mystery story by taking a certain perspective and "cutting" it in a certain way. It was these key elements that distinguished detective novels from suspenseful qissas and dastans, and which set them apart as a genre."*[7] जासूसी उपन्यासों जिन वर्ण्य-विषय को उठाया जा रहा था वह निश्चित तौर पर औपनिवेशिक संस्कृति के संक्रमण के फलस्वरूप उदित नवीन मूल्य थे। किस्सा और दास्तान की परंपरा से भिन्न तर्क और बौद्धिकता पर आधारित इन उपन्यासों के जासूस नायक अधिकार, कर्तव्य, कानून और विज्ञान तकनीक से परिचित थे। इन जासूसों के प्रति तद्युगीन पाठकों का अनुराग आज के फ़िल्मी नायकों से कम नहीं था। जासूस नायक आधुनिक युग की देन रेल, टेलीग्राफ, बंदूक आदि का इस्तेमाल करते हुए चित्रित किये जाने लगे थे जिससे पाठकों में

[6] .देखें, प्रिंट एंड प्लेजर पॉपुलर लिट्रेचर एंड एंटरटेनिंग फिक्संस इन कोलोनियल नार्थ इंडिया, फ्रेंचेस्का ऑर्सिनी , पृष्ठ : 247

[7] . प्रिंट एंड प्लेजर पॉपुलर लिट्रेचर एंड एंटरटेनिंग फिक्संस इन कोलोनियल नार्थ इंडिया, फ्रेंचेस्का ओर्सिनी, पृष्ठ : 240

रोमांच का भाव पैदा होता था। फ्रेंचेस्का ऑर्सिनी लिखती हैं : *"Novels began either with a suspenseful moment- a shot in a dark stormy night- or with sudden summons for the detective to attend a new case. The call generally came by telegraph, emphasizing the urgency of the matter and the rapidity of the technology. The detective reacted just as dynamically, usually by taking a train the very same night. Other trademarks of the genre included stormy nights, bullets fired in the dark, kidnapping with a lot of blood splashed around, a masked figure (naqabposh),some mysterious voice, an anonymous letter, a dark prison (kothri or tahkhna), a band of goondas, and the detective's tools: examination of the scene of the crime, fingerprints, interrogations, disguises, shadowing, and, of course, the ability to formulate hypotheses and decipher clues…These sub-plots and additional elements reveal the detective novelists striving to maximize entertainment by drawing upon appealing features from other genres."*[8] निःसंदेह इन नए भाव बोध को रोचकता के साथ प्रस्तुत करने वाले इन जासूसी उपन्यासों ने तिलस्मी साहित्य के बाद खूब लोकप्रियता हासिल की। गोपालराम गहमरी यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं क्योंकि अपने जासूसी उपन्यासों में उन्होंने तमाम आधुनिक तकनीक, औपनिवेशिक परिवेश के साथ-साथ तद्युगीन अभिजात्य समाज और व्यवस्था के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को भी जगह दी है।

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की पठनीयता के विभिन्न कारणों में एक कारण युगीन व्यवस्था के भीतर प्रिंटिंग प्रेस का अभूतपूर्व विकास भी रहा। सस्ते लिथोग्राफी ने न केवल प्रिंटिग उद्योग का विकास किया बल्कि इससे पाठकों की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई। इस तरह अस्तित्व में आए व्यावसायिक प्रकाशनों ने न केवल व्यावसायिक लेखन का दरवाज़ा खोला अपितु इस बाज़ार और मनोरंजन ने धर्म और भाषा की सीमाओं का भी अतिक्रमण किया। प्रिंटिंग प्रेस ने इन किताबों को आकर्षक रूप में छापना शुरू किया जिसमें चित्रकारी को

[8] .वही, पृष्ठ : 245-246

तरजीह दी गई। इन उपन्यासों के शीर्षक और आवरण पृष्ठ पर छपे वर्ण्य-विषय से जुड़े चित्र ने पाठकों को खूब आकर्षित किया। लेकिन यहाँ यह कह देना उचित होगा कि आज जिसे हम लुगदी साहित्य कहते हैं या उसका जो लोकप्रिय रूप आज प्रकाशन बाज़ार में उपलब्ध है, उसकी तुलना गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों से नहीं की जा सकती है। गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में मूल्य चेतना का प्रभाव भी दिखाई देता है। तद्युगीन भारतीय समाज में हो रहे लगातार बदलाव का प्रभाव इनके उपन्यासों में साफ झलकता है। मनोरंजन को वे केवल साधन बनाते हैं साध्य नहीं।

सन् 1920 से पूर्व के ऐतिहासिक घटनाक्रमों पर दृष्टिपात करें तो हम देख सकते हैं कि सन् 1857 की क्रांति के बाद औपनिवेशिक सत्ता अपने साम्राज्यवादी विचार को मजबूत करने में जुटी हुई थी। बंगाल-विभाजन के विरोध में एक राष्ट्रीय लहर पैदा हुई थी। विभिन्न संस्थाओं द्वारा समाज-सुधार का कार्य भी इस दौर में चल रहा था। स्वदेशी को अपनाने और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की रणनीति का कार्यान्वयन भी इसी दौर में हो रहा था। फिर इसी दौर में सन् 1907 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस का विभाजन- गरम दल और नरम दल में हुआ। अंग्रेजों के खिलाफ गरम दल ने क्रांतिकारी विचारधारा को अपनाते हुए हथियार को एक माध्यम बनाया। प्रथम विश्व युद्ध और उसके बाद गदर आन्दोलन का भी यही दौर था। गाँधी के आगमन और चंपारण सत्याग्रह का भी यही दौर है। जलियाँवाला बाग हत्याकांड (13 अप्रैल 1919) भी इसी दौर में हुआ। कहना न होगा कि इन सब ऐतिहासिक घटनाओं का कमोबेश प्रभाव गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की पठनीयता को तद्युगीन समाज में इस तरह के लोकप्रिय उपन्यासों की अनिवार्यता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। प्रिंटिग प्रेस के उदय और इन ऐतिहासिक घटनाक्रमों के अलावा अगर तद्युगीन भारतीय समाज की बात करें तो गरीबी चरम पर थी। हिंदी-प्रदेश की अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि और ग्राम लघु-उद्योग पर

निर्भर थी । औपनिवेशिक काल में उभरते पूँजीवाद ने कृषि और ग्रामोद्योग के बीच के संतुलन पर गहरा आघात किया । बढ़ते लगान के बीच किसान जो पहले अपनी जमीन के मालिक थे, वे लगान देकर दूसरों की जमीन पर खेती करने वाले काश्तकार बन गए थे । महाजन और किसान के मध्य के रिश्ते की बात करें तो "भारतीय समाज में सूदखोर महाजन और कर्ज कोई नई चीज नहीं है । लेकिन पूँजीवादी शोषण और खासतौर से साम्राज्यवाद के युग में सूदखोर महाजन की भूमिका ने नए-नए आयाम ग्रहण किए हैं और उसका महत्त्व बढ़ा है । पहले के जमाने में कोई व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत जमानत पर ही महाजन से पैसा ले सकता था और इसलिए महाजन का कारोबार काफी अनिश्चित और जोखिम भरा होता था, व्यवहार में उसका लेनदेन गाँव के फैसले के अधीन होता था । पुराने कानून के अनुसार कर्ज देने वाला व्यक्ति कर्ज लेने वाले व्यक्ति की जमीन पर कब्ज़ा नहीं कर सकता था । ब्रिटिश शासनकाल में ये सारी स्थिति बदल गई । ब्रिटिश कानूनी प्रणाली ने महाजन को कर्जदार की कुर्की करने और जमीन का हस्तांतरण करने का अधिकार देकर सूदखोर महाजनों को स्वर्ण अवसर प्रदान किया और इनकी मदद के लिए पुलिस और कानून की पूरी ताकत उनके पीछे लगा दी । इस प्रकार सूदखोर महाजन पूँजीवादी शोषण की समूची व्यवस्था की धुरी बन गया ।"[9] इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी-प्रदेश का आर्थिक ढांचा नयी जमींदारी-प्रथा और ब्रिटिश शासन की क्रूर शोषक नीतियों के कारण तबाह हो गया । इस तरह हिंदी-प्रदेश भूखमरी, गरीबी और अकाल से ग्रस्त हो गया । यही नहीं इस व्यवस्था ने संपन्न जमींदारों के एक ऐसे तबके को जन्म दिया जो अंग्रेजी शासन के हिमायती साबित हुए । "ऐसे विषम परिवेश में भारतीय समाज घनघोर गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा और पिछड़ेपन में घुट रहा था । उसकी कोई सांस्कृतिक पहचान नहीं थी । धार्मिक रुढियों, जड़ताओं और अंधविश्वासों में जनता बुरी तरह जकड़ी हुई थी ।"[10] कहना न होगा कि इस पूँजीवादी व्यवस्था के बीच जहाँ नए व्यापारी-वर्ग और जमींदार वर्ग का उदय हुआ जिन्होंने 'व्हाइट कॉलर क्राइम' को बढ़ावा दिया वहीं गरीबी और अकाल के कारण शहरों की ओर

[9] . आज का भारत, रामविलास शर्मा(अनुवादक), पृष्ठ : 266-67
[10] .भारतीय नवजागरण और समकालीन संदर्भ, कर्मेन्दु शिशिर, पृष्ठ : 23

पलायन ने लूट, डकैती और चोरी जैसे अपराध को भी जन्म दिया । जिसे आधार बनाकर जासूसी उपन्यास लिखे जा रहे थे । गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में कलकत्ता, बम्बई जैसे बड़े शहरों में हो रहे अपराध का चित्रण हुआ है जो इसी ओर संकेत करता है । औपनिवेशिक भारत में हो रहे इन अपराधों पर दृष्टिपात करते हुए सुमंत बनर्जी लिखते हैं : *"Surely, during certain periods in the history of a city, there had been an increase in the number of particular types of crime (for example, thefts, dacoity, etc.) which could be traced to the influx of impoverished migrants from villages driven by famines or natural disasters like drought and floods in the countryside, or to a sudden rise in prices of commodities within the city which could compel the poorer among the citizens to resort to theft…They had become a part of the growing market and indigenous workforce (either industrial or belonging to the informal sector). In the rat race of the metropolis, they could have been motivated by the competitive spirit to improve their status. It is this value of self-advancement that moulded the behavior of the citizens of nineteenth-century Calcutta. Urbanization- with its new infrastructures and commercial opportunities- led to rising expectations and a desire to acquire material goods. These expectations percolated down to the poorer classes too."*[11]

गौरतलब है कि शहरीकरण और पूँजीवाद के विकास से उत्पन्न परिस्थितियों ने न केवल सामाजिक संरचना को प्रभावित किया अपितु नवीन जीवन मूल्यों के उदय का कारण भी बने । लोगों में भौतिक आकांक्षाओं का विकास हुआ और क्रमशः अपराध भी बढ़ता गया । इस तरह के अपराध तद्युगीन समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते थे और समसामयिक दृष्टि से रोचक भी होते थे । अपराधी जो अंग्रेजी प्रशासन को चकमा देने में कामयाब होते थे और पूँजीपति जमींदारों को अपना शिकार बनाते थे, उनके कारनामों को पढ़ना मनोरंजन का एक साधन था । इन्हीं

[11] .क्राइम एंड अर्बनाइजेशन : कलकत्ता इन द नाइनटीन्थ सेंचुरी, सुमंत बनर्जी, पृष्ठ : xvii- xviii

अपराध-विषयक घटनाओं को केंद्र में रखकर जासूसी उपन्यास लिखे जाते थे । गोपालराम गहमरी ने अपने जासूसी उपन्यासों में पूंजीवाद और शहरीकरण के विकास के साथ बदलती हुई सामाजिक संरचना और भौतिक आकांक्षाओं के बीच बढ़ रहे अपराध को रेखांकित करने की कोशिश की है । इन अपराध के पीछे के सामाजिक, आर्थिक कारणों की पड़ताल भी गोपालराम गहमरी के यहाँ मिलता है ।

कहना न होगा कि बड़े-बड़े जमींदार वर्ग जिनकी राजभक्ति अंग्रेजों के प्रति थी और अंग्रेजी प्रशासन जो इन वर्गों की सुरक्षा के प्रति सचेत थी उनका ठगों, लुटेरों और डकैतों द्वारा लूट लिया जाना और प्रशासन को चकमा देकर भाग जाना उन दिनों बड़ी बात थी । इन घटनाओं के कारण डकैतों के कारनामें भौगोलिक सीमाओं को भी पार कर जाते थे । आम लोगों में यह कौतूहल का विषय हुआ करता था । इन्हीं घटनाओं को वर्ण्य-विषय बनाकर गोपालराम गहमरी ने तद्युगीन पाठक-वर्ग को मनोरंजन के साथ-साथ सदाचार के लिए प्रेरित किया । उन्होंने इसके साथ ही तद्युगीन जीवन मूल्यों और युगीन विसंगतियों को अपने उपन्यास में चित्रित किया है । प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों में गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों को कोरी कल्पना और तिलस्मी साहित्य से अलग यथार्थवादी उपन्यासों के आरंभिक स्थिति के अंतर्गत देखा जा सकता है । यहाँ तद्युगीन समाज का यथार्थ अंकन हुआ है । यह यथार्थ वैसा ही है जैसा वह समाज था । लेखक की दृष्टि भी युगीन जीवनमूल्यों द्वारा संचालित है हालांकि नवजागरण का सुधारवादी प्रभाव भी इनके यहाँ देखा जा सकता है । अतः यह कहा जा सकता है कि इनके उपन्यासों की पठनीयता और लोकप्रियता तद्युगीन औपनिवेशिक व्यवस्था का ही प्रतिफल है ।

3.3. गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास और भारतीय समाज

उपन्यास साहित्य की सबसे सशक्त विधा है । यह वह विधा है जिसके माध्यम से लेखक जीवन की विविध भाव-भंगिमाओं, क्रियाव्यापारों, सामाजिक गतिशीलता, युगीन परिस्थितियों, जीवनमूल्यों आदि को यथार्थ अभिव्यक्ति देता है ।

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों का संबंध आरंभिक हिंदी उपन्यास से है । जैसा कि हम देख चुके हैं उपन्यास के उदय के साथ ही हिंदी आलोचना में सोद्देश्यता और उपयोगितावादी दृष्टि के कारण आरंभिक लोकप्रिय उपन्यास को मनोरंजन-प्रधान कहकर साहित्यिक-कोटि से बाहर कर दिया गया । यहीं से गंभीर और लोकप्रिय साहित्य का एक विभाजन शुरू हुआ जो आज तक चल रहा है । इस विभाजन के कारण आरंभिक हिंदी उपन्यास पर जो विचार-विमर्श हुए उसमें तद्युगीन लोकवृत में लोकप्रिय जासूसी उपन्यासों को गंभीर-पाठ से दूर ही रखा गया । साहित्येतिहास में गोपालराम गहमरी की चर्चा महज पंक्तियों में सिमट कर रह जाती है । गोपाल राय, विमलेश आनंद सरीखे आलोचकों को छोड़ दें तो आरंभिक हिंदी उपन्यास आलोचना में गोपालराम गहमरी पर बात करते हुए किसी आलोचक ने नई बात नहीं की है । हर जगह दुहराव और पूर्वाग्रह ही दिखाई देता है । गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास जो तद्युगीन सामाजिक व्यवस्था का प्रतिफलन है उसमें तद्युगीन भारतीय समाज अपने वास्तविक रूप में चित्रित हुआ है । इनके उपन्यासों को इतिहास और सांस्कृतिक उत्पादन की अंतःक्रिया के रूप में ही समझा जा सकता है । जासूसी उपन्यासों के उदय को इतिहास और सांस्कृतिक उत्पादन की प्रक्रिया में समझे बिना इसके साथ न्याय नहीं किया जा सकता है । नामवर सिंह लिखते हैं : "हमें आरंभिक उपन्यासों के स्थापित मान्यताक्रम (कैनन) पर फिर से गौर करना चाहिए और जिन पाठों को हमने 'उपन्यास जैसे नहीं' कहकर खारिज कर दिया था, उनकी पुनर्परीक्षा करनी चाहिए । जिन्हें हम उपन्यास न कह सके उनके पास एक भिन्न अंतर्वस्तु थी । चूँकि हमने यथार्थवाद को उपन्यास की पहचान मान रखा था, इसलिए अनेक रचनाएँ हमारी दृष्टि से ओझल रहीं ।"[12] कहना न होगा कि हमें पूर्वाग्रह को छोड़कर इन जासूसी उपन्यासों पर विचार करना होगा । गरिमा श्रीवास्तव तद्युगीन उपन्यास की संरचना पर बात करते हुए लिखतीं हैं : "परंपरागत कथा को छोड़कर यथार्थवादी वस्तु को ग्रहण करना लेखक के लिए जरूरी हो गया था । बुर्जुआ सभ्यता, पूँजीवाद और मध्यवर्ग के उदय के

[12] .प्रेमचंद और भारतीय समाज, नामवर सिंह, (आशीष त्रिपाठी-संपादक), पृष्ठ : 37

परिणामस्वरूप परंपरागत समाज में विघटन हो रहा था, ऐसी दशा में समाज के यथार्थ चित्रण की आवश्यकता थी, जिनके पात्र अपनी दुर्बलताओं-सबलताओं समेत मानव का प्रतिनिधित्व कर सकें। इन नए विचारों ने परीक्षा गुरु के लिए विषय-वस्तु का निर्माण किया। इसी के ठीक बाद गोपालराम गहमरी और देवकीनंदन खत्री ऐयारी-तिलस्मी, अपराधप्रधान जासूसी कथाओं से लोकप्रियता अर्जित कर रहे थे।"[13] तात्पर्य यह है कि तद्युगीन उपन्यासकार मनोरंजन का ध्यान रखते हुए भी बदली हुई परिस्थितियों के बीच नई औपन्यासिक संरचना में सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत कर रहे थे। गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में न केवल तद्युगीन समाज के जीवनमूल्यों और आत्मसंघर्ष को यथार्थवादी तरीके से चित्रित किया है अपितु भाषाई स्तर पर हिंदी-उर्दू विवाद में न फँसते हुए उन्होंने जिस साझी भाषा का प्रयोग किया है वह साम्राज्यवादी भाषाई नीतियों पर कड़ा प्रहार है। इतिहास और सांस्कृतिक उत्पादन की अंतःक्रिया की उपज इन जासूसी उपन्यासों में तद्युगीन समाज अपने संगतियों और विसंगतियों के साथ उपस्थित है। यहाँ उसका विश्लेषण किया जाएगा।

स्त्री प्रश्न

नवजागरणकालीन दौर में समाज-सुधार के लिए चल रहे कार्यों में 'स्त्री-प्रश्न' केंद्र में है। सती प्रथा, विधवा-विवाह, बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, स्त्री-शिक्षा आदि विषयों को केंद्र में रखकर वैचारिक और सामाजिक आंदोलन शुरू हुए। गौर से देखें तो 'स्त्री-समस्याओं' के इर्द-गिर्द ही सारे सुधार आंदोलन सक्रिय नजर आते हैं। लेकिन हिंदी प्रदेश में सक्रिय भारतेंदुयगीन रचनाकारों का दृष्टिकोण स्त्रियों के संदर्भ में अंतर्विरोधों और अंतर्द्वंद्वों से भरा पड़ा है। स्त्रियों के संबंध में इस तरह का वैचारिक द्वन्द्व और अंतर्विरोध कमोबेश भारतेन्दुयुगीन सभी रचनाकारों में दिखाई देता है। इसका एक प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक और परंपरागत मानसिकता है। गरिमा श्रीवास्तव आरंभिक उपन्यास और स्त्री प्रश्न को लेकर लिखतीं हैं : "हिंदी के आरंभिक दौर

[13] .इतिहास, रोमांस और क़िस्सागोई : किशोरीलाल गोस्वामी, गरिमा श्रीवास्तव, इन्द्रप्रस्थ भारती (पत्रिका), अप्रैल-जून 2015, पृष्ठ :61

के सभी उपन्यासों के केंद्र में स्त्री-प्रश्न रहा है। 'देवरानी-जेठानी की कहानी', 'भाग्यवती', 'वामा शिक्षक' और एक सीमा तक 'परीक्षा गुरु' में स्त्रियाँ ऐसे चरित्र के रूप में सामने लाई गईं जिनके माध्यम से तत्कालीन समाज-व्यवस्था में सुधार की संभावना दिखाई पड़ती थी। इसी क्रम में 'जेंडर' को ध्यान में रख कर उपन्यास लिखे गए। बावजूद इसके कि 'जेंडर' एक सामजिक निर्मिती है जो किसी विशिष्ट व्यवहार का बारंबार दोहराव होती है, इन उपन्यासों में जेंडर को लेकर एक बंधी-बंधाई सोच दिखाई देती है- भाषा कोई भी हो, अच्छी स्त्री के बरअक्स बुरी स्त्री का विलोम खड़ा कर दिया जाता था।"[14] यह अच्छी और बुरी स्त्री की धारणा तद्युगीन सामाजिक जीवनमूल्यों से प्रभावित है जो आरंभिक हिंदी उपन्यासों में हर जगह दिखाई देता है। भारतेंदु, प्रतापनारायण जैसे रचनाकार हालाँकि स्त्री-शिक्षा और स्त्री संबंधी समस्याओं को लेकर जागरूक दिखाई देते हैं लेकिन यह जागरूकता भी पितृसत्तात्मक संरचना के अंदर ही विकसित होती जान पड़ती है। इस संदर्भ में वीरभारत तलवार लिखते हैं : "औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत जब पुरुष स्कूल कालेजों में अंग्रेजी शिक्षा पाकर निकलने लगे तो उनकी स्त्रियों का अनपढ़ और ज़ाहिल रहना उन्हें खटकने लगा। नये शासन के नियम कायदों और सभ्यता-संस्कृति के असर से उनकी अपनी जीवन-शैली बदल गयी थी और उन्होंने शिष्टाचार के नये तौर तरीके अपना लिए थे। अब उन्हें अपने घरों में स्त्रियों के बर्ताव और काम करने के पुराने ढंग फूहड़ और असुविधाजनक लगने लगे थे। उनके सामने अंग्रेज परिवारों की स्त्रियाँ थीं जिनके कपड़ों की सफाई, व्यावहारकुशलता, बातचीत का ढंग, शिष्टाचार और कार्यनिपुणता उन्हें अपनी घरेलू स्त्रियों के लिए 'आदर्श' (मॉडल) लगती थी। लिहाजा ये सुधारक समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे में कोई सुधार किए बगैर औरतों पर अपना परम्परागत नियंत्रण जरा भी ढीला किए बिना, अपनी स्त्रियों को एक खास क्षेत्र में- घरों के अंदर नए 'आदर्श' रूप में ढालने की कोशिश करने लगे। ... शिक्षित स्त्री की नयी भूमिका की अंतर्वस्तु काफी हद तक वही पुरानी

[14] देखें, नवजागरण, स्त्री-प्रश्न और आचरण पुस्तकें (लेख), गरिमा श्रीवास्तव, https://www.hindisamay.com/content/6471/1.cspx

थी ।"[15] तात्पर्य यह है कि आधुनिकता प्रक्रिया में अर्जित की जाती है, कोई भी समाज एक दिन में आधुनिक नहीं हो जाता ।

गोपालराम गहमरी के यहाँ भी यह अंतर्द्वंद्व और अंतर्विरोध कहीं-कहीं दिखाई देता है । लेखक ने स्त्री-समाज के चित्रण में उनकी चारित्रिक विशेषताओं को सामाजिक आदर्श के संदर्भ में रखकर ही चित्रित करने का प्रयास किया है । पतिव्रत धर्म को लेखक ने सराहा है । लेकिन गोपालराम गहमरी स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह, बेमेल विवाह, और बाल विवाह जैसे प्रश्नों को लेकर भी सजग दिखाई पड़ते हैं । इनके उपन्यासों में ऐसे स्त्री-वर्ग का भी चित्रण मिलता है जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं । अपने उपन्यास 'ठनठन गोपाल' में गोपालराम गहमरी ने दीवान कुंवरि (माँ) और हरदेवी (पुत्री) के बीच के संवाद के माध्यम से तद्युगीन भारतीय समाज में स्त्री की दशा का यथार्थ चित्रण किया है । हरदेवी जो शिक्षित स्त्री है वह अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई पड़ती है, वहीं उसकी माँ दीवान कुंवरी में पितृसत्तात्मक संरचना के स्वीकार्य भाव के साथ-साथ निराशा झलकती है । लेखक ने यहाँ पर दो पीढ़ियों के संवाद के माध्यम से परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व को भी बखूबी चित्रित किया है :

"ह०- यह सब कुछ नहीं है मैं अब बालिग हूँ । स्वाधीन भाव से काम करने का मुझे हक और अधिकार है ।

दी०कु०- इसमें भी तुम भूलती हो । स्त्री जाति के लिये हिन्दू-धर्म में स्वाधीन भाव या स्वाधीनता कहाँ है ? जिनको अपना खुद परिचय देने में भी अपना नाम छोड़कर दूसरे के नाम की आड़ में खड़ा होना होता है, जो भगवान के यहाँ से दूसरे ही की पराधीनता के लिये बनाई गई हैं उनको स्वाधीनता कहाँ ? पत्थर का बना हुआ छोटा सा ताजमहल खरीदते ही जैसे उसको ग्लास केस में हिफाजत से रखने की इच्छा होती है स्त्री जन्मते ही वैसी ही रक्षा से रखने की मन में आप ही आप प्रवृत्ति होती है । सदा स्त्री जन्म से मरण तक दूसरे की रक्षा में रहती है ।

[15] रस्साकशी, वीरभारत तलवार, पृष्ठ संख्या :188-189

विवाह न होने तक माँ-बाप की रक्षा में, ब्याह होने पर पति की रक्षा में, फिर बुढ़ापे में जब पति नहीं रहे तब पुत्र की रक्षा में, गरज कि स्त्री सदा पराधीनता में रहती है।

ह०- वह दुनिया अब बदल गयी है। अब नयी रोशनी में देश उन्नत के मैदान में लम्बे डग मारता दौड़ रहा है। स्त्री डाक्टर होती हैं, स्त्री एम.ए.बी.एल. होती हैं, स्त्री बेरिस्टर होती हैं। स्त्री को वोटाधिकार मिलता है, स्त्री कौंसिल में बैठती हैं।

दी०कु०- हुआ करें इससे क्या वह स्वाधीन हो जायँगी ? वह सदा पराधीन हैं।

ह०- मैं तो कहती हूँ बिलकुल स्वाधीन हैं।"[16] यहाँ पर हरदेवी के चरित्र में नवजागरणकालीन चेतना का प्रभाव साफ़ दिखाई पड़ता है। वहीं इसी उपन्यास में जासूस ठनठन गोपाल और घरघूमन जब हरदेवी की खोज में जंगल में भटक रहे होते हैं तब उन्हें एक साध्वी मिलती हैं। लेखक ने साध्वी और इन दोनों के बीच के संवाद के माध्यम से न केवल स्त्री के प्रति अपनी कृतज्ञता को उजागर किया है अपितु स्त्री-प्रश्न को बहुत ही गंभीरता के साथ पर्यावरण के प्रश्न से भी जोड़ देते हैं। यह संवाद इस दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है :

"हम०- हम लोग तो नारी की पूजा करते हैं।

अब माताजी हँसकर बोलीं – 'नारी की पूजा-अर्चना कैसी ! यह तो महापाप है।'

अब हम ढीठ हो गये थे। उस देवी रूपमाता के सामने साहस से खड़े होकर बोले – 'यह कैसी बात है कि नारी की अर्चना नहीं करनी चाहिये ? जो रमणी हम लोगों की जननी है, जिसके स्तन से दूध पीकर हम लोग पले हैं, जिसके निस्वार्थ प्रेम से जगत में स्वर्ग का सौन्दर्य क्षण प्रभा की भाँति विकसित होता है, जो रमणी हम लोगों की भागिनी है जिसके स्नेह और आदर से हृदय

[16] ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :224-225

में प्रीति की धारा बहने लगती है, जो रमणी हमारी स्त्री होती है, जिसका प्रेम इस ताप दग्ध मरुभूमिमय जीवन में शान्ति सलिल सींचता है उसकी पूजा-अर्चना नहीं करना चाहिये ?

माँजी ने इतना सुनकर कहा – 'जननी कृतज्ञता की पात्री है किन्तु कृतज्ञता है कहाँ ? माँ वसुंधरा भी तो जननी हैं। जिनका सुधाश्रावी स्तन पान करके मनुष्य जीवन धारण करता है वह भी तो जननी है। लेकिन वह जननी भाव है कहाँ ? माँ वसुन्धरे कहकर कितनों की आँखें भीगती हैं। यह जो अनन्त गगन में विशाल दिवाकर हैं इनके समान हितैषी जगत में कौन है किन्तु कै आदमी ह्रदय से उनके कृतज्ञ हैं। केवल स्नान करके उड़ता हुआ पानी फेंक देने से क्या होता है ? जिसमें ह्रदय नहीं है, जहाँ अटूट और अचल श्रद्धा नहीं है उसका यह पानी फेंकना क्या है। यह जो आकाश में चन्द्र, सूर्य, तारागण हैं, रात-दिन हम लोगों के गुप्त या प्रकट भाव से मंगल में लगे हैं उनका कौन गुण मानता है।...पूजा-अर्चना हम लोग कहाँ जानते हैं ? तुम लोग भला नारी-पूजा कहाँ सीखोगे ?[17] कहना न होगा कि लेखक ने इस संवाद के माध्यम से न केवल पुरुष समाज को आईना दिखाया है और बाह्याडंबर की आलोचना की है बल्कि स्त्री-प्रश्न को पर्यावरण के प्रश्न से जोड़कर देखते हुए जिस दूरदर्शिता का परिचय दिया है वह उस दौर के उपन्यास में नहीं मिलता है। इस संदर्भ को आगे छायावाद युग में कामायनी के संदर्भ में देखा जा सकता है।

गोपालराम गहमरी 'पत्नी' शीर्षक उपन्यास में स्त्री शिक्षा को लेकर बहुत ही सजग दिखाई देते हैं। वे इस संदर्भ में अपने समकालीन रचनाकारों से अधिक प्रगतिशील नजर आते हैं। इस उपन्यास में 'चंदा' मुख्य पात्र है जो सुशिक्षित है और स्त्री-प्रश्न को लेकर बहुत गंभीर है। उसने 'स्त्री का स्थान' शीर्षक से एक पुस्तक भी लिखी है। वह उस समाज की आलोचना करती है जो स्त्री को घर तक ही सीमित रहने को आदर्श मानते हैं। गोपालराम गहमरी ने इस उपन्यास में जगह-जगह स्त्री मुक्ति के प्रश्न को आधुनिक संदर्भ में देखने का प्रयास किया है।

[17] . वही, पृष्ठ : 288-289

चंदा, मिस्टर भार्गव और प्रताप के बीच के संवाद के माध्यम से लेखक ने न केवल स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया है बल्कि तद्युगीन हिन्दू समाज की आलोचना भी की है :

"चंदा ने कहा –'इधर तो समालोचक लोग कहते हैं कि मैं एकदम विप्लववादी मार्ग पर जा रही हूँ। हिन्दू-नारी के जीवन का आदर्श मैं समझ ही नहीं सकती। मैं बिलकुल में साहब हूँ। भारत-महिला के जीवन से एकदम अपरिचित हूँ, इत्यादि।'

मिस्टर भार्गव कहने लगे –'वे सब बातें कहने की नहीं हैं। परिवर्तनवाद से विरोध करनेवाले तो व्यवस्थापिका सभाओं में गर्दन ऊँची करके कहते हैं – गवर्नमेंट का स्त्री-शिक्षा में अधिक हाथ डालना महाअनर्थकारी होगा। स्त्रियों की असल शिक्षा तो अन्तःपुर में ही होनी चाहिए। वहाँ उनको जो शिक्षा मिलती है वही उनके लिए पवित्र और आत्मिक है। उससे जो स्त्री तैयार होकर निकलेगी वही निर्मल अर्थात् विकारहीन गृहस्थ की मंत्रदायिनी होगी। स्त्री का दर्जा गृहस्थी में मंत्रिणी का है। गृहस्थ प्राणी ब्याह करते समय जब अपनी घरनी बनाकर स्त्री का पाणि-ग्रहण करता है तब अग्निदेव की साक्षी में उभय कुल के पुरोहितों के सम्मुख उसे अपनी प्रतिज्ञाओं में मंत्रदायिनी बनाकर ही ग्रहण कटा है। इसके सिवा परिवार के बाहर का कुछ भी किसी तरह का प्रभाव स्त्रियों में घुसा तो बस हिन्दू-समाज एकदम छिन्न-भिन्न हो जाएगा।"[18] गोपालराम गहमरी स्त्री-शिक्षा को लेकर काफी सजग थे। यह उनके उपन्यासों में आसानी से लक्ष्य किया जा सकता है। उनके प्रायः सभी स्त्री-पात्र शिक्षित हैं और पत्र आदि का व्यवहार करते हुए मिलते हैं। कहना न होगा कि स्त्री-शिक्षा के संदर्भ में गोपालराम गहमरी अपने समकालीनों में व्याप्त अंतर्विरोधों के प्रति सजग और किसी हद तक उनसे मुक्त भी थे।

बालविवाह उस दौर की एक प्रमुख समस्या थी। "19वीं सदी के कई सुधारकों ने बालविवाह की समस्या पर बड़े ठोस ढंग से विचार किया था और विवाह की सही उम्र का सुझाव दिया था।

[18] .पत्री, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :100

उस जमाने में लड़कियों का ब्याह एक से सात-आठ साल की उम्र तक हो जाना आम बात थी। 11-12 साल की उम्र सबसे ज्यादा समझी जाती थी। हिंदुओं में यह धारणा प्रचलित थी कि पिता के घर में लड़की का मासिक धर्म शुरू होने से पिता को पाप लगता है। शास्त्रों की व्यवस्था थी कि गर्भाधान विधान पहले मासिक धर्म के तुरंत बाद होना चाहिए। इन दोनों कारणों से लड़कियों की शादी हर हालत में 11-12 साल से पहले हो जानी जरूरी समझी जाती थी। स्वामी दयानंद ने इस विवेकहीन प्रथा की कड़ी निंदा की। लड़के और लड़कियों, दोनों की शिक्षा पर समान रूप से जोर देते हुए उन्होंने ब्याह के लिए लड़की की उम्र कम-से-कम सोलह साल और लड़के की कम-से-कम 24 साल जरूरी ठहराई।"[19] काशीनाथ खत्री भी तद्युगीन समाज-सुधारकों की तरह बालविवाह की समस्या पर गहराई से विचार करते हैं। "उन्होंने इसके तीन बुरे नतीजों का विस्तार से विवेचन किया – 1.इससे हिंदुस्तानी शारीरिक तौर पर कमजोर, रोगी, आलसी, कम उम्रवाले और साहसहीन बनते हैं। 2.इससे स्त्रियाँ ज्ञान और शिक्षा से वंचित रह जाती हैं जो 'समाज की अवनति का मुख्य कारण है।' 3.बालविवाह होने से विधवाओं की संख्या बढ़ती है ; साथ ही विधवाविवाह के रस्ते में बालविवाह की प्रथा एक बड़ी रुकावट है।"[20]

गोपालराम गहमरी बालविवाह और उससे होने वाली समस्याओं से परिचित थे। उन्होंने अपने उपन्यासों में बालविवाह की आलोचना की है। उनके अधिकांश स्त्री-पात्र शिक्षित हैं जिससे यह बात स्पष्ट तौर पर रेखांकित होती है कि बालविवाह का विरोध किया है। 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में हरदेवी के पिता का परिचय देते हुए वे लिखते हैं : "रूपसिंह सुकेत रियासत में एक गाँव के रहने वाले हैं। उनको मरे दो साल से ऊपर हो गये। मरने से पहले वह अपनी दुलारी लड़की हरदेवी का विवाह कर देना चाहते थे। लेकिन काल की गति कौन जानता है। मन में सोचते थे कि अभी हरदेवी बारह-साढ़े बारह बरस की है। पंद्रह-सोलह बरस होने से

[19] .रस्साकशी, वीरभारत तलवार, पृष्ठ संख्या : 171
[20]. वही, पृष्ठ : 175

पहले ब्याह देना ठीक नहीं है । पूरब वालों की तरह बचपन में गुड़ियों का-सा ब्याह करना बिलकुल नासमझी है ।"[21] वहीं जब हरदेवी गायब हो जाती है तब लेखक तद्युगीन समाज और उसकी मानसिकता को रेखांकित करते हुए टिप्पणी करते हैं : "बात की बात में सर्वत्र बात फैल गयी । जिसने सुना वही ताना देने और कहने लगा - 'अंग्रेजी पढ़कर अब हिन्दुस्तानी भी जवानी थलथलाने पर ही अपनी लड़की का विवाह करना पसंद करने लगे हैं । इतनी उमर तक क्वारी लड़की रहने का फल यही तो होता ही है ।'"[22]

तद्युगीन भारतीय समाज में बालविवाह के कारण विधवाओं की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई । विधवाओं के पुनर्विवाह को लेकर समाज का रवैया विरोधी था और वे विधवाओं पर लगे तरह-तरह के कठोर बंधनों के समर्थक थे । "विद्यासागर की अनथक कोशिशों से 1856 में विधवाविवाह का कानून बन जाने के 25 साल बाद भी पश्चिमोत्तर प्रांत में इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं हुआ । आर्यसमाज और कायस्थ महासभा के कुछ उत्साही सुधारकों को छोड़कर किसी ने इनके पक्ष में प्रभावशाली आवाज नहीं उठाई ।"[23] वहीं एक बात और ध्यान देने वाली है कि "19 वीं सदी में विधवाविवाह के प्रति ज्यादातर पुरुष सुधारकों का रवैया विधवा के साथ हुए अन्याय और उनके मानवीय अधिकार को महसूस करने का उतना नहीं था जितना उन पर तरस खाना, उनके गुनाहों को नजरअंदाज कर उन्हें कुछ राहत और संरक्षण देकर, अपने अहं को संतुष्ट करने का था ।"[24] इस दौर में हिंदी साहित्य चिंतकों की बात करें तो उनमें राधाचरण गोस्वामी विधवाविवाह के समर्थन में बिना किसी अंतर्विरोध के खड़े दिखाई पड़ते हैं । "उन्होंने पंडितों और वैष्णव गुरु-गोसाइयों पर विधवाओं के आर्थिक-शारीरिक शोषण का इल्जाम लगाया जो अपने निकृष्ट स्वार्थों के लिए विधवाविवाह के खिलाफ थे ।"[25] कहना न होगा कि हिंदी लखकों में पहली बार उन्होंने विधवाविवाह के विरोध में खड़े लोगों की कड़ी

[21] . ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :4
[22] .वही, पृष्ठ : 5
[23]. रस्साकशी, वीरभारत तलवार, पृष्ठ : 176
[24] .वही, पृष्ठ : 180- 181
[25] .वही, पृष्ठ :183

आलोचना की और उनकी अनैतिकता पर सवाल खड़ा किया । यह ऐसा दौर था जब लोग विधवाविवाह के समर्थन में खड़े न होकर उनके लिए विधवा आश्रम खोलने की वकालत करते थे । गोपालराम गहमरी विधवाओं के पुनर्विवाह को लेकर सजग दिखाई पड़ते हैं । 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में तेलूराम के यहाँ दाई का काम करने वाली बेला जब एक स्त्री (सती) को तेलूराम के यहाँ देखती है तब उसके मन में तरह-तरह के विचार आते हैं । गोपालराम गहमरी बेला की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए तेलूराम और युगीन समाज-सुधार के प्रभाव को दिखाते हुए लिखते हैं : "इधर बेला के मन में बड़ी चिंता है । सदा यही सोचती रहती है कि यह सती है कौन ? ब्याही है या क्वारी, सधवा है या विधवा इसका तो कुछ पता नहीं लेकिन इस उमर तक कोई क्वारी तो रहती नहीं है । माँग में सेंदुर नहीं है तो क्या अब जमाना दूसरा आया है । सेंदुर का उतना आदर नहीं होता । लेकिन ई सधवा होती तो यहाँ आती काहे को अपने सासरे चली जाती कि यहाँ आती ! विधवा हो तौ भी हमारे मालिक विधवा विवाह पर राजी ही हैं ।"[26]

गोपालराम गहमरी अपने जासूसी उपन्यासों में स्त्री-प्रश्न और उनकी समस्याओं को लेकर काफी सजग दिखाई देते हैं । 'मायावी', 'हंसराज की डायरी', 'बलिहारी बुद्धि', 'पत्नी', 'झंडा डाकू', 'जासूस की डाली', 'खूनी का भेद', 'भोजपुर की ठगी', 'गेरुआ बाबा', 'ठनठन गोपाल' आदि उपन्यासों को पढ़कर ऐसा ही प्रतीत होता है । कहना न होगा कि स्त्री संबंधी प्रश्नों को लेकर उनपर तद्युगीन नवजागरणकालीन समाज सुधार का प्रभाव साफ दिखाई देता है । इनके उपन्यासों में चित्रित स्त्री-पात्र अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई देते हैं । कुछ स्त्री पात्रों में पितृसतात्मक संरचना में ढल चुकी भारतीय स्त्री का भी रूप दिखाई देता है जो पतिपरायण हैं और अपने बंधनों को आइडियलाइज करके देखती हैं । वे अपने कष्टों का कारण अपने कर्म को ही मानती हैं । अपने पति पर कोई विपत्ति आती है तो उसका दोष खुद को ही मानकर चलती है । इन स्त्रियों के चित्रण में लेखक ने तद्युगीन भारतीय स्त्री-वर्ग जिनकी संख्या अधिक थी का यथार्थ रूप सामने रखा है । वहीं शिक्षित और अपने अधिकारों के प्रति सचेत स्त्री

[26] . ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 157

वर्ग को सामने रखकर युगीन समाजसुधार के प्रभाव को भी अभिव्यक्ति दी है। लेखक का मंतव्य यहाँ साफ दिखाई देता है कि वे शिक्षित और जागरूक स्त्री-वर्ग के पक्ष में हैं। स्त्री-प्रश्न को लेकर प्रगतिशीलता के नजरिए से देखें तो वे अपने समकालीन रचनाकारों से काफी आगे दिखाई देते हैं।

पुरुष समाज

भारतीय सामाजिक संरचना का मूलाधार पितृसत्तात्मक है। पितृसत्ता के अंतर्गत पिता (पुरुष) को ही सर्वाधिकार दिया गया है। बकौल प्रभा खेतान "पितृसत्ता पुरुष को सम्पूर्ण रूप से पहला आदमी बनाती है। सृष्टि की शुरूआत करने वाला, पहला कर्ता। स्त्री की रचना उसके बाद हुई बतायी जाती है। इसीलिए हर शास्त्र और संहिता में, धर्म में प्रथम और अंतिम कर्ता के रूप में पुरुष ही होता है।"[27] पितृसत्ता पुरुष को स्वामित्व का आधार प्रदान करती है। आज समाज काफी बदल गया है लेकिन आज भी पितृसत्ता की जड़ें कायम हैं। उस दौर में पितृसत्ता का रूप और भी जटिल था। विमलेश आनंद लिखते हैं : "तत्कालीन पुरुष-समाज में विलासिता की काफी प्रबलता थी। रसिकता पुरुष का गुण माना जाता था। पुरुष स्वतंत्र थे, उन पर स्त्रियों-सी नैतिक कड़ाई का बंधन नहीं था। बहु विवाह पहले जैसे प्रचलित नहीं थे किन्तु उनका एकदम निषेध भी नहीं हुआ था। ...पुरुषों को बहुविवाह, विधवा विवाह व वारांगना-गमन की छूट थी किन्तु इन प्रवृत्तियों से शून्य पुरुष सच्चरित्र व आदर का पात्र समझा जाता। पुरुष गृह स्वामी था, धनार्जन, गृहस्थी के आर्थिक प्रबंध और उसकी निजी स्वतंत्रता पर पत्नी का अनुशासन न था।"[28]

गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में जिस पुरुष समाज का चित्रण किया है वह तद्युगीन जीवनमूल्यों के लिहाज से अंतर्विरोध और अंतर्द्वंद्व के साथ-साथ आधुनिक दिखाई

[27] .उपनिवेश में स्त्री मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ, प्रभा खेतान, पृष्ठ:173
[28]. हिन्दी के कुतूहलप्रधान उपन्यास, विमलेश आनंद, पृष्ठ: 183-184

पड़ता है। उनके उपन्यासों के प्रायः सभी जासूस नायक आधुनिक चिंतन से लैस दिखाई पड़ते हैं। जासूस वर्ग के सभी पुरुष पात्र आदर्श जीवनमूल्यों के संवाहक हैं। 'झंडा डाकू' का जासूस पोखरमल, 'मायावी' उपन्यास का अरिंदम, 'जासूस की डाली' का मुहम्मद सरवर आदि सभी जासूस न्याय में यकीन रखने वाले सत्यान्वेषी हैं। अपराधी वर्ग के पुरुष पात्रों को गोपालराम गहमरी ने पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ आर्थिक मूल्यों आए परिवर्तन पर दृष्टिपात करते हुए धन की इच्छा में अपराध में लिप्त दिखाया है। इनके उपन्यासों में आए अन्य पुरुष पात्रों में कुछ पुरुष पात्र ऐसे भी हैं जो स्त्री-प्रश्न को लेकर काफी मुखर हैं। ये पुरुष-पात्र तद्युगीन समाजसुधार से प्रभावित पुरुष वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करते हुए नजर आते हैं। 'पत्नी' उपन्यास में प्रताप स्त्री-प्रश्न और उनकी समस्याओं को लेकर कहता है : "आत्मिक और भौतिक वाद ये दो बड़े विकट जंजाल हैं। हम लोगों के सब दोष ढँकने के लिए आत्मिकवाद एक ब्रह्मास्त्र है। इस देश में स्त्रियों को देखकर जो लोग निश्चिन्त हो सकते हैं उनकी तीन श्रेणियाँ हैं- एक तो वे लोग हैं जिन्होंने कभी किसी तरह की स्त्री देखी ही नहीं है। वे लोग जरूर नारी-चरित्र के जो गुण देखें उसी पर मुग्ध होकर वाहवाही दिया करें तो इसके लिए उनको दोष नहीं दिया जा सकता। दूसरे वे हैं जिन्होंने अपने प्रभुत्व, अपनी स्पृहा और सब प्रवृत्ति को बिलकुल दमन करके रक्खा है। तीसरे वे लोग हैं जिनकी सांख्य की भाषा में तुष्ट संज्ञा है। वे जो है उसी में प्रसन्न हैं।"[29] गोपालराम गहमरी ने तद्युगीन भारतीय समाज में बहु-विवाह की समस्या का जो एक प्रमुख कारण बताया है वह है संतान प्राप्ति। संतान न होने की वजह से भी बहुत से लोग दूसरा विवाह करते थे। इस संदर्भ में लेखक ने स्त्री की मानसिकता का भी उल्लेख किया है। संतान न होने की वजह से स्त्रियाँ खुद को उसके लिए जिम्मेदार मानती हैं। इसे हम पितृसत्तात्मक समाज की संरचना का प्रभाव कह सकते हैं कि परिवार में आए किसी भी दोष, दुःख का कारण स्त्रियाँ खुद को समझने लगती हैं। 'डबल बीबी' उपन्यास में लेखक ने इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया है। पुत्र प्राप्ति की कामना को पितृसत्तात्मक समाज की अवधारणा के अंतर्गत देखा जा

[29] . पत्नी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 100-101

सकता है जहाँ पुरुष का स्थान सर्वोपरि है । पुत्र या पुत्री का जन्म निश्चित तौर पर पुरुष पर निर्भर करता है यह बात गोपालराम गहमरी भलीभांति जानते हैं । इस उपन्यास में गिरजा की सास पोते की कामना में लालायित है । वह ज्योतिष, साधुओं आदि से इसका हल जानना चाहती है । अपनी तरफ से सब उपाय कर लेने पर भी जब ऐसा नहीं होता है तब वह गिरजा को खूब भला-बुरा सुनाती रहती है । गिरजा की सास अपने बेटे रामप्रसाद का दूसरा विवाह करवाना चाहती है जिससे उसका मनोरथ पूरा हो सके । यह सब कुछ यूँ घटित होता है कि पुत्र न होने के कारण गिरजा खुद को दोषी समझने लगती है और अपने पति रामप्रसाद से दूसरा विवाह कर लेने का आग्रह करती है । यहाँ इस प्रसंग में लेखक ने रामप्रसाद का जो चरित्र दिखाया है वह आज के समाज के लिए भी आदर्श है । गिरजा और रामप्रसाद के बीच का संवाद इस दृष्टि से अवलोकनीय है :

"रामप्रसाद ने उसकी बात पर आग्रह करके कहा- 'क्या बात है कहो ?'

गिरजा- 'कहें तब जब हमारी बात रक्खो ।'

राम०- 'रखने की बात होगी तो जरूर रक्खेंगे । काहे तुम्हारी बात क्या कभी हमने टाली है ?'

गिरजा स्वामी के चरणों में पड़कर रोते-रोते बोली- 'तुम एक और ब्याह करलो । माजी का दुःख अब नहीं देखा जाता ।'

रामप्रसाद ने धीरे-धीरे गिरजा को छाती से लगाकर कहा- 'नहीं उससे तुमको बड़ा दुःख होगा ।'

गिरजा- 'जब माजी खुश हो जाएँगी और पहले की तरह हँसी खुशी से बोलने लगेंगी तो मैं सब दुःख सह लूँगी ।'

राम०- 'नहीं ! तुमको लड़का नहीं होता इस बात पर माँ जो तुमको बकती झकती है यह बहुत अनुचित बात है । मैं इसे नहीं सह सकता । इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है ।'

गिरजा ने स्वामी की गोद से सिर उठाकर आँसू पोंछा और कहा- 'नहीं माजी जो हमको बकती हैं उसमें हमारे नसीब का दोष है माजी का कुछ कसूर नहीं है ।'"[30] गोपालराम गहमरी ने पितृसत्तात्मक समाज में व्याप्त इस मानसिकता की कड़ी निंदा की है और पूरे उपन्यास में तार्किकता के साथ इस बात पर जोर दिया है कि पुत्र या पुत्री का जन्म लेना पिता पर निर्भर करता है न की स्त्री पर । उन्होंने पितृसत्तामक समाज में ढल चुकी उन स्त्रियों की भी आलोचना की है जिनकी मानसिकता पितृसत्तात्मक समाज की संरचना को मजबूत करती है । इस उपन्यास की भूमिका में वे लिखते हैं : "आजकल जगत में लड़का होने की आशा से बहुत सी माता अपने लड़के का और बहुत सी सती स्त्रियाँ अपने स्वामी का दूसरा विवाह कराके अपने ऊपर आफत लाती है । इसमें भी उसी का एक उपदेशपूर्ण आख्यान है । इसको पढ़कर ऐसे अनर्थ करने वालों में से कुछ भी सुधरेंगे तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे ।"[31] कहना न होगा कि गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज को उपदेश देने और सुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया है । उन्होंने पुरुष समाज के चित्रण में ऐसे पात्रों का चयन किया है जो अपने समसामयिक समस्याओं के प्रति सचेत दिखाई पड़ते हैं । पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना किस तरह स्त्रियों की मानसिकता को जकड़ लेती इसका उदहारण उन्होंने लगभग हर उपन्यासों में दिया है । मनोरंजन को साधन बनाते हुए उन्होंने अपने उपन्यासों में समसामयिकता को विविधता के साथ समेटा है और इसके साथ ही उन समस्याओं के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य और प्रभाव का भी चित्रण किया है ।

अंग्रेजी सभ्यता का आकर्षण और पूंजीवाद

संक्रमणकालीन उस दौर में मध्यवर्गीय भारतीयों में अंग्रेजी सभ्यता का आकर्षण खूब था । यह वर्ग अंग्रेजी खान-पान, पहनावे और साज-सज्जा के प्रति खूब आकर्षित थे । तद्युगीन उपन्यासों में इस वर्ग की आलोचना साहित्यकारों ने खूब की है । लाला श्रीनिवास दास कृत उपन्यास

[30] .डबल बीबी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ: 6-7
[31] .वही, भूमिका, पृष्ठ: 1

'परीक्षा-गुरु' भी इसका एक अच्छा उदाहरण है। गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों के अधिकांश पात्र इसी मध्यवर्ग से आते हैं। इसलिए इनके उपन्यासों में इन वर्गों से आए पात्रों में अंग्रेजी सभ्यता का आकर्षण स्पष्ट रूप से लक्ष्य किया जा सकता है। गोपालराम गहमरी की सफलता यहाँ यह है कि उन्होंने न केवल इस आकर्षण के तरफ ध्यान खींचा है बल्कि तद्युगीन परिवेश में कैसे इसे 'स्टेटस सिम्बल' की तरह देखा जाता था उसका भी वर्णन किया है। लेखक ने ऐसे वर्ग की आलोचना भी की है जो समाज में व्याप्त समस्याओं की आलोचना करते हुए दिखाई देते हैं लेकिन खुद अंग्रेजी सभ्यता के आकर्षण में कैद हैं। 'बलिहारी बुद्धि' उपन्यास में गोपालराम गहमरी ने भारतीयों में अंग्रेजी सभ्यता के इस आकर्षण और उसके प्रभाव को जगह-जगह चित्रित किया है। उपन्यास के शुरुआत में ही बसावन जो विदेश से बैरिस्टर बनकर लौटा है और हरचरण जो रिश्ते में उसका चाचा लगता है के बीच संवाद में लेखक ने इस आकर्षण और उसके प्रभाव का वर्णन किया है। बसावन से मिलने पर हरचरण कहता है : "न बबुआ हम वह नहीं कहते। देखते नहीं जो विलायत से लौट कर आते हैं वे सब हिन्दुस्तान से तो अपने तंई अलग समझते ही हैं। घर द्वार, भाई बाप , माँ बहन सब से न्यारे होकर एक किनारे बंगले में बाबर्ची खानसामा सहित जा ठहरते हैं।...उनको अपने कुल, घर गाँव और देश की हवा में भी बदबू आने लगती है।"[32]

गोपालराम गहमरी ने इस मध्यवर्ग की आलोचना की है जो अपनी सुख-सुविधाओं पर ध्यान केन्द्रित किये हुए था। इस आत्मकेंद्रित वर्ग के अंग्रेजी सभ्यता के प्रति आकर्षण को उन्होंने अपने उपन्यासों में जगह-जगह चित्रित किया है। अपने विकास और पूँजी को लेकर आत्मकेंद्रित इस वर्ग की राजभक्ति की आलोचना भी लेखक ने अपने उपन्यासों में किया है। इस वर्ग की सुख-सुविधाओं के सामानांतर गरीबी, भूखमरी से मर रही भारतीय जनता का हवाला देते हुए लेखक ने इस वर्ग के ऐशोआराम की आलोचना की है। 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में लेखक सुकेत सिंह के घर का वर्णन करते हुए लिखते हैं : "नाभा हाउस बड़ा गुलजार है। बिलायती ठाट,

[32] .बलिहारी बुद्धि, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 1

बिलायती रंग-ढंग और समान से यह महल्ला बड़ा लकदक है । किसी मकान से पियानो की आवाज आती है । किसी ओर से हारमोनियम और डलसिटना की मनोहर ध्वनी कानों में अमृत छिड़कती है । किसी मकान के आगे का नजर बाग बसंत की शोभा दिखाता है । किसी मकान से मेम साहबों की पोशाक पहने बंगालिन युवतियाँ लेडी शू की खुरी पर अठिलाती आती हैं । किसी ओर से पंजाब रमणी आधी हिन्दुस्तानी आधी बिलायती पोशाक में कभी लजाती, कभी अकड़ती, कभी उतान होती हुई चली आती हैं । कहीं पहाड़ी सुंदरियाँ सोलहों आने स्वाधीन रूप में प्रसन्न बदन परिचितों से हावभाव करती चलती हैं । देखने से जान पड़ता है कि यह पहाड़ के ऊपर की बसी हुई बस्ती अभागे हिन्दुस्तान के रोग-शोक, दुःख-दरिद्र से परे मानो महादेव के त्रिशूल पर बसी है ।"[33] यहाँ पर लेखक ने एक तरफ गरीबी और भुखमरी से पीड़ित भारतीय जनता की बात की है तो वहीं एक ऐसे वर्ग का चित्रण किया है जो असल में अंग्रेजों के अंधानुकरण में भारतीय परिवेश और यहाँ की आम जनता से बिल्कुल कट चुके थे । गोपालराम गहमरी ने इस अंधानुकरण की सख्त आलोचना की है । देश के आम लोगों की दुर्दशा को ध्यान में रखते हुए इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए 'पत्नी' उपन्यास में चंदा, प्रताप से कहती है : "बड़े आदमी बनने की धुन और नये ठाट-बाट, नई रोशनी के उपभोग की भयंकर लालसा में जो डूबे हो । उस ठाट-बाट के आगे यह सुन्दर, बेदाग, निर्मल ग्राम्य जीवन तुम्हें कहाँ अच्छा लगेगा ! वह सब ठाठ-पसंदगी वहीं छोड़ आये बिना यहाँ की सादगी का आनंद मिल ही कहाँ सकता है ।"[34]

गोपालराम गहमरी अपने जासूसी उपन्यासों में इस भौतिक आकर्षण के प्रभाव में बदल रहे जीवनमूल्यों को भी रेखांकित करते हैं । भारतीय संस्कृति जो संयुक्त परिवार पर टिकी हुई थी अब टूट रही थी । सारे संबंध अर्थ-केंद्रित होते जा रहे थे । औपनिवेशिक शासन में पूंजीवाद के विकास के साथ हो रहे सामाजिक बदलाव को लक्ष्य करते हुए 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में लेखक 'तेलूराम' से कहलवाते हैं : "इस दुनिया में आकर मैंने देख लिया कि कोई किसी का नहीं

[33] . ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी , पृष्ठ:2-3
[34] .पत्नी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ: 95

है। माँ, बाप, भाई, भौजाई, बहन, बेटी कोई किसी का नहीं सब मतलब के साथी हैं। पिता को न मानो तुमको त्याग-पुत्र करके तुम्हारा मुँह तक नहीं देखेंगे, माता की सेवा न करो वह कहेंगी ऐसा कुपूत चूल्हे पड़े। भाई का मतलब सीधा हो गया वह आँख उठाकर तुम्हारी ओर देखेगा भी नहीं। बहन बेटी सब तुम्हारे पास कुछ है तब तक दुहने को तैयार हैं। मतलब यह है कि सब टके के साथी हैं।"[35] यह पूंजीवाद के विकास के साथ उद्भूत नवीन जीवनमूल्य थे जिसमें अर्थ की महत्ता बढ़ गई थी। अपराध के बढ़ने का भी यह एक प्रमुख कारण था।

पूंजीवाद के विकास को लेखक ने अपराध वृत्ति के बढ़ने का एक प्रमुख कारण माना है। लेखक ने यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि जहाँ-जहाँ पूंजीवाद का विकास हुआ वहाँ अपराध वृत्ति ज्यादा देखने को मिली है। वहीं सूदूर पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ आधुनिकता और पूंजीवाद का विकास उस तरह से नहीं हुआ था वहां अपराध का मूल कारण अंधविश्वास था। 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में एक पहाड़ी पात्र ठनठन गोपाल से कहता है : "अरे ऐसा क्या कहते हो। हम तो देखा है कि जो लोग शहर में रहते हैं वे लोग हम पहाड़ियों को जंगली जानवर कहकर घिनाते हैं। यह बात सही है कि हम लोग जंगली जानवर ही हैं लेकिन उन सभ्य भलेमानसों से बहुत अच्छे और सुखी हैं। भलेमानसों को तो देखा है कि जहाँ माल देखा मंडराते हुए पहुँच जाते हैं और अपना मतलब करके माल मारकर चल देते हैं। हम लोग उन कामों से बहुत दूर रहते हैं।"[36] इसी उपन्यास में आगे देखा जा सकता है कि अंधविश्वास के कारण लोग नर-बलि तक देने में नहीं हिचकते थे।

कहना न होगा कि गोपालराम गहमरी ने तद्युगीन समाज में पूंजीवाद के विकास के साथ अपराधवृत्ति को देखने का जो प्रयास किया है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अपराध को पूंजीवाद के साथ जोड़कर देखने का यह नजरिया बहुत से समाजशास्त्रीय चिंतकों का भी रहा है। गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में जो भी अपराधी वर्ग चित्रित हुआ है वे तद्युगीन

[35] . ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ:178-179
[36] .वही, पृष्ठ: 139

जमींदार वर्ग जो अंग्रेजी सरकार के शुभ-चिंतक मालूम होते हैं उन्हें अपना शिकार बनाते हैं । देखने का एक नजरिया यह भी हो सकता है कि क्या इस वर्ग को साम्राज्यवाद-विरोधी चरित्र के रूप में देखा जा सकता है ?

राजभक्ति का स्वरूप

1857 की क्रांति में मध्यवर्ग और व्यावसायिक वर्ग की भूमिका नहीं थी । लेकिन इसके बाद नवजागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन में इन वर्गों की केंद्रीय भूमिका रही । इस कालक्रम के बीच इस वर्ग-चरित्र में जो बदलाव दिखाई देता है वह यह है कि वे एक तरफ अंग्रेजी शासन की तारीफ करते हैं तो वहीं कुछ मुद्दों पर उनकी आलोचना भी करते हैं । नवजागरणकालीन चिंतकों ने इसे राजभक्ति-राष्ट्रभक्ति के सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया है । कहना न होगा कि "भारतीय नवजागरण का विकास राजतन्त्र और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की परिधि में विकसित हुआ । इसलिए भी उसके अपने अंतर्विरोध हैं । नवजागरण ने अनेक सामंती और सामाजिक रूढ़ियों का तो विरोध किया परन्तु जिस ढांचे के भीतर यह कार्य किया, यह उपनिवेशवादी व्याख्या के भीतर निर्मित हुआ था । फलतः उत्पन्न होने वाले नये अंतर्विरोध ही ब्रिटिश सत्ता के लिए हितकारी सिद्ध हुए ।"[37] ब्रिटिश साम्राज्यवाद की परिधि में विकसित नवजागरण में राजभक्ति को लेकर नामवर सिंह 'हिंदी नवजागरण की समस्याएँ' में लिखते हैं कि "देशभक्ति के साथ राजभक्ति नवजागरण का अभिन्न स्वर है – इतना अभिन्न कि इससे किसी प्रदेश और किसी भाषा का कोई भी लेखक अछूता नहीं है ।...सच तो यह है कि अधिकांश लेखक सुरक्षा, सुशासन, शिक्षा, उन्नति और शांति के लिए ब्रिटिशराज के प्रति उपकृत अनुभव करते हैं –विशेष रूप से मुगलों के शासन की तुलना में ।"[38] इतिहासकार सुधीर चन्द्र इस प्रवृत्ति को 'एम्बीवैलेंस' की संज्ञा देते हैं । यह प्रवृत्ति हिंदी नवजागरण में ही नहीं अपितु विभिन्न क्षेत्रों में भी दिखाई देती है

[37] .नवजागरण की इतिहास चेतना, प्रदीप सक्सेना (संपादक), पृष्ठ: 246
[38] . नामवर सिंह संकलित निबंध, नामवर सिंह, पृष्ठ :151

। विमलेश आनंद अंग्रेजी शासन की व्यवस्था, राजभक्ति और कुतूहलप्रधान साहित्य के संदर्भ पर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं : "चोर-डाकुओं से जन-जीवन को सुरक्षित करने की नीति तथा देश में रेल, डाक-तार के प्रचार ने इस देश की जनता को किस प्रकार अंग्रेजी-शासन भक्त बना डाला, इस बात के प्रमाण सारे कुतूहलप्रधान साहित्य में स्थान-स्थान पर मिलते हैं। गहमरी जी के उपन्यासों में तो इस प्रकार के प्रसंगों की खूब प्रचुरता है जिससे ज्ञात होता है कि अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा प्रताप इत्यादि की धाक अच्छी तरह से जन-साधारण के मन पर बैठ गई थी। जनता अपने शासकों से प्रसन्न थी।"[39]

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की आधार-भूमि अपराध और न्याय व्यवस्था पर ही टिकी हुई है। राजभक्ति और देशभक्ति का द्वंद्व इनके यहाँ भी देखने को मिलता है। इस दृष्टि से उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में सामाजिक सुधार को लेकर जिस प्रगतिशीलता का परिचय दिया है वह यहाँ नहीं दिखाई देता है। अपने समकालीनों की तरह वे भी ब्रिटिश सत्ता के सुशासन के पक्षधर हैं। इसे युगीन परिस्थितिजन्य अंतर्विरोध के रूप में देखा जा सकता है। उनके सभी उपन्यासों के जासूस ब्रिटिश प्रशासन के मातहत में काम करते हैं। उसकी आस्था ब्रिटिश प्रशासन और न्याय व्यवस्था में बहुत गहरी है। 'बलिहारी बुद्धि' उपन्यास में गोपालराम गहमरी ब्रिटिश सत्ता की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं : "यह उन दिनों का हाल है जब हमारे बड़े सम्राट सातवें एडवर्ड महाराज के दरबार की देश भर में तैयारी हो रही थी। भूत भारत प्रभू बड़े लाट लार्ड कर्जन बहादुर के हुक्म से हिंदुस्तान भर में नया ठाट, नया ढंग, नया रंग, नया साज और नये समान का युग चला था। ई, आई, रेलवे भी नये ढंग की बग्घी गाड़ी तैयार कर रही थी। दिल्ली में कारीगर नालकी सूरत में नये दरबार का मण्डप साज रहे थे।"[40] यहाँ हम देख सकते हैं कि तद्युगीन भारतीय समाज में ब्रिटिश हुकूमत के कारण आ रहे बदलावों को लेखक प्रशंसा भरी नजरों से देख रहा है। यह स्थिति आम लोगों की भी थी। जबकि ये सभी

[39] . हिन्दी के कुतूहलप्रधान उपन्यास, विमलेश आनंद, पृष्ठ : 187-188
[40] . बलिहारी बुद्धि, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 6

बदलाव और उद्योग साम्राज्यवादी ताकतों को बढ़ाने का एक जरिया था। गोपालराम गहमरी के जासूस नायक जो अपराध की खोजबीन में तत्पर दिखाई देते हैं वे ब्रिटिश प्रशासन के ही अंग हैं। वे अपनी राजभक्ति न केवल ब्रिटिश प्रशासन के प्रति दिखाते हैं अपितु समाज में भी ब्रिटिश प्रशासन की न्यायप्रियता का प्रचार करते हुए दिखाई देते हैं। लेखक ने अपने सभी जासूसी उपन्यासों में न्याय प्रशासन को मुस्तैद दिखाया है। प्रशासन की हायरार्की में काम कर रहे सभी अधिकारी तद्युगीन समाज में हो रहे चोरी, हत्या, डकैती जैसी घटनाओं के प्रति सचेत नजर आते हैं। जासूस नायक अपराध की तह तक जाता है और अपराधी को खोज निकालता है। उसके बाद तद्युगीन दंड संहिता के आधार पर उसे दंड दिया जाता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि ब्रिटिश शासन में अव्यवस्था फैलाने वाले अपराधियों और देश में शांति स्थापित कर साम्राज्यवाद का विस्तार करने के निमित्त प्रशासन बहुत ही कठोर हो चुकी थी।

स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव

स्वदेशी आंदोलन का जन्म सन् 1905 में बंगाल विभाजन के विरोध में हुआ था। लार्ड कर्जन ने बंगाल में राजनीतिक विरोध को खत्म करने के लिए यह कार्य किया था। यह एक सुनियोजित साम्राज्यवादी नीति थी जिसके अंतर्गत प्रांत में उभर रही राजनीतिक चेतना को नष्ट किया जा सके साथ ही इस विभाजन को धार्मिक आधार देकर सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया जा सके। लेकिन इस साम्राज्यवादी नीति के विरोध में आंदोलन खड़ा हुआ जिसमें विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुओं को प्रयोग में लाने पर जोर दिया गया था। यही इस आंदोलन का मूल उद्देश्य था। कहना न होगा कि भारत में ब्रिटिश राजनीति से स्वाधीनता की लड़ाई के दौरान यह आंदोलन भारतीय राष्ट्रवाद के एक अभिन्न अंग के रूप में विकसित हुआ था। यह आंदोलन अरविंद घोष, रबीन्द्रनाथ ठाकुर, लाला लाजपत राय, गोपाल कृष्ण गोखले और बाल गंगाधर तिलक जैसे क्रांतिकारियों के द्वारा विकसित किया गया था जिसने पूरे भारत में स्वाधीन चेतना का विस्तार किया। इस आंदोलन में नौजवानों और महिलाओं ने भी बढ़-चढ़

कर हिस्सा लिया था । आंदोलन के परिणामस्वरूप ही सन् 1905 से 1908 के बीच विदेशी आयात में भारी गिरावट आई । यही वह दौर था जब राजनीतिक फलक पर चरमपंथी राष्ट्रवाद का उदय हुआ ।

बीसवीं सदी के आरंभिककालीन हिंदी उपन्यासों और उसके बाद के हिंदी उपन्यासों में स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । इसका प्रभाव ऐसा था कि ब्रिटिश शासन प्रेस पर तरह-तरह के सेसरशिप लगाने लगे थे । माधवराव सप्रे 'स्वदेशी आंदोलन और बायकाट' शीर्षक निबंध को भी उस दौर में प्रतिबंधित कर दिया गया था । स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव के कारण विदेशी आयात के गिरने और आम जनमानस में स्वदेशी को लेकर जागृत चेतना का भाव दिखाई देता है । इस आंदोलन का प्रभाव साहित्य और कला के क्षेत्र में भी दिखाई देता है । गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में भी स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव जगह-जगह दिखाई देता है । स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव से आमजन की मानसिकता में आए बदलाव को लेखक ने अपने उपन्यासों में रेखांकित किया है । 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में लेखक ने स्वदेशी के प्रभाव और उसके कारण विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के प्रभाव को रेखांकित किया है । तेलूराम जिसका शिमला के माल रोड में कपड़े की बड़ी दूकान थी स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव के कारण उसके व्यापार पर हुए असर को रेखांकित करते हुए गोपालराम गहमरी लिखते हैं : "सरबूलाल उर्फ तेलूराम का शिमले के माल रोड में कपड़े की बहुत बड़ी दूकान थी । दूर-दूर से तरह-तरह के कपड़े मँगाकर खूब नफा उठा रहे थे । लेकिन जब से यशस्वी वाइसराय लार्ड कर्जन के प्रताप से स्वदेशी का प्रचार हुआ तब से बम्बई और मदरास वाले स्वदेशी की आड़ में कई गुना दाम चढ़ाकर उत्तरीय भारतवासियों से भाई-बन्दी अच्छी तरह भंजाने लगे । तौ भी देश के उत्साही दाम की परवा न करके देशी कपड़े पहनने लगे तब से सरबू का कारोबार ढीला पड़ गया । पूँजी टूट गयी ।"[41] स्वदेशी आंदोलन के कारण लोगों ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना शुरू कर दिया था । जिसके प्रभावस्वरूप विदेशी वस्तुओं के बेचने वाले व्यापारियों पर

[41] .ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 162

इसका गहरा प्रभाव पड़ा था। 'पत्नी' उपन्यास में भी गोपालराम गहमरी ने स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव को रेखांकित किया है। स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव के कारण ही प्रताप अपने ब्रांच ऑफिस का तबादला बनारस करवा लेता है। लेखक लिखता है : "उधर बम्बईवाली दूकान की दशा और देश में मेशिनरी की बाढ़, स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव सब समझकर जब प्रताप ने हेड आफ़िस अमेरिका को अपना प्रस्ताव भेजा तब मालिकों ने हर तरफ से प्रताप की बात मानकर बम्बई की ब्रांच बनारस में स्थापित करना खुशी से मंजूर किया।"[42]

कहना न होगा कि गोपालराम गहमरी अपने युगीन राजनीतिक चेतना और समसामयिकता के प्रति सजग थे। उन्होंने अपने उपन्यास अपराध को वर्ण्य-विषय बनाते हुए तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भों को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में तद्युगीन भारतीय इतिहास और बदलते जीवनमूल्यों की स्पष्ट झलक मिलती है।

<u>धार्मिक अंधविश्वास का चित्रण</u>

तद्युगीन भारतीय समाज अपने धार्मिक आग्रहों और विश्वास के कारण पिछड़ा हुआ था। साधु-संतो, ज्योतिष, शकुन-अपशकुन आदि में लोगों को काफी विश्वास था। इन्हीं धार्मिक आग्रहों के द्वारा उनका जीवन संचालित होता था। लोग अपने जीवन में होने वाले दुःख, हानि-लाभ आदि को लेकर भाग्यवादी थे। धार्मिक अंधविश्वास का प्रभाव ऐसा था कि लोग समाज सुधार के अंतर्गत होने कार्यों और आंदोलन को भी शक की नजर से देखते थे। अपने धार्मिक अंधविश्वास के कारण लोग छद्म साधु-संतो द्वारा ठगी के शिकार भी होते थे। गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में धार्मिक अंधविश्वास के कारण ठगी के शिकार हुए लोगों का वर्णन किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस धार्मिक अंधविश्वास के प्रति सचेत रहने के लिए भी प्रेरित किया है। उनके कई उपन्यासों और कहानियों में साधु द्वारा ठगी के शिकार हुए लोगों का

[42] . पत्नी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 45

वर्णन मिलता है। 'डबल बीबी' उपन्यास में गिरजा की सास पोते की इच्छा लिए साधु के पास जाती है जहाँ उसे ठगी का शिकार होना पड़ता है और बाद में वह अपने बेटे को दूसरे विवाह के लिए कलह करती हुई नजर आती है। गोपालराम गहमरी लिखते हैं : "पुत्र के लिये रामप्रसाद उतने लालायित नहीं थे जितनी उनकी माता ने इसके लिये देवी देव मनाये थे, कितने देवालयों और मंदिरों में नकदरियाँ की थीं, कितने झंडेरिये और ज्योतिषियों के पास ठगी गयी थी, गिरजा को कितने साधु, फकीर और सन्यासियों की खाक भभूत खिलायी थी, इसका हिसाब नहीं था लेकिन जब इतना करके भी कुछ फल नहीं हुआ तब माता का सब कोप पतोहू पर झड़ने लगा।"[43] 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में जिस बलि प्रथा का जिक्र आया है उसे भी इसी अंधविश्वास के अंतर्गत देखा जा सकता है। इसी उपन्यास में धार्मिक अंधविश्वास और अतार्किता की आलोचना करते हुए जासूस ठनठन गोपाल कहता है : "यह तो हमारे हिन्दुस्तान का दस्तूर है कि जहाँ नहीं जा सकते उसे बैकुण्ठ कहते हैं और जो अपने से नहीं हो सकता वाही दैव का किया हुआ मानते हैं। जो समझ में नहीं आता उसको जादू कहते हैं।"[44] इसी उपन्यास में यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार दुर्गावती पति का स्नेह पाने के लिए अपनी नौकरानी मूलिया के साथ बटुकनाथ नामक एक साधु के पास जाती है और साधु दुर्गावती पर डायन का असर बताकर उससे मोहरे ठग कर अगले दिन गायब हो जाता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि गोपालराम गहमरी ने किस प्रकार अपने उपन्यासों के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक अंधविश्वास का चित्रण किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से न केवल धार्मिक अंधविश्वास की आलोचना की है बल्कि ठगी का शिकार होते हुए आम भारतीय जनता को उनके धार्मिक अंधविश्वास के प्रति सचेत भी किया है। वैज्ञानिकता और तार्किकता को आधार बनाकर लिखे गए अपने उपन्यासों में गोपालराम गहमरी ने न केवल अपराधवृत्ति के प्रति सजग रहते हुए न्याय में आस्था दिखाने की कोशिश की

[43] .डबल बीबी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :4
[44] . ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 125

है बल्कि धार्मिक पूर्वाग्रह और अंधविश्वास के कारण जीवन में होने वाली समस्याओं के चित्रण के माध्यम से लोगों को जागृत करने का भी प्रयास किया है ।

मुस्लिम पात्र का चित्रण

हिंदी में उपन्यास लेखन का उदय उस दौर में हुआ जब भारत में पूरी तरह औपनिवेशिक सत्ता का गठन हो गया था । भारतीय समाज इस दौर में स्वाधीनता के साथ-साथ तद्युगीन समाज में व्याप्त कुरीतियों और धार्मिक-सांस्कृतिक संघर्षों के दौर से गुजर रहा था । विभिन्न समाज सुधार आंदोलनों के द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया जा रहा था और जनता को संगठित होने के लिए प्रेरित किया जा रहा था । इन सब को देखते हुए ब्रिटिश शासन ने अपनी साम्राज्यवादी विस्तार नीति के तहत 'फूट डालो, शासन करो' की नीति को अपनाई । उन्होंने धर्म के नाम पर हिन्दू और मुसलमानों के बीच अलगाव पैदा करने की कोशिश की जिसमें वे सफल भी हुए । इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म का सवाल भाषा का भी सवाल बन गया जिसने हिंदी और उर्दू के विवाद को जन्म दिया । वीरभारत तलवार इस पर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं : "19वीं सदी के नवजागरण में हुए हिंदू-मुस्लिम धार्मिक सुधार आंदोलनों की शुद्धतावादी और फंडामेंटलिस्ट किस्म की प्रवृत्तियों ने भी दोनों समुदायों के बीच अलगाव की भावना को बढ़ाया । पश्चिमोत्तर प्रांत में हिंदू भद्रवर्ग की अलगाव की भावना न सिर्फ हिंदी को संस्कृतनिष्ठ बनाकर उसे बोलचाल की जुबान से अलग और दूर करने के प्रयास में प्रकट हुई, बल्कि सीधे-सीधे मुस्लिम विरोध में भी प्रकट हुई ।"[45] यह विरोध साहित्य की विभिन्न विधाओं में भी प्रकट हुआ । इस विवाद को आधार प्रदान करने ने ब्रिटिश शासन की साम्राजवादी नीति कार्यरत थी । इस विवाद को "गिलक्राइस्ट से लेकर मोनियर, फैलन, बीम्स और ग्राउज जैसे

[45] .रस्साकशी, वीरभारत तलवार, पृष्ठ : 255

भाषाशास्त्रियों ने शास्त्रीय आधार प्रदान किया था लेकिन इसमें उग्रता नवजागरण काल के हिन्दू पुनरुत्थान से ही आई थी ।"[46]

इसका प्रभाव यह हुआ कि आरंभिक उपन्यासकारों में देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी जैसे उपन्यासकारों ने मुस्लिम पात्रों के चित्रण में उन्हें भ्रष्ट और षडयंत्रकारी दिखाने का खूब प्रयास किया । इस संदर्भ में गोपाल राय, किशोरीलाल गोस्वामी की रचनाओं पर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं : "हिन्दू गौरव की स्थापना के उत्साहातिरेक में गोस्वामी जी ने हिन्दू पात्रों की तुलना में मुसलमान पात्रों को नीच, खुदगर्ज, विश्वासघाती और चरित्रहीन रूप में प्रस्तुत किया है । मस्तानी को छोड़कर गोस्वामी जी के ऐतिहासिक रोमांसों का कोई भी मुसलमान पात्र, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री सच्चरित्र नहीं है । अकबर और दारा जैसे ऐतिहासिक पात्रों को भी, जिनके बारे में इतिहासकारों की धारणा ऊँची है, गोस्वामी जी ने कपटी, धूर्त, क्रूर और चरित्रहीन व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया है ।"[47] कहना न होगा कि देवकीनंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी जैसे उपन्यासकार हिन्दू पुनरुत्थानवादी विचार और ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के शिकार होते हुए नजर आते हैं । लेकिन गोपालराम गहमरी अपने मुस्लिम पात्रों के चित्रण में इस दृष्टि से सजग नजर आते हैं । जिस प्रकार भाषा संबंधी प्रश्न को लेकर सजग रहते हुए वे बोलचाल की हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग करते हैं उसी तरह मुस्लिम पात्रों को लेकर उनमें धार्मिक पूर्वाग्रह नहीं दिखाई देता है । वे इस मामले में तटस्थ दिखाई देते हैं । यह बात उनके द्वारा लिखे गए संस्मरण 'भाषा भूषण का संपादन' में भी दिखाई देता है । इस संस्मरण में सन् 1893 में बम्बई में हुए हिंदू-मुस्लिम के बीच सांप्रदायिक दंगे का वर्णन मिलता है । इस संस्मरण में एक प्रसंग आता है जब सेंसरशिप और दंगा भरकाने के आरोप में उन्हें गिरफ्तार किया जाता और एक ब्रिटिश अधिकारी के सामने बैठाकर सवाल पूछा जाता है । इसका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं : "सामने मेज पर 'भाषा भूषण' की कापी पड़ी थी । साहब

[46] .हिन्दी का नवजागरण काल एवं भाषा विवाद, श्रीश जैसवाल, पृष्ठ : 114
[47] .हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ : 83

ने उसका टाइटिल उलट कर पूछा 'यह तुम्हारा लिखा है ?' मैंने 'हाँ' कहा। साहब ने कहा- तुमने मदनपुरा के मुसलमानों को कसाई लिखा है ?' मैंने कहा- जी हाँ, मदनपुरा के मुसलमानों को कसाई और ठाकुरद्वार के हिन्दुओं को हत्यारा लिखा है। मदनपुरा की घटना वाली लाइन पर लाल पेंसिल का निशान था। साहब ने चौंककर कहा- क्यों ? ठाकुरद्वार के हिन्दुओं को हत्यारा लिखा है ! हमको क्यों नहीं दिखलाया गया।"[48] इस संस्मरण जिस तटस्थता का परिचय गोपालराम गहमरी देते हैं कमोबेश यही तटस्थता अपने जासूसी उपन्यासों मुस्लिम पात्रों के चित्रण में बरतते हैं।

'गुप्तकथा' शीर्षक लघु उपन्यास (जिसे लंबी कहानी भी कहा जा सकता है) में गोपालराम गहमरी ने 'चिराग अली' नामक एक मुस्लिम पात्र को कथा का नायक बनाया है। चिराग अली के बारे में टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है : "चिराग अली के महल में सदा आदमियों की भीड़ रहती थी। अपने परिवार में तो चिराग को अपनी बीबी, बेटे, बेटे की बीबी और कुछ छोटे-छोटे बच्चों के सिवाय और कोई नहीं थे किंतु धन होने पर जगत में मीत भी खूब बढ़ जाते हैं, इसी कारण चिराग के घर में खचाखच आदमी भर गए थे। उनमें बाप-बेटे के नौकर-चाकर, स्त्रियों की दासी और बहुत से ऐसे नर-नारी का समागम था जो धनहीन होने के कारण चिराग अली के साए में आ गए थे। चिराग अली अपने घर ही आए हुए गरीबों को नहीं पालते थे बल्कि बाहर भी अनेक दुःखी-दरिद्र लोगों का पेट भरते थे। इन सब बातों को कहने के बदले इतना ही ठीक होगा कि चिराग अली जैसे गंभीर मिलनसार और सबसे मीठे बोलनेवाले थे वैसे ही दानी भी खूब थे। दया से उनका हृदय भरा पूरा था।"[49] गोपालराम गहमरी मुस्लिम पात्रों के चित्रण में तद्युगीन दुराग्रह या पूर्वाग्रह से संचालित होते हुए नजर नहीं आते हैं। 'मायावी' उपन्यास में मुस्लिम स्त्री पात्र 'कुलसम' जासूस अरिंदम को फूलसाहब द्वारा दिए गए जहरीले चुरुट का भेद बताकर उसकी जान बचाती है। उसी तरह 'जासूस की डाली' उपन्यास

[48] .हिंदी के पहले जासूसी कथाकार गोपालराम गहमरी के संस्मरण, संजय कृष्ण (संपादक), पृष्ठ : 34
[49] .गोपालराम गहमरी की प्रसिद्ध जासूसी कहानियाँ, संजय कृष्ण (संपादन), पृष्ठ :22

का नायक मुहम्मद सरवर जासूस है । कहना न होगा कि गोपालराम गहमरी ने अपराध की प्रक्रिया और प्रवृत्ति को तद्युगीन सामाजिक संरचना में समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से देखने की कोशिश की है । किसी भी विशेष संप्रदाय या जाति विशेष में अपराध को न देखते हुए उन्होंने यह दिखाने की कोशिश की है आपराधिक प्रवृत्ति किसी भी वर्ग, जाति और संप्रदाय के लोगों में हो सकती है ।

इस तरह हम देख सकते हैं कि आरंभिक हिंदी आलोचना की विकसित धारा में गोपालराम गहमरी की रचनाओं को मनोरंजन-प्रधान कहकर साहित्यिक-कोटि से बाहर कर दिया गया और इसी शुद्धतावादी विचार के कारण आगे भी उनकी रचनाओं का विश्लेषण संभव नहीं हो पाया । जबकि इनके जासूसी उपन्यास तद्युगीन औपनिवेशिक परिवेश की ही उपज हैं । पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ जिस तरह से अपराधवृत्ति बढ़ रही थी उसे ही गोपालराम गहमरी ने अपने जासूसी उपन्यासों का वर्ण्य-विषय बनाया । प्रेस तकनीक के विकास और सस्ती लिथोग्राफ़ी के चलन ने इस तरह के उपन्यासों के विक्रय और लोकप्रियता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । बौद्धिकता और तार्किकता के आधार पर गोपालराम गहमरी ने जिस तरह से अपने जासूसी उपन्यासों की रचना की उसे हिंदी उपन्यास में यथार्थवाद के आरंभिक चरण के अंतर्गत देखा जा सकता है । उन्होंने न केवल कल्पना के घटना-वैचित्र्य से पाठकों को निकाला अपितु तद्युगीन समाज में हो रहे अपराध के मूल कारणों की भी पड़ताल की । वे तद्युगीन समाज में व्याप्त विसंगतियों को लेकर अपने समकालीन रचनाकारों में ज्यादा मुखर नजर आते है । प्रश्न चाहे स्त्री-शिक्षा को लेकर हो, विधवा-विवाह को लेकर हो, बाल-विवाह को लेकर हो या फिर बहु-विवाह को लेकर उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से अपनी प्रगतिशीलता की तरफ ध्यान खींचा है । उनके सुशिक्षित स्त्री-पात्र अपने अधिकारों के प्रति जागरूक दिखाई पड़ते हैं । कहीं-कहीं उन्होंने अच्छी-बुरी स्त्रियों को बाइनरी के रूप में भी देखा है जो तद्युगीन पुनरुत्थानवादी नजरिए से प्रेरित था लेकिन इसे छोड़ दें तो उन्होंने बहुत हद तक स्त्री-प्रश्नों और उनकी समस्याओं के प्रति न्याय किया है । पितृसत्तात्मक संरचना की विसंगतियों को चित्रित करते

उन्होंने ऐसे पुरुष-वर्ग का भी चित्रण किया है जो आधुनिक विचारों से लैस हैं । वे स्त्री-प्रश्न को लेकर मुखर हैं । समाज में व्याप्त कुरीतियों की आलोचना करते हुए नजर आते हैं । तद्युगीन समाज में व्याप्त अंग्रेजी सभ्यता के प्रति आकर्षण और पूंजीवाद की उन्होंने आलोचना की है । उन्होंने औपनिवेशिक परिवेश में बदल रहे जीवनमूल्यों को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है । राजभक्ति और देशभक्ति का अंतर्द्वंद्व जो तद्युगीन भारतीय समाज चिंतकों और साहित्यकारों में दिखता है उसे भी उन्होंने अपने जासूस पात्रों के माध्यम से बखूबी दिखाया है । ब्रिटिश प्रशासन के मातहत में कार्य करने वाले ये जासूस ही नहीं बल्कि तद्युगीन भारतीय समाज भी किस तरह से ब्रिटिश न्याय व्यवस्था और विकास के हिमायती हो रहे थे उसे गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में चित्रित करने की सफल कोशिश की है । स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव और उसके कारण देश में विकसित हो रही स्वाधीन चेतना को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में रेखांकित किया है । धार्मिक अंधविश्वास के कारण किस तरह लोग ठगी के शिकार होते थे और यह मानसिकता किस तरह समाज-सुधार में बाधा बन रही थी उसे भी उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है । साम्राज्यवादी कूटनीति के तहत जिस तरह साम्प्रदायिकता का उदय हुआ था और भाषा का प्रश्न जिस तरह धार्मिक प्रश्न बन गया था वैसे माहौल में गोपालराम गहमरी साम्राज्यवादी कूटनीति में न फँसते हुए मुस्लिम वर्ग के चित्रण में तटस्थ दिखाई पड़ते हैं और अपने समकालीनों से आगे खड़े हो जाते हैं । यहाँ उनकी प्रगतिशीलता देखते बनती है । उन्होंने अपराध को किसी खास वर्ग, संप्रदाय और जाति से जोड़कर नहीं देखा है । अपराध को वे जिस समाजशास्त्रीय नजरिए से देखते हैं वह सराहनीय है । अपने उपन्यासों में उन्होंने नीतिपरकता और उपदेशात्मकता का भी विशेष ख्याल रखा है । उनके जासूसी उपन्यासों में तद्युगीन भारतीय समाज अपने यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है । हिंदी साहित्य जगत में उनका योगदान केवल इतना भर नहीं है कि उन्होंने जासूसी उपन्यासों की नींव रखी बल्कि वे इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि उन्होंने हिंदी भाषा के विकास और उपन्यास के विकास में भी अहम् भूमिका निभाई । तद्युगीन पाठकों को जिस तरह से उन्होंने

गद्य की नवीन विधा उपन्यास के साथ जोड़ा वह सराहनीय है । उनके उपन्यासों में तद्युगीन नवजागरण और समाज सुधार आंदोलनों का प्रभाव दिखता है ।

अगले अध्याय में गोपालराम के जासूसी उपन्यासों के शिल्प-वैशिष्ट्य का विवेचन और विश्लेषण किया जाएगा । यहाँ यह देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि किस तरह गोपालराम गहमरी उपन्यास की संरचना को साधते हैं । यह भी देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि उपन्यास के पश्चिमी शिल्प और भारतीय आख्यान परंपरा के समिश्रित रूप को किस तरह से उन्होंने अपने उपन्यासों में संयोजित किया है ।

अध्याय: चार

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास: शिल्पगत वैशिष्ट्य

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिन्दी गद्य साहित्य और खड़ी बोली के आरंभिक विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हिन्दी उपन्यासों का उद्भव इसी काल में हुआ। इस काल तक आते-आते देश की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों ने उपन्यासों के उद्भव एवं विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया था। राजनीतिक दृष्टि से यह काल अपना विशेष महत्त्व रखता है।

हिन्दी में प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास की प्रसिद्धि के दो मुख्य आधार हैं- एक नीतिपरक सामाजिकता तथा दूसरा मनोरंजन की प्रधानता। ऐय्यारी, तिलस्मी एवं जासूसी प्रकार के उपन्यास शुद्ध रूप से मनोरंजन की प्रवृत्ति पर आधारित थे। शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास इस युग में बहुत कम लिखे गए। सामाजिक जागरण की प्रेरणा से युक्त उपन्यास उपदेश प्रधान और सुधारवादी थे। इनमें से कुछ उपन्यास सनातन धर्म की परम्परा के पोषण में प्रवृत्त थे और कुछ नवीन बौद्धिक जागरण के समर्थक नये सुधारों का समर्थन कर रहे थे। मनोरंजन का तत्त्व न्यूनाधिक प्रत्येक युग के कथा साहित्य का प्रेरक होता है। इस दृष्टि से सामाजिक जागरूकता से युक्त उपन्यास भी मनोरंजन के तत्त्व से शून्य नहीं थे और मनोरंजन प्रधान उपन्यास भी तद्युगीन सामजिक संरचना और युगीन मूल्यों से बिल्कुल कटे हुए नहीं थे । प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास में परिवर्तित होते हुए भारतीय समाज के विभिन्न रूपों का प्रतिबिंब दिखाई देता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक कारणों से जनता की सामाजिक दशा, नैतिक भावना, धार्मिक विश्वास और मानव मूल्यों में हो रहे सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप नई स्थितियाँ उत्पन्न हुई। उनका प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर भी लक्षित होता है।

प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास साहित्य शिल्प की दृष्टि से अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। इसलिए उसमें प्रयोगात्मक एवं अनगढ़ शिल्प का बोलबाला था। तद्युगीन उपन्यास में शिल्पविधि के सभी तत्त्व अविकसित और अनगढ़ रूप में दिखाई पड़ते हैं। कहना न होगा कि

हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों का शिल्प किसी सैद्धांतिक नियमों के आधार पर परखा नहीं जा सकता। आरंभिक अवस्था में किसी विधा के सैद्धांतिक नियम निर्धारित नहीं हो पाते और इसी कारण उसके मूल्यांकन के मानदंड भी निश्चित नहीं होते हैं । हिन्दी के आरंभिक उपन्यास साहित्य के संबंध में भी यह सत्य है । प्रेमचंद-पूर्व हिंदी उपन्यासों में एक निश्चित दृष्टिकोण के अभाव के कारण शिल्प की कोई सुनिश्चित रूपरेखा दृष्टिगत नहीं होती है । वस्तुतः आरंभिक उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकासक्रम की पहली कड़ी है। तद्युगीन परिस्थितियों के आलोक में तथा रचनात्मक उद्देश्य की पृष्ठभूमि में यदि इन उपन्यासों का मूल्यांकन किया जाए तो इनका अपना महत्त्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

देवकीनंदन खत्री और तद्युगीन मनोरंजन प्रधान उपन्यास पर बात करते हुए मधुरेश लिखते हैं- “कोई भी सार्थक समझी जानेवाली आलोचना सामाजिक शक्तियों के द्वंद्व की उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सकती है । परंतु उसके साथ ही, आलोचना की एक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी यह भी है कि अपनी परंपरा को वह समुचित ऐतिहासिक संदर्भों में पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विश्लेषित करने का जोखिम भी उठाए ।”[1] कहना न होगा कि जिसे मनोरंजन प्रधान उपन्यास की श्रेणी में रखकर साहित्यालोचकों ने पूर्णतावादी वैचारिकी का परिचय दिया उससे इन उपन्यासों का मूल्यांकन संभव नहीं है । निर्मला जैन लिखती हैं - “आलोचक सबसे पहले पाठक होता है और पाठक होने के बाद उसकी पहली- प्रतिक्रिया यह नहीं होती की इसमें क्या है? पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि उसको पसंद आयी या नहीं। पहली प्रतिक्रिया पसंदगी और नापसंदगी की होती है ।”[2] तात्पर्य यह है कि विश्लेषण की प्रक्रिया इसके बाद होती है । इसके लिए रचना के विविध पाठ की आवश्यकता होती है । लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के भारतीय समाज खासकर हिंदी पट्टी की बात करें तो हम देख सकते हैं कि इस काल में साक्षरता

[1]. देवकीनंदन खत्री (मोनोग्राफ), मधुरेश, भूमिका से उद्धृत

[2] .रचना और आलोचना का दायित्व (लेख), निर्मला जैन, कथालोचना का दृश्य-परिदृश्य, हरिमोहन शर्मा, विनोद तिवारी (संपादक), पृष्ठ :179-180

की कमी थी और औपनिवेशिक सत्ता अपनी जड़े जमा चुकी थी। हिंदी समाज अपने अंतर्विरोध और आत्महीनता से जुड़ा हुआ था । यह समाज लोक जागरण और स्वप्न के बीच में पड़ा हुआ था । ऐसे माहौल में तिलस्मी-ऐयारी और जासूसी प्रधान साहित्य को विकसित होने का अवसर प्रदान किया। इस तरह के मनोरंजन प्रधान उपन्यास मनोसामाजिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का ही प्रतिफलन है । जो अपने अनगढ़ शिल्प और तद्युगीन मूल्यों के साथ लोकोन्मुख भाषा-शैली में पाठकों के बीच खूब लोकप्रिय हुए ।

गौरतलब है कि इन उपन्यासों की मूल प्रवृत्ति किसी न किसी रूप में उपदेश देने की रही है। यह प्रवृत्ति न केवल शिक्षाप्रद उपन्यासों में बल्कि मनोरंजन प्रधान तिलस्मी एवं जासूसी उपन्यासों में भी दिखाई देती है। नीतिवाक्यों एवं उपदेशों अथवा कौतूहल जनक घटनाओं पर आधारित ये उपन्यास नीति, शिक्षा और मनोरंजन का लक्ष्य साधकर चलते हैं। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों में उद्देश्य पक्ष के समान ही कथा-शिल्प भी अनगढ़, अप्रौढ़ एवं फार्मूलाबद्ध है। कथावस्तु में उपन्यासकार ने अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के अनुसार कथा का गठन एवं विकास किया है। जासूसी उपन्यासों में लेखक ऐसी घटनाओं का निर्माण करता है कि कथासूत्र विलक्षण ढंग से एक दूसरे में गूंथे होकर भी उलझे हुए प्रतीत नहीं होते। इसमें कथा के आरंभ में पाठक को अनोखी रोमांचकारी घटनाओं से रोमांचित कर अंत में उस रहस्य से परिचित करा दिया जाता है। लेखक स्वयं ही रहस्य का सृजन करता है और स्वयं ही उसका उद्घाटन करता है। कथा उसी के अनुसार विकसित होती है। प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों की मुख्य विशेषता उनका घटना प्रधान होना है। घटना-चमत्कार के माध्यम से उन्होंने या तो मात्र मनोरंजन किया या उपदेश देना चाहा है। इन उपन्यासों के लेखन की बात करें तो हम देख सकते हैं कि लेखक सनसनी पैदा करने वाली, कौतूहलवर्द्धन करने वाली या किसी विशेष सुधारवादी, उपदेशात्मक अंत तक पाठक को पहुंचाने वाली घटनाओं को फार्मूलाबद्ध तरीके से संगठित करता चलता है। गौरतलब

है कि इस प्रकार के घटना-संयोजन में कथानक का स्वाभाविक प्रवाह तथा पात्रों का सहज विकास सुरक्षित नहीं रह पाता। घटनाओं की संभाव्यता-असंभाव्यता और चरित्र-चित्रण पर भी लेखक का बहुत कम ध्यान रहता है। इसी आलोक में गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों के शिल्प वैशिष्ट्य को देखना महत्त्वपूर्ण होगा ।

4.1.कथावस्तु और कथानक :

कथावस्तु और कथानक उपन्यास का प्रमुख तत्त्व है । कथावस्तु और कथानक घटनाओं का संयोजन मात्र नहीं होता है । उपन्यास का एक वर्ण्य विषय होता है जो कथावस्तु कहलाता है । "उपन्यास में अन्य साहित्य विधाओं की अपेक्षा कथावस्तु का अधिक महत्त्व होता है क्योंकि इसी के अनुरूप अपने शिल्प को ढालकर उपन्यासकार इसके माध्यम से ही अपना संदेश देने की ओर प्रवृत्त होता है ।"[3] कहने का तात्पर्य यह है कि कथावस्तु वह सामग्री है जिसे कथाकार जीवन के विस्तृत क्षेत्र से अपनी रुचि और दृष्टि के अनुसार चुनता है । वही सामग्री जब चरित्र, क्रिया-व्यापार और घटनाओं के सुगठित संयोजन के साथ निरूपित होता है तब वह कथानक कहलाता है । गोपालराम गहमरी के सभी जासूसी उपन्यासों का वर्ण्य विषय किसी न किसी अपराध से जुड़ा हुआ है । लेखक अपने उपन्यास में तत्कालीन समाज में घटित होने वाली लूट, डकैती, हत्या, चोरी आदि को अपना वर्ण्य विषय बनाता है और इसी के अंतर्गत तत्कालीन समाज के वर्ग-संघर्ष और जीवनमूल्यों को विभिन्न कार्य-व्यापार और चरित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । जासूसी उपन्यासों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कथानक बहुत ही स्वाभाविक और यथार्थवादी हो साथ ही कथा की उलझनें स्वाभाविक ढंग से सुलझती चली जाए । पाठक का कौतूहल घटना के साथ-साथ बढ़ता जाए और अंत में पूरा रहस्य प्रकट होने पर रोमांच और आनंद की अनुभूति हो । यहाँ यह महत्त्वपूर्ण होता है कि उपन्यास पाठक को घटना के कार्यव्यापार के साथ बांध कर रख सके । जासूसी उपन्यास के कथानक पर बात करते हुए

[3] . हिंदी के कुतूहलप्रधान उपन्यास ,विमलेश आनंद, पृष्ठ : 67

विमलेश आनंद लिखते हैं : "जासूसी उपन्यास में लेखक कुतूहल की वृद्धि के लिए सर्वप्रथम संघर्ष की स्थापना कर किसी रहस्य को प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि से उनका कथागत शिल्प ऐय्यारी व तिलस्मी उपन्यासों से भिन्न है। ऐय्यारी व तिलस्मी उपन्यासों में घटनाक्रम आगे की ओर बढ़ता है किन्तु जासूसी उपन्यासों में घटनाक्रम इसके ठीक विरुद्ध होता है। उपन्यासकार सबसे पहले अंत में घटी हत्या अथवा डाके की रोमांचक घटना प्रस्तुत करता है, फिर जासूस अपराध होने के समय की घटनाओं व परिस्थितियों का सूत्र लेकर अपराध से पहले होने वाली घटनाओं व परिस्थितियों का अन्वेषण व विवेचन प्रारंभ करता है। घटना की रहस्यमयता और जासूस की विश्लेषण पद्धति की रोचकता अनायास ही पाठक का कुतूहल जाग्रत कर उसके सारे ध्यान को अपने में केन्द्रित कर लेती है।"[4]

गोपालराम गहमरी भी अपने जासूसी उपन्यासों में इसी पद्धति को अपनाते हैं। अपने अधिकांश उपन्यासों के प्रारंभ में उन्होंने चोरी, हत्या या डकैती हो जाने पर घटना के भुक्तभोगी व्यक्ति द्वारा जासूस को सूचना देने के साथ उपन्यास की शुरुआत करते हैं या फिर किसी चोर या डाकू के गिरफ्तार और भाग जाने से इसकी शुरुआत करते हैं। इस दृष्टि से 'दो बहनें, 'खूनी की रिहाई', 'हंसा देवी', 'झंडा डाकू', 'मायावी', 'जासूस की डाली', 'हंसराज की डायरी', 'ठनठन गोपाल', 'गेरुआ बाबा' आदि को देख सकते हैं। गोपालराम गहमरी कई बार रहस्यमय और संदेहजनक वातावरण का निर्माण करते हुए भी उपन्यास की शुरुआत करते हैं। 'ठनठन गोपाल' उपन्यास की शुरुआत संवाद के माध्यम से कुछ इस तरह होती है : "'सरकार घंटी बोलती है घंटी" कहकर बेनियाँ ने अपने मालिक ठनठन गोपाल को खबर दी। जासूस ठनठन गोपाल बिछौने से उठकर प्रातः क्रिया से निबटने पर हाथ-मुँह धो रहे थे। पानी भरा लोटा वहीं ढरका कर दौड़ पड़े। टेलीफोन का चोंगा कान में लगाकर पूछा- 'कौन है?' उधर से जवाब मिला 'बारबर्टन'। जिन दिनों की बात हम कहते हैं उन दिनों बारबर्टन साहेब शिमला पुलीस के

[4] . वही, पृष्ठ :69

सुपरिटेंडेंट थे । नाम सुनते ही ठनठन ने कहा – 'क्या हुआ?' 'फौरन लोवर बाजार शाहजहाँ होटल चलो हम भी आटा है ।'"[5]

कहना न होगा कि इस प्रकार की शिल्प-विधि जासूसी उपन्यासों के लिए उपयुक्त होता है । यहाँ पाठक अपराधी की प्रमाणिकता के विषय में अनुमान लगाता रहता है और लेखक को रहस्य और रोमांच की निर्मिती में सहायता मिल जाती है । "गहमरी जी ने इस शिल्प-विधि का प्रयोग दूसरे उद्देश्य से किया है । उन्होंने पाठक को भुलावा देने के लिए इस ढंग के घटना-संघठन का आश्रय लिया है । उदाहरण के लिए 'कपट-रूप वाला' नामक उपन्यास में लेखक ने पहले मरियम और उसके पति का प्रगाढ़ प्रेम दिखलाया है, उनके सुखी व प्रेम-पूर्ण जीवन का चित्र खींचा है और तब एकाएक मरियम की हत्या हो जाती है और पति के प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण पाठक की संदेह दृष्टि पति की ओर जाती ही नहीं है ।"[6]

कथानक की दृष्टि से जासूसी उपन्यासों का आरम्भ जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्वपूर्ण है कथा का मध्य और अंत । लेखक कथानक के घटना-व्यापार में सुनियोजित तरीके से रहस्य को बनाए रखता है जिससे रोचकता बनी रहती है और पाठक उपन्यास के साथ बंधा हुआ महसूस करता है । इस तरह का कार्य-व्यापार पाठक को अपनी बुद्धि कौशल के साथ अपराधी तक पहुँचने का भी पर्याप्त अवसर देता है । पाठक अपनी बैद्धिकता के साथ अपराधी का अनुमान लगाने में खुद को व्यस्त पाता है । "जासूसी उपन्यास के मध्य में लेखक जासूस व उसके माध्यम से पाठक के समक्ष दिशा विभ्रम उपस्थित करने वाले बहुत से सूत्र प्रस्तुत करके, जासूस को कुछ अत्यंत तर्कसंगत निष्कर्षों के द्वारा सही दिशा ग्रहण करते हुए दिखाता है ।"[7] 'मायावी' उपन्यास में गोपालराम गहमरी तमीजुद्दीन की लड़की कुलसम के द्वारा अपराधी तक पहुँचने का तर्कसंगत सूत्र प्रस्तुत करते हैं । जब जासूस अरिंदम अपराधी फूलसाहब द्वारा दिया गया

[5] .ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :1
[6] .हिंदी के कुतूहलप्रधान उपन्यास ,विमलेश आनंद, पृष्ठ : 70
[7] .वही, पृष्ठ :72

जहरीला चुरुट धोखे से पी लेते हैं तब कुलसम की बौद्धिकता से ही जासूस अरिंदम की जान बचती है और कथा आगे बढ़ती है । गोपालराम गहमरी के सभी जासूसी उपन्यासों का अंत सुखांत ही है । अंत में लेखक सभी रहस्यों से पर्दा उठा देता है और अपराधी को गिरफ्तार कर लिया जाता है । गौरतलब है कि गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में विषयाधिक्य नहीं मिलता है । इनके प्रायः सभी उपन्यास प्रारंभ में रहस्य और रोमांच की उत्तरोत्तर वृद्धि करने वाले और अंत में उस रहस्य को खोलने वाले हैं । कहना न होगा कि यह संयोजन सायास ही है क्योंकि अनावश्यक घटनाओं को स्थान देने और विषयाधिक्य के कारण रहस्य और रोमांच के सृजन में बाधा उत्पन्न होती है । जासूसी उपन्यास यथार्थ की धरातल पर टिका होता है इसलिए यहाँ पर कार्य-कारण संबंध को स्पष्ट करना महत्त्वपूर्ण होता है । अतः लेखक के पास विषयाधिक्य के लिए पर्याप्त अवकाश नहीं होता है ।

4.2. चरित्र-चित्रण:

पात्र और उसका चरित्र-चित्रण उपन्यास का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है । हर उपन्यास में वर्ण्य-विषय के अनुसार मनुष्य जीवन की घटनाएँ, उनकी समस्याएँ, पृष्ठभूमि, मानसिकता आदि का गठन होता है । पात्रों का उपस्थापन और चित्रण इन्हीं प्रसंगों को ध्यान में रखकर की जाती है जिससे चरित्र में विश्वसनीयता पैदा होती है । लेखक अपने युगीन परिवेश और जीवनमूल्यों के अनुसार चरित्र की सृष्टि करता है और उसमें मनुष्योचित गुण-अवगुण का समावेश कर उसका विकास करता है । गोपालराम गहमरी के पात्रों को तीन भागों में बाँट कर देखा जा सकता है –

1.जासूस वर्ग

2.अपराधी वर्ग

3. अन्य पात्र

पात्र उपन्यास की कथावस्तु का सर्वाधिक सक्रिय और महत्त्वपूर्ण अंग है और पात्रों का चरित्र उपन्यास की सारी गति व प्रकृति को प्रभावित करता है । गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यास में पात्र और उसके चरित्र-चित्रण को वर्ण्य विषय और तद्युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर ही चित्रित किया है । उन्होंने तद्युगीन जीवन मूल्यों, परिस्थितियों और सामाजिक संरचना के भीतर ही चरित्रों की निर्मिती की है । "इनके पात्रों में मानवीय और दानवीय दोनों वृत्तियों वाले पात्र हैं । उनके साहस निर्भीकता तथा घटना चक्र में फंसने-फंसाने आदि के ही विवरण इनकी रचनाओं में हैं । इनकी मौलिक और अनूदित दोनों ही रचनाओं में भारतीय गृहस्थ जीवन का चित्रण किया गया है । युग की प्रचलित आदर्श और उदेशात्मक प्रणाली से लेखक अलिप्त नहीं रह सका है । जासूसी उपन्यासों में नारी चरित्रों में हिन्दू मर्यादा की भावना का इन्होंने चित्रण किया है ।"[8] इनके जासूस पात्र भी आदर्श गृहस्थ जीवन की मान्यताओं को मानने वाले हैं । इनके जासूस पात्र अपने साहस और सूझबूझ के द्वारा अपराधी की खोज करते हैं । यहाँ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का अभाव मिलता है । ज्ञानचंद जैन गोपालराम गहमरी कृत उपन्यास 'मुहम्मद सरवर की जासूसी' के जासूस के बारे में लिखते हैं : "यह उनका जीवन से लिया गया सबसे जीवंत जासूस पात्र है । मुहम्मद सरवर मध्यप्रदेश में खुफिया विभाग के एक अधिकारी थे । कर्त्तव्यपरायण और ईमानदार होने के साथ उनके चरित्र में दो विशेषताएँ और थीं । अगर दुश्मन में भी कोई गुण होता तो वह उसकी बड़ाई करते थे । दूसरे पुलिस महकमे में अपने से छोटे अथवा मातहत रह चुके पुलिसकर्मियों के साथ बिरादराना बराबरी का बर्ताव करते थे ।"[9] 'झंडा डाकू' उपन्यास में जासूस रोशन सिंह का चरित्र भी आदर्श चरित्र है । वह कहता है : "वचन देकर भंग करने के समान पातक दूसरा नहीं है । मनुष्यत्व की अवहेलना करना कर्त्तव्य नहीं ।"[10] कहना न होगा कि गोपालराम गहमरी के सभी जासूस उनके उपन्यास

[8] .हिंदी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यास, कृष्णा मजीठिया, पृष्ठ : 102
[9] .प्रेमचन्द-पूर्व के हिंदी उपन्यास, ज्ञानचंद जैन, पृष्ठ : 169
[10] .झंडा डाकू, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 76

के नायक हैं। वह तद्युगीन आदर्श जीवनमूल्यों से संचालित है। वह भाग्यबल और कर्त्तव्य दोनों को साथ मानता हुआ चलता है।

गोपालराम गहमरी के जासूसी पात्र बुद्धि कौशल से जहाँ अपराध को सुलझाने की कोशिश करते हैं वहीं उसमें स्वाभाविक मनुष्योचित भावुकता भी है। यही कारण है कि उनके जासूसी पात्र जीवन के निकट जान पड़ते हैं। 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में जब ठनठन गोपाल 'हरदेवी' की तस्वीर देखता है तो वह उसकी सुंदरता पर मोहित हो जाता है। इसका वर्णन करते हुए लेखक लिखता है : "तस्वीर देखकर ठनठन देवता तो मानों उसी में तन्मय हो रहे। कहाँ पुलिस के जासूस होकर मामले की तहकीकात को आये कहाँ कई मिनट तक तस्वीर ही ताकते रह गये। उस कर्तव्य बुद्धि कुशल रूखे जासूस का यह सुकुमार कोमल भाव बड़ी बेढब बात हुई।"[11] गोपालराम गहमरी जासूस के स्वाभाविक और विश्वसनीय रूप के प्रति सतर्क जान पड़ते हैं। इसलिए इनके जासूस गलतियाँ भी करते हैं, द्वंद्व की स्थिति में भी मिलते हैं लेकिन अपनी बौद्धिकता और साहस के बल पर अपराधी को पकड़ने में कामयाब होते हैं। जासूसी उपन्यासों में जासूस का वेश बदलकर खोजबीन करना सामान्य बात है। गोपालराम गहमरी के जासूस भी इसमें माहिर हैं। 'जासूस की डाली' उपन्यास में जासूस साँवल सिंह के वेश बदलने का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं : "सांवल सिंह ने रसिया का रूप बनाया। सिर पर बालों टेढ़ी पाटी पार ली, दाढ़ी भी नकली लगा ली, क़मीज़ पर सुलतानी बनात का पारसी कोट पहना और साँप की केंचुल-सरीखी सोने की जंजीर लगाई। रेशमी किनारे की महेश्वरी धोती पहनकर, मोज़े के ऊपर डासन का स्प्रिंगदार शू कसा और हाथ में बेत की बघमुही लपलपाती छड़ी लेकर चल पड़े। चलते वक़्त जेब में एक पाँचनला पिस्तौल डाल लिया।"[12] जासूसी उपन्यासों में छद्मवेशधारी पात्र दिखाई देते हैं। इस दृष्टि से गोपालराम गहमरी के यहाँ जासूस सुजान सिंह, राम सिंह, गेरुआ बाबा आदि को देख सकते हैं जो अपराधी का पता लगाने के लिए अपना वेश

[11]. ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 19
[12] .जासूस की डाली, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 165

बदलते हैं। इसके आलावा अपराधी पात्र भी वेश बदलने में माहिर होते हैं। जासूसी उपन्यासों में सारी घटनाएँ एक ही पात्र के इर्द गिर्द नहीं घूमती हैं। इस दृष्टि से कथाकार घटनाओं का विकेंद्रीकरण करता है जिससे रोचकता बनी रहती है। गोपालराम गहमरी भी चरित्र चित्रण में इसका ख्याल रखते हैं। रोचकता और रहस्य को बनाए रखने के लिए उन्होंने जासूस, उसके सहायक और अपराधी वर्ग की गतिविधियों का चित्रण करते हैं। जिससे सभी चरित्रों का विकास होता है साथ ही चरित्रों की मानसिकता उसकी जीवनवृत्ति को समझने में सहायता मिलती है। गौरतलब है कि गोपालराम गहमरी के यहाँ शारलाक होम्स जैसा कोई एक जासूस नहीं है जो सीरीज के रूप में अपराध को सुलझाता हुआ नजर आए। इनके सभी उपन्यासों में जासूस अलग-अलग हैं। हालांकि सीरीज के रूप में जासूस का अवतरण स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में दृष्टिगत होता है। विमलेश आनंद इस पर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं : "गोपालराम गहमरी जिन्होंने सर्वाधिक जासूसी उपन्यास लिखे- अपने सभी उपन्यासों का नायक एक ही जासूस को नहीं बनाया। विभिन्न रचनाओं में भिन्न-भिन्न नाम और व्यक्तित्व वाले जासूसों के दर्शन होते हैं। गोविन्दराम, सुजान सिंह, ठनठन गोपाल तथा गेरुआ बाबा इत्यादि उनके कुछ जासूसों के नाम हैं। घटनास्थल का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण प्रत्येक छोटी से छोटी बात का अध्ययन-मनन व कार्य-कारण संबंध जोड़ने की प्रवृत्ति इत्यादि चारित्रिक विशेषताएँ इन सभी जासूसों में पाई जाती हैं, उनकी कार्य-पद्धति व विचार प्रणाली भी एक-सी है किन्तु फिर भी वे एक नहीं हैं सब अलग-अलग व्यक्ति हैं।"[13] इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि गोपालराम गहमरी के जासूस नायक जासूस वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करते हुए नजर आते हैं।

हिंदी के जासूसी उपन्यासों में जासूस वर्ग के साथ-साथ अपराधी वर्ग का चरित्र-चित्रण भी देखने लायक है। गोपालराम गहमरी ने अपराधी वर्ग का सूक्ष्म यथार्थ चित्रण किया है। इस चित्रण में वे मनोविज्ञान का भी सहारा लेते हुए नजर आते हैं। अपराधी वर्ग की सामाजिक पृष्ठभूमि उसके वर्ग-संघर्ष और उसकी मनःस्थिति का भी यथार्थ चित्रण किया है।

[13] . हिंदी के कुतूहलप्रधान उपन्यास, पृष्ठ : 151

यह चित्रण पाठक में अपराधी वर्ग के प्रति घृणा के साथ-साथ सहानुभूति भी पैदा करता है । "अपराधी वर्ग के अधिकांश पात्र चोर-डाकू हत्यारे हैं जिनका नृशंस रूप ही इन उपन्यासों में चित्रित हुआ है । जासूसी साहित्य के अधिकांश अपराधी समाज के निम्नवर्ग के व्यक्ति हैं जिनमें से कुछ तो दिन में भीख माँगना , तांगा चलाना इत्यादि कार्य करते हैं और रात के अँधेरे में पैशाचिक कार्य । यह सब रूपये के लोभ अथवा कामिनी की प्राप्ति के लिए ही सब प्रकार के अनैतिक कार्य करने को तत्पर हैं । इन सब की मनोवृत्ति अपराधियों की परम्परागत मनोवृत्ति है । वह अपने स्वार्थ साधन के लिए हत्या जैसे दुष्कर्म करने में ही कुशल नहीं हैं वरन् अपने अपराध को छिपाने में भी खूब सावधान हैं । इस अपराधी वर्ग की नृशंसता, चालाकी व सहस इत्यादि चारित्रिक विशेषताओं के चित्रण में चरित्र-चित्रण सम्बन्धी सभी शिल्पविधियों का प्रयोग किया गया है ।"[14] गोपालराम गहमरी अपने उपन्यास 'भोजपुर की ठगी' में भोला पंछी नामक डाकू का वर्णन करते हुए लिखते हैं : "लॉर्ड कार्नवालिस के समय में भोला पंछी नामक एक जबरदस्त डाकू था । वह किसी से पकड़ा नहीं जाता था । शाम को आपसे उसकी बातचीत होती । रात को वह बीस-पच्चीस कोस का धावा मारकर डाका डाल आता और सबेरे फिर वह वहीं दिखाई देता । उसकी इस चाल के कारण लोग उसको 'पंछी' कहते थे और यही उसका अड्डा था, इसलिए इसका नाम 'पंछी का बाग' पड़ गया ।"[15]

औपनिवेशिक कालीन भारत में डकैती की घटनाएँ होती रहती थी । सुमंता बनर्जी अपनी किताब 'क्राइम एंड अर्बनैजेशन' में 19 वीं सदी के भारत में डकैतों के कारनामों और तद्युगीन अंग्रेजी प्रशासन में उसके भय का वर्णन करती हैं । यह दर न केवल प्रशासन के बीच था बल्कि युगीन जमींदार वर्गों में भी इन डकैतों का भय बन रहता था । इस भय का चित्रण करते हुए गोपालराम गहमरी डाकू भोला के बारे में लिखते हैं : "भोलाराय जाति का भूमिहार था । इसके डर से गंगा के दोनों पार के लोग थर-थर काँपते थे । इसके डर से रात को कोई बेखबर

[14] .वही, पृष्ठ : 156
[15] .गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ, संजय कृष्ण(संपादन), पृष्ठ: 104

सोने नहीं पाता था। उन दिनों ऐसे आदमी बहुत ही कम थे, जो उसके नाम से न डरते हों। यहाँ तक कि भोला जहाँ जाता था, वहाँ उसकी इज्जत होती थी और दामाद से भी बढ़कर उसकी खातिर-बात की जाती थी।"[16] इसके साथ ही गोपालराम गहमरी ने डाकू भोला के कोमल पक्ष का भी चित्रण किया है। भोला उच्च जाति का व्यक्ति है जो गूजरी नामक दलित स्त्री से प्रेम करता है। गूजरी भोला को जानती है, प्रेम भी करती है लेकिन उसके पेशेवर डाकू होने के कारण भोला के प्रणय निवेदन को स्वीकार नहीं करती है। वह भोला को यह लूट, डकैती छोड़ देने के लिए भी कहती है। भोला का ह्रदय परिवर्तन होता है और वह सारे कुकर्म छोड़ देता है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में जब अस्पृश्यता अपने चरम पर थी वैसे समय में एक उच्च जाति के व्यक्ति का दलित स्त्री से प्रणय निवेदन करना और उसके सामने खुद को समर्पित कर देना यह बहुत बड़ी बात थी। भोला गूजरी से कहता है : "गूजरी ! वह बात कहकर अब मेरे दिल पर चोट मत कर। जो होना था गया, मुझे माफ कर। अब तू जो कहेगी, मैं वही करूँगा। डकैती छोड़ने को कहा था, उसे छोड़ दिया। जनेऊ फेंकने को कहती थी, यह ले।"[17]

गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में जिन अपराधी वर्ग का चित्रण किया है वे न केवल निम्न वर्ग के हैं बल्कि समाज के प्रतिष्ठित वर्ग से भी आते हैं। यहाँ उन्होंने इस मान्यता को ख़ारिज किया है कि अपराध वृत्ति निम्न समुदाय के लोगों में होती है। उन्होंने अपराध वृत्ति को मनोविज्ञान से जोड़ते हुए प्रतिष्ठित सामाजिक वर्ग में व्याप्त अपराध वृत्ति और अपराधी का भी चित्रण किया है। 'भोजपुर की ठगी' उपन्यास का पात्र हीरा सिंह ऐसा ही एक जमींदार है जिसके इशारे पर भोला जैसे डाकू काम करते हैं। इसे हम उपन्यास में यथार्थवाद के आरंभिक चरण के साथ जोड़कर देख सकते हैं। गोपालराम गहमरी अपराधी वर्ग के चरित्र चित्रण में प्रायः वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करते हैं साथ ही संवाद योजना के माध्यम से उन्होंने चरित्र की मनःस्थिति, उसकी गंभीरता और साहस का चित्रण करते हैं।

[16] वही, पृष्ठ : 105
[17] .वही, पृष्ठ : 160

अन्य पात्रों की बात करें तो वे कथा को आगे बढ़ाने और जासूस को सूत्र देने की भूमिका का निर्वहन करते हुए नजर आते हैं। इन पात्रों के माध्यम से लेखक ने तद्युगीन मानसिकता का यथार्थ अंकन किया है। विमलेश आनंद लिखते हैं : "कुतूहल प्रधान उपन्यास साहित्य की नारी-भावना की सर्वप्रमुख विशेषता नारी का प्रिय रूप है। सम्पूर्ण कुतूहल प्रधान उपन्यास-साहित्य में नारी पात्र प्रेयसी या बहुत हुआ तो पत्नी के रूप में चित्रित हुए हैं, उनके मातृ-रूप अथवा पुरुषों के समान स्वतंत्र व्यक्तित्व रखने वाले सामाजिक प्राणी के रूप का चित्रण नहीं के बराबर हुआ है। दूसरी विशेषता यह है कि उसमें नारी पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को सामाजिक आदर्श के सन्दर्भ में रखकर चित्रित किया गया है। नारी-पात्र या तो भारतीय नारी जीवनादर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं या फिर आदर्श-भ्रष्ट दिखलाए गए हैं।"[18] कहना न होगा कि तद्युगीन समाज के जीवनमूल्यों की छाप गोपालराम गहमरी के जासूसी साहित्य में भी दिखाई देता है। कुछेक स्त्री-पात्र को छोड़ दें तो सभी स्त्री पात्र प्रेयसी, माँ और पत्नी के रूप में ही चित्रित हैं। पत्नी के रूप में चित्रित स्त्री पात्र भारतीय नारी के जीवनादर्श से संचालित होती हैं। उनके लिए पति का स्थान ईश्वर से कम नहीं है। लेकिन उन कुछेक संदर्भों की बात करें जहाँ गोपालराम गहमरी पर नवजागरण की चेतना का प्रभाव दिखता है वहाँ पर उन्होंने स्त्री पात्रों में नवजागरणकालीन आधुनिक चेतना का समावेश भी किया है। 'पत्नी' शीर्षक उपन्यास में चंदा और रेखा का चरित्र पर नवजागरणकालीन चेतना का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। चंदा पढ़ी-लिखी स्वतंत्र स्त्री है। उसके बारे में गोपालराम गहमरी लिखते हैं : "उसने संसार के इतिहास में 'स्त्री का स्थान' नामक एक पुस्तक लिखकर छपवाई है। उसकी प्रशंसा देश-विदेश सर्वत्र हो रही है। इसके सिवा उसको और भी कुछ लिखना पड़ता है। मासिक-पत्रों के संपादक और पुस्तकों के प्रकाशक इन जीवों के तकाजे पूरे करते रहने के कारण उसका साहित्यिक कर्म-जीवन बहुत बढ़ गया है।"[19] कहना न होगा कि चंदा का चरित्र आधुनिक चेतना के कारण काफी प्रभावित करता है। वह समाज में स्त्री की स्थिति को लेकर लगातार बहस करती है। स्त्री मुक्ति के प्रश्नों को

[18] . हिंदी के कुतूहलप्रधान उपन्यास ,विमलेश आनंद, पृष्ठ : 161
[19] .पत्नी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 99

लेकर काफी मुखर है। ऐसा समाज जहाँ स्त्री जाति के बंधन को आदर्श माना जाता हो वहाँ चंदा विद्रोह करती है और सामाजिक व्याकरण को तोड़ती हुई नजर आती है। इस दृष्टि से 'झंडा डाकू' उपन्यास की सुनयना का चरित्र भी महत्त्वपूर्ण है। वह रोशन सिंह से प्रेम करती है लेकिन देश के लिए उसका त्याग करती है। रोशन सिंह के लिए लिखे पत्र में वह लिखती है : "तुम अपने मन में सदा रक्खो कि तुम्हारी और हमारी इस जुदाई की जड़ में एक महत् प्रेरणा देश और देश के निःस्वार्थ-कल्याण की सम्भावना है। देश और देश के मंगल के लिए क्या हम लोग अपने इस तुच्छ सुख और शांति का स्वार्थ नहीं विसर्जित कर सकते?"[20] इन सन्दर्भों को नवजागरणकालीन चेतना और युगीन राष्ट्रवादी चेतना के उदय के साथ जोड़कर देखा जा सकता है। यही कारण है कि गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण को लेकर रणवीर रांग्रा लिखते हैं : "गहमरी जी के पात्र देवकीनंदन खत्री जी के पात्रों की अपेक्षा हमारे जीवन के अधिक निकट ठहरते हैं और उनका चरित्र-चित्रण भी खत्री जी के चरित्र-चित्रण से एक कदम आगे है।"[21]

4.3. देशकाल और वातावरण:

किसी भी उपन्यास की अंतर्वस्तु, चरित्र और कथ्य देशकाल और वातावरण से ही निर्मित होते हैं। देशकाल और वातावरण कथा, चरित्र आदि के लिए विश्वसनीय पृष्ठभूमि मात्र नहीं होते हैं बल्कि उसके माध्यम से तद्युगीन जीवनमूल्यों की पड़ताल भी की जा सकती है। मनुष्य जीवन की समस्याएँ, उसका संघर्ष, उसके जीवनमूल्य किसी भी समाज के देशकाल और वातावरण में ही विकसित होते हैं। यह केवल प्राकृतिक ही नहीं होता बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक भी होता है। साहित्यकार समाज के जिन वर्ण्य विषय को लेखन के लिए चुनता हैं उसे रचनात्मक कृति में बदलने के लिए युगीन सामाजिक

[20] . झंडा डाकू, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 115
[21] . हिंदी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास , रणवीर रांग्रा, पृष्ठ : 138

संदर्भों को भी रखता है। यह किसी भी रचनात्मक कृति को यथार्थ के निकट ले जाता है साथ ही युगीन ऐतिहासिक संदर्भों को समझने में भी मददगार सिद्ध होता है।

गोपालराम गहमरी ने अपने जासूसी उपन्यासों में देशकाल और वातावरण की निर्मिती के माध्यम से न केवल युगीन सन्दर्भों को सामने रखा है वरन् चरित्र के विकास और उसके द्वंद्व को दिखने में भी इसका सहारा लिया है। इनके उपन्यासों में युगीन समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, लूट, डकैती, चोरी, हत्या आदि का वर्णन तो मिलता ही है साथ ही साथ प्रेस, रेल, डाक, तार, टेलीफोन आदि का भी वर्णन मिलता है। गोपालराम गहमरी के जासूस रेल, डाक और टेलीफोन, मोटर आदि का प्रयोग करते हुए नजर आते हैं। औपनिवेशिक भारत में गरीबी और किसान की स्थिति के वर्णन के माध्यम से गोपालराम गहमरी युगीन भारतीय परिवेश का चित्रण करते हुए लिखते हैं : "इस देश के लोगों को अपनी जीवनी शक्ति प्रबल करने की चिंता नहीं है। उसके लिए अच्छी खुराक चाहिए। देश भर में गरीबी का साम्राज्य है। भारत में करोड़ो आदमी ऐसे हैं जो भर पेट अन्न को तरसते रहते हैं। किसान अन्न उपजाते हैं पर उन्हीं को भर पेट भोजन मयस्सर नहीं होता।"[22] लेखक ने स्थानीय परिवेश को दिखाने के लिए स्थानीय क्षेत्रों का भी वर्णन किया है साथ ही स्थानीय भाषा में संवाद के माध्यम से देशकाल को चित्रित करते हुए कथा को विश्वसनीय बनाने का काम किया है। गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में विभिन्न वर्गों से संबंधित पात्रों का चित्रण हुआ है इसलिए भाषा वैविध्य के माध्यम से उपयुक्त वातावरण का निर्माण हुआ है। इनके अंग्रेज पात्र जिसके मातहत कई जासूस काम करते हैं उसकी भाषा में टकार ध्वनि की प्रधानता मिलती है। वहीं भारतीय अफसर अग्रेजों के सामने अत्यंत विनम्र और गिड़गिड़ाने की सीमा तक पहुँचती हुई भाषा का प्रयोग करते हैं। गोपालराम गहमरी ने तिलस्मी और ऐय्यारी उपन्यासकार की तरह देशकाल और वातावरण की निर्मिती के लिए कल्पनात्मक दृश्य विधान के स्थान पर यथार्थपरक दृश्य विधान का सहारा लिया है। उन्होंने अपने अधिकांश उपन्यासों में बनारस, कलकत्ता, मेरठ, बम्बई, गाजीपुर,

[22] .पत्री, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :19

मंडला आदि जैसे शहरों को वर्णित किया है जिससे पाठक सुपरिचित हैं। अपराध की घटनाएँ भी इन्हीं शहरों में घटित होती हैं और जासूस की खोजबीन भी इन्हीं शहरों के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। लेखक ने प्रकृति चित्रण के माध्यम से भी वातावरण की निर्मिती की है जो कथा के पात्र की मनोदशा को चित्रित करने में सहायक सिद्ध होती है। 'मायावी' उपन्यास में जंगल का एक दृश्य है, जिसमें आधी रात एक बालिका बदहवाश भागती हुई नजर आती है। लेखक उस वातावरण की निर्मिती इस तरह करते हैं : "आधी रात का समय है। लगातार आंधी पानी से रात और भयावह लगती है। आकाश ने मानो काला घूंघट खींचा है, नभमंडल घोर घटाच्छन्न है। धरती से ऊपर आसमान तक अंधकार का राज है। रह रह कर बिजली की चमक और और वज्र गर्जन इतना भयावना होता है कि बड़े-बड़े साहसियों की धोती ढीली हो जाती है। उसी महाघोर अंधकार में चौदह बरस की एक बालिका मैदान से भागी जा रही है। जब बादल से मिली हुई बिजली चमकती है तब बालिका खड़ी होकर इधर उधर देखती है। चमक की चकाचौंध काटकर आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है तब धुन बाँधकर दौड़ने लगती है। जहाँ अपना हाथ भी नहीं सूझता, वहाँ यह कौन चुपचाप मैदान में चली जा रही है ? न जाने कितनी देर से वह इस आफत में दौड़ रही है। अब वह कभी हाँफती हुई गिरती है कभी गिरकर उठती है कभी भीगे कपड़े सँभालती हुई दौड़ती और फिसलकर धरती में लोट जाती है।"[23] यहाँ पर लेखक ने संदेहजनक वातावरण की सृष्टि करके रहस्य की निर्मिती तो की ही है साथ ही साथ लड़की की मनःस्थिति और उसके भीतर व्याप्त भय का भी चित्रण किया है। इस प्रकार उपयुक्त चित्रण के द्वारा लेखक ने अभीष्ट देशकाल और वातावरण का निर्माण किया है जो जासूसी कथा के लिए आवश्यक है। उन्होंने युगीन परिवेश के यथार्थ अंकन के साथ कथा को जीवंत बनाने की सफल कोशिश की है।

[23] .मायावी, गोपालराम गहमरी, कशी हितचिन्तक प्रेस बनारस, पृष्ठ :15

4.4. भाषा:

उपन्यास को यथार्थवादी स्वर देने में भाषा की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । उपन्यास में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति होती है । सामाजिक जीवन की जटिलताओं, क्रिया-व्यापार और चरित्र को जीवंत रूप देने के लिए उपन्यासकार को भाषा की सामाजिकता को समझना होता है । उपन्यासकार जिस समाज को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखता है, उस समाज की भाषा को अपने पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं : "उपन्यास में जिस भाषा में यथार्थ की कल्पना उसकी रचना या उसका आविष्कार होता है वह भाषा स्वाभाव से सामाजिक होती है । उसके रचाव या प्रयोग की विधि व्यक्तिगत हो सकती है, लेकिन वह भाषा प्रथमतः अंततः सामाजिक होती है । ऐसी स्थिति में भाषा में अन्वेषित या आविष्कृत यथार्थ हमेशा सामाजिक होता है ।"[24] उपन्यासकार अपने अनुभव और सामाजिक यथार्थ को भाषा के माध्यम से ही पाठकों के सामने रखता है । कहना न होगा कि गोपालराम गहमरी भाषा की इस सामाजिकता को बखूबी समझते हैं । विभिन्न वर्गीय पृष्ठभूमि से आए पात्रों की भाषा को उन्होंने वर्गीय पहचान दी है । ज्ञानचंद जैन लिखते हैं : "गोपालराम गहमरी के उपन्यासों की भाषा उनके उपन्यासों की जान है । वह अपने उपन्यासों में नितप्रति की बोलचाल की भाषा का व्यवहार करते हैं । हिंदी किसी एक प्रदेश तक सीमित नहीं है , वह अनेक अंचलों में व्यवहृत होती है , अतएव वह अपनी भाषा में आंचलिक शब्दों का प्रयोग बेधड़क करते हैं । उनकी गद्य भाषा में काव्य का लालित्य होता है ।"[25]

गोपालराम गहमरी के समय गद्य साहित्य में मुख्य रूप से तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है :

1.संस्कृत गर्भित प्रवाहपूर्ण भाषा

[24] .आलोचना की सामाजिकता, मैनेजर पाण्डेय, पृष्ठ : 262
[25] .प्रेमचंद-पूर्व के हिंदी उपन्यास, ज्ञानचंद जैन, पृष्ठ :173-174

2. संस्कृतपूर्ण अशुद्ध भाषा

3.व्यावहारिक बोलचाल की भाषा

यह वह दौर था जब खड़ी बोली का विशुद्ध सँवरा हुआ रूप नहीं बन पाया था। "खड़ीबोली का यह आरंभिक स्वरूप संक्रांतिपरक भाषा (Transitional Language) का एक उदाहरण है। इसे वैयक्तिक बोली (Indiosyneratic Dialect) या अंतर भाषा (Inter Language) जैसी संज्ञाएँ भी दी जा सकती है। संक्रांतिपरक होने के कारण यह अस्थिर और परिवर्तनशील रही है। यह जहाँ-जहाँ तक फैलती गयी, वहाँ-वहाँ की भाषाओं और बोलियों से प्रभावित होती गयी और जिन लोगों के द्वारा लिपिबद्ध की गयी उनकी निजी विशेषताएँ इसमें सक्रीय होती गयीं।"[26] इस समय काव्य में ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली का विवाद चल रहा था तो वहीं हिंदी-उर्दू को लेकर भी विवाद चल रहा था। हिंदी और उर्दू का प्रश्न केवल भाषा और लिपि तक सीमित नहीं रह गया था। यह दो संप्रदाय और जातीय गौरव का प्रश्न बन गया था। श्रीश जैसवाल इस विवाद पर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं : "दोनों ही पक्षों ने भाषा के प्रश्न को धर्म से भी जोड़ने का प्रयास किया था, हिंदी हिन्दुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा कही जाने लगी थी। हिंदी आंदोलन हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित करने के लिए ही नहीं किया जा रहा था बल्कि दीर्घकालीन मुस्लिम दमन चक्र की प्रतीक उर्दू के प्रभुत्व और प्रचलन को समाप्त करने के लिए भी किया जा रहा था। हिंदी, हिन्दू, हिंदुस्तान का नारा अनेक हिंदी समर्थकों की भावना को प्रतिबिंबित करता था।"[27] कहना न होगा कि इस भाषा विवाद के पीछे औपनिवेशिक सत्ता की साम्राज्यवादी सोच कार्यरत थी। यह भाषा विवाद हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालने का एक माध्यम था।

गोपालराम गहमरी अपने साहित्य में व्यावहारिक बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा में प्रौढ़ता की झलक मिलती है। वे भाषा की सामाजिकता और सन्दर्भों को

[26] .खड़ीबोली विकास के आरंभिक चरण, उषा माथुर, पृष्ठ : 95

[27] .हिंदी का नवजागरण काल एवं भाषा विवाद, श्रीश जैसवाल, पृष्ठ : 115

समझते हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में हिंदी के साथ-साथ उर्दू, अरबी, अंग्रेजी, भोजपुरी तथा अन्य आंचलिक बोलियों का भी समुचित प्रयोग किया है। तद्युगीन खड़ी बोली का प्रयोग करते हुए उन्होंने भाषा को यथार्थ के निकट लाने के लिए स्थानीय बोलचाल के शब्दों, जुमलों और मुहावरों का प्रयोग मुक्त भाव से किया है। जहाँ वे कथा का वर्णन कर रहे होते हैं वहाँ पर उन्होंने तत्कालीन मानक भाषा का प्रयोग किया है और ज्योहीं पात्र का संवाद आता है वहाँ पर उन्होंने स्थानीयता का ख्याल रखा है। गोपाल राय लिखते हैं : "काव्यात्मकता के साथ-साथ गहमरी जी की भाषा में एक और वैशिष्ट्य दिखायी पड़ता है। उन्होंने पात्रानुसार भाषा का व्यवहार किया है। निम्न श्रेणी की जाति के लोगों विशेषकर स्त्रियों के वार्तालाप का वर्णन गहमरी जी ऐसी यथार्थ भाषा में प्रस्तुत करते हैं जिसे पढ़ कर परिष्कृत रुचि का साहित्यिक पाठक भी मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता।"[28] 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में जासूस ठनठन और अंग्रेज अफसर के बीच का यह संवाद देखिए :-

"साहब - क्यों मिस्टर ठनठन क्या हाल है ?

ठ० - जीता बच आया हूँ यही बहुत है और सब तो जो-जो बीता है वह हमी जानते हैं।

सा०- कुच परवा नेई वह सब बाट हम पीचे सुनेगा। लेकिन रामलाल के वास्टे कुछ सुबूट मिला कि नेई सो बोलो।

ठ०- नहीं साहब !

सा०- ओफ-अच्छा, मुकडमा सब मालूम है जैसा चलटा ?

ठ०- हाँ, सुना है।

सा०- अच्चा, हम जाटा है। रामलाल, डुरडिन और सटीबाला को गिरफ्टारी का बन्डोबस्ट करटा है। आप अब आराम करो।"[29] यहाँ हम देख सकते हैं कि अग्रेज अफसर किस तरह 'टकार' ध्वनि का प्रयोग कर रहा है, साथ ही ठनठन 'जिन्दा' की जगह 'जीता' शब्द का प्रयोग कर रहा है।

[28] .हिन्दी कथासाहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव, गोपाल राय, पृष्ठ : 301
[29] .ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :251

ऐसे उदाहरण इनके उपन्यासों में जगह-जगह देखे जा सकते हैं जहाँ इन्होंने भाषा की सामाजिकता का ख्याल रखा है और पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। 'जासूस की डाली' उपन्यास में लेखक ने मुस्लिम पात्र मुहम्मद ख़ाँ की भाषा में उर्दू मिश्रित हिंदी का प्रयोग किया है। यहाँ हिन्दू पात्र भगवान और मुस्लिम पात्र मुहम्मद ख़ाँ के बीच का संवाद द्रष्टव्य है :-

"भगवान ने पूछा – कहो मुहम्मद ख़ाँ, मिज़ाज तो अच्छा है ? इतने उदास क्यों हो रहे हो?

'जी नहीं, उदास तो मैं नहीं हूँ, न कोई तकलीफ़ ही मुझे है।'

भ०- लेकिन चेहरा तो कहता है कि भीतर आपके बड़ी तकलीफ़ हो रही है।

मु०- जी नहीं, मुझे कुछ तकलीफ़ नहीं। ख़ुदा के फ़ज़ल से मैं अच्छा हूँ।

इस समय डोरन साहब की वही लड़की अपने दो और हमजोलियों के साथ उधर से निकली। मुहम्मद ख़ाँ ने उधर सिर उठाकर भी नहीं देखा। भगवान ने कहा – 'क्यों मुहम्मद ख़ाँ उधर तो देखो।'

'ओफ़ ! अब नाम मत लो।'

भ०- क्यों-क्यों, ख़ैर तो है ? ऐसी बेमुरव्वती क्यों यार ?

मु०- बस, मैं कह चुका, लाहौल भेजिए। इन बातों को अब दर-गुज़र कीजिए। इसी से तो मैं बाहर नहीं आता था।"[30] इस संवाद में देखा जा सकता है कि मुस्लिम पात्र मुहम्मद ख़ाँ अरबी, फ़ारसी मिश्रित हिंदी का प्रयोग कर रहा है। लेखक ने यहाँ पर अरबी, फ़ारसी के शब्दों में नुक्ते का भी सही प्रयोग किया है जो पात्रानुकूल भाषा प्रयोग की दृष्टि से सराहनीय है। 'भोजपुर की ठगी' उपन्यास में लेखक ने नौकरानी और मुंशी के बीच के संवाद में भोजपुरी और हिंदी का प्रयोग किया है जो सर्वथा उचित है :-

"मुंशी – अरे तू क्या बक रही है।

[30] . जासूस की डाली, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 191-192

लौंडी- सरकार, राउर नून खाइला ऐही से कहतानी नाहीं, हमरा बोलला का कवन काम बा ? साच बात घुरहू कहें सब का मन उतरे रहें । रवाँ जवान गहना ओह मुँहजरी के दिहली तवन इनके दिहती त रउरे न रहित ।"[31] उसी तरह 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में जासूस ठनठन जब हरदेवी की तस्वीर देखकर मुग्ध हो जाता है तब लेखक ठनठन गोपाल की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए सादृश्यता का सहारा लेते हैं । यहाँ उनकी भाषा द्रष्टव्य है : "ठनठन ने बड़ी देर तक हरदेवी की तस्वीर टक लगाकर देखी । तौभी इस देखने में पाप की छाया नहीं है न बुरी कल्पनाओं का तरंग है । इसमें छोकरों का चिबिल्लापन है न उपद्रवियों का ऊधम है । सुन्दर मूर्ति देखने से जैसे कारीगर का हाथ चूम लेने का मन करता है । अनोखी सुघराई देखने से जैसे सिरजनहार की सराहना और उसको धन्यवाद करने के लिए श्रद्धा होती है । सहसा विशाल समुद्र देखने पर जैसे हृदय में उदारता उमड़ उठती है । हजारों खिले फूलों का ठाट देखने से जैसे मन में मधुर भाव आपही जाग उठता है ठनठन का मन भी उसी तरह हो गया ।"[32] यहाँ पर लेखक ने न केवल ठनठन के चरित्र और उसके मनोभाव का काव्यमय चित्रण किया है बल्कि सादृश्यमूलक भाषा प्रयोग से भाषा में प्रवाह और लालित्य का सृजन किया है ।

4.5. मुहावरा, लोकोक्तियाँ और गीत

गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में मुहावरों, लोकोक्तियों और गीतों का भी प्रयोग किया है । खड़ी बोली के सहज रूप के साथ मुहावरों, लोकोक्तियों और गीतों के प्रयोग से इनकी भाषा में सरसता पैदा हुई है । कहना न होगा कि तत्सम बहुलता न होने के कारण गोपालराम गहमरी की भाषा बोलचाल की चलती हुई भाषा थी जो मुहावरों और लोकोक्तियों को आसानी से पचा सकती थी । गोपालराम गहमरी वर्णन में और संवाद में भी उपमाओं का प्रयोग करते हैं जो मुहावरों के रूप में प्रयुक्त होती थीं । इनके द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले मुहावरों और

[31]. गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ, संजय कृष्ण (संपादन), पृष्ठ :138
[32].ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :19

लोकोक्तियों में स्थानीयता का पुट देखने को मिलता है जो उनकी अभिव्यक्ति को संप्रेषणीय बनाती हैं –

'दाई से पेट नहीं छिप सकता ।'

'बहि चढ़ गई ।'

'सटक सीता राम होना ।'

'भैंस के आगे बीन बजावे, वह बैठी पगुरावे ।'

'राई रत्ती रग रेशा सब समझता हूँ ।'

'आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास ।'

'आज खाय जो कल्ह को झकै, ताकौ गोरख संग न रक्खै ।'

'धीरज धरिय, तो उतरिय पारा। नाहीं त बूड़ सकल परिवार ।'

इस तरह के मुहावरे और लोकोक्तियाँ का प्रयोग उनके उपन्यासों में जगह-जगह हुआ है । जो भाषा को जीवंत बनाते हैं ।

गोपालराम गहमरी ने भाषा और पात्र को जीवंत बनाने के लिए छंदबद्ध गीतों का भी प्रयोग किया है । 'ठनठन गोपाल' उपन्यास में श्रीकृष्ण की भक्ति करने वाला एक साधू गाता है :

"धन वृन्दाबन नाम है धन वृन्दाबन धाम ।

धन वृन्दाबन रसिक जे रटत निरन्तर श्याम ।।

वृन्दाबन में बास करि साक पात जे खात ।

धन तिनके वोहि जनम को सुरपुर इन्द्र सिहात ।।"[33]

इसी उपन्यास में साधू जब प्रेम की बात करता है तब भावुक होकर यह गीत गाने लगता है :

[33] .ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी , पृष्ठ : 92

“कहाँ गयि जनियाँ । कहाँ गयि जनियाँ ।

नेह लगा के कहाँ गयि जनियाँ ।।

सुख से रखा सदा तोहि पूजा ।

जपा किया जैसे करकी मनियाँ ।।

कहाँ गयि जनियाँ । कहाँ गयि जनियाँ ।

बिलखत निस दिन खोजूँ तोको ।

ना मिली कहूँ हमारी धनियाँ ।।

कहाँ गयि जनियाँ । कहाँ गयि जनियाँ ।।”[34]

इसी तरह इसी उपन्यास में सतीबाला और दुरदिन के बीच संवाद में सतीबाला अपनी बात रखते हुए कहती है :

“तिय देखे जबै पिय को दुःख में दुःख में ह्वै आपहु गात कँपावे ।

आनन्द चित्त लखै निज स्वामिहीं भामिनी मोद प्रमोद बढ़ावे ।।

प्राण पिया परदेश गये निसिवासर कामिनी काय घटावे ।

अन्तहु साथ चले पिय के एहि भाँति पतिव्रत धर्म बतावे ।।”[35]

कहना न होगा कि गीतों के प्रयोग ने जहाँ चरित्र की मनोदशा को चित्रित करने में सहायता प्रदान की है वहीं इससे संवाद और कथा को गति भी मिली है । तद्युगीन हिंदी उपन्यास की बात करें तो वहाँ उपन्यासों में विभिन्न गद्य विधाओं का मिश्रण देखने को मिलता है । गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में गीतों की योजना को उस नजरिए से भी देखा जा सकता है । कई जगह संवाद-योजना में पारसी रंगमंच का प्रभाव भी देखने को मिलता है । लेखक संवाद-योजना में नाटकीयता को बनाए रखते हुए पाठक को रहस्य और रोमांच की अनुभूति कराते हैं । इनके

[34] . वही,पृष्ठ :91
[35] . वही, पृष्ठ : 191

उपन्यास अध्याय या परिच्छेद के स्थान पर 'बयान' में विभाजित हैं । ऐसा मालूम होता है कथाकार कथावाचक के रूप में कहानी कह रहा है । 'मायावी' उपन्यास में इस संवाद-योजना में पारसी रंगमंच का प्रभाव साफ झलकता है :

"बालिका से उसने कहा – "रेवती कबतक तुम यह कैदखाना सहोगी ? मेरी बात मान लो ? तुम को मैं इतना चाहता हूँ तौ भी तुम्हारे मन में दया नहीं आती ? क्या बिलकुल बेदर्द ही हो ?" जब रेवती ने कुछ जवाब नहीं दिया । तब उसने फिर कहा –"अरे रेवती मेरा कलेजा रेतने वाली रेती ! तुम्हीं को कहता हूँ । इधर देखो मूँह से बात तो बोलो क्या इतनी दूर आकर भी तुम्हारे मूँह से मीठी बात सुनना नहीं नसीब होगा ?""[36] इस प्रकार हम देख सकते हैं लेखक ने आम बोलचाल की भाषा में मुहावरों, लोकोक्तियों और गीतों के माध्यम से पाठकों को जासूसी उपन्यास के रोमांच का आस्वाद कराया है । उन्होंने लेखन की व्यावसायिकता का ध्यान रखते हुए पाठकों की रुचि का विशेष ध्यान दिया है जिसमें वे सफल भी हुए हैं । अपने उपन्यासों में उन्होंने युगीन गद्य-विधाओं का भी मिश्रण किया है । जो युगीन उपन्यासकारों में भी दिखाई देता है । इसे हम गोपालराम गहमरी के उपन्यास शैली के अंतर्गत देख सकते हैं ।

4.6. शैली:

उपन्यास में शैली का आशय कथाकार की अभिव्यक्ति की पद्धति से है । कथाकार रचना को एक सूत्र में बाँधने के लिए तथा अपनी अभिव्यक्ति को विशिष्टता प्रदान करने के लिए विभिन्न शैलियों को प्रयोग में लाता है । बच्चन सिंह लिखते हैं : "शैली में केवल लेखक का व्यक्तित्व ही नहीं उभरता, समसामयिक लेखन-चिंतन प्रणाली भी उभरती है । लेखक के अपने व्यक्तित्व और

[36] .मायावी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :23

समसामयिक लेखन-चिंतन-प्रणाली का संघर्ष भी उभरता है । यह संघर्ष जितना तीखा और सान्द्र होगा अभिव्यक्ति भी उतनी ही सशक्त और कालातीत होगी ।"[37]

शैली की दृष्टि से गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में मूलतः निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग दृष्टिगत होता है :

1. वर्णनात्मक शैली

2. किस्सागोई शैली

3. पत्रात्मक शैली

4. संस्मरणात्मक शैली

5. विश्लेषणात्मक शैली

वर्णनात्मक शैली कथा लिखने की प्राचीन शैली है । इसी शैली का प्रयोग कथाकार कथा को संगठित करने और विकसित करने के लिए कहता है । वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कथाकार घटनाओं को एक सूत्र में बांधने के लिए साथ ही कथा के मूलभाव के स्पष्टीकरण और चरित्र की मनःस्थिति को दर्शाने के लिए भी करता है । यहाँ कथाकार पाठक के सामने मुख्य रूप से उपस्थित होता है और पाठक के साथ चलता है । गोपालराम गहमरी ने अपने जासूसी उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग सफलता के साथ किया है । कहना न होगा कि उपन्यास की आरंभिक अवस्था में जहाँ पाठक वर्ग की कमी थी और जनता अशिक्षित थी वैसी स्थिति में शैलीगत जटिलताओं के लिए अवकाश नहीं था । तद्युगीन कथाकारों ने अंग्रेजी उपन्यास के शिल्प के साथ भारतीय कथा-परम्परा का अनुसरण करते हुए उपन्यासों का भारतीयकरण किया है । गोपालराम गहमरी ने वर्णनात्मक शैली के माध्यम से जहाँ कथा को सहजता प्रदान की है वहीं पाठक के समक्ष उपस्थित होकर उसे कथा से जुड़े रहने के लिए भी प्रेरित करते हैं ।

[37] .आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, बच्चन सिंह, पृष्ठ : 115

'ठनठन गोपाल' उपन्यास का यह अंश द्रष्टव्य है : "यह तो कहना नहीं पड़ेगा कि जिनके साथ रेशमी की बातें हो रही हैं ये कौन हैं । अम्बाला पहुँचने पर ठनठन गोपाल की पार्टी बहुत थक गयी थी तौ भी वहाँ नहीं ठहरे । झटपट पहुँचते ही ताँगे का बंदोबस्त हुआ और शिमला के लिए चल पड़े थे । जब शिमला पहुँचे तब रात हो गयी । ठनठन गोपाल से बिदा होकर साथी घरघूमन जब चले गये तब वह अपनी स्त्री को पास पहुँचाकर बाहर आये थे । भीतर ठनठन की स्त्री और रेशमी में बातें हो रही थीं कि खुद बीच में आ पड़े थे ।"[38] यहाँ गोपालराम गहमरी पाठक के समक्ष उपस्थित होकर कथा के सूत्र को बखूबी जोड़ते हैं ।

उसी तरह 'जासूस की डाली' उपन्यास में गोपालराम गहमरी 'भगवान 'नामक पात्र का वर्णन करते हुए लिखते हैं : "भगवान वेष बदलने में जैसे पक्के थे, सादे स्वभाव के, सच्ची कारवाई और इंसाफ पसंद होने के कारण भी वैसा ही उनका नाम था ।अपने स्वभाव के समान गुणवाले लोगों से वह दिल खोलकर बातें करते थें, और मुहम्मद सरवर साहब को तो अपना मुरब्बी मानते थे । जो लोग पुलिस के नेकनीयत, बेलौस और सच्चे लोगों की कदर करते हैं, जो घूसखोर, मुकदमा बनानेवाले या झूठमूठ भले आदमियों को फँसानेवाले से जलते हैं, उनमें भगवान का बड़ा यश, बड़ा आदर और मर्यादा थी । भगवान अपने इलाक़े के थानों पर इसका बड़ा ध्यान रखते थे कि अन्याय या जुल्म से कोई दुःख न पावे, न कोई बेगुनाह किसी पुलिस के अहलकार से सताया जाय ।"[39] यहाँ पर लेखक वर्णन के माध्यम से 'भगवान' के चरित्र की सदाशयता पर टिप्पणी करता हुआ पाठक के साथ जुड़ता है । गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का बहुत प्रयोग किया है । जहाँ भी कथा में कोई सूत्र देना हो या फिर कथा को संयोजित करना हो वे कथा में हस्तक्षेप करते हुए वे पाठक के सामने आते हैं । जहाँ भी चरित्र का चित्रण हो वे वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करते हैं । चरित्र-चित्रण में जहाँ विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग होना चाहिए वहाँ पर उन्होंने प्रायः वर्णनात्मक शैली का ही

[38] . ठनठन गोपाल, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 106
[39] . जासूस की डाली, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 183

प्रयोग किया है। घटना स्थल का ब्यौरा देते हुए भी वे इसी शैली का प्रयोग करते हैं। वे कथा कहने में जटिलता को नकारते हैं और वर्णन की सहजता को स्वीकारते हुए चलते हैं।

गोपालराम गहमरी अपने उपन्यासों में किस्सागोई शैली का प्रयोग खूब किया है। किस्सागोई की यह शैली भारतीय आख्यान परंपरा से प्रेरित है। उनके अधिकांश उपन्यास की शुरुआत किस्सागोई शैली में होती है। उपन्यास का 'बयानों' में विभाजन भी इसी ओर ध्यान खींचता है। गोपालराम गहमरी एक किस्सागो की तरह अपने पाठकों के सामने हमेशा उपस्थित रहते हैं। 'कथा' का 'बयानों' में विभाजित होना उसके श्रव्य होने को ही सूचित करता है। 'जासूस की डाली' उपन्यास की शुरूआत वे इसी किस्सागोई शैली में करते हैं : "कोई बीस-बाईस वर्ष की बात हम कहते हैं। उन दिनों एक उपकारी और दयालु ताल्लुकेदार की कृपा से हम मंडले में रहते थे और पार्लामेंट के मशहूर एम्.पी. फाउलर साहब बहादुर शेर का शिकार करने के लिये वहाँ आए थे। जब फाउलर साहब बंबई से जबलपुर पहुँचे तब मंडले के तहसीलदार पं. बालमुकुंद पुरोहित के नाम एक चिट्ठी आई। वह एक सरकारी अफ़सर की प्राइवेट चिट्ठी थी।"[40]

इसी तरह 'मायावी' उपन्यास की शुरुआत भी गोपालराम गहमरी किस्सागोई शैली में करते हैं : "जब की बात हम कहते हैं तब अरिन्दम नाम के एक मशहूर जासूस की हुगली में बड़ी चलती थी। अरिन्दम की चतुराई और जासूसी के मारे डाकू, चोर और खूनियों का खून सूखता था। इस जासूस में उसी विकट जासूस की एक भयंकर घटना हम लिखेंगे। हुगली जिले के कामदेवपुर गाँव में अरिन्दम बसु का निवास था। एक दिन सबेरे थानेदार योगेन्द्रनाथ ने उनके मकान पर जाकर सलाम दिया। अरिन्दम अपने बैठके में आराम कुर्सी पर लम्बे पड़े थे। थानेदार को देखते ही उन्होंने आदर से बैठने का आसन दिया।"[41] इसके बाद थानेदार

[40] .वही,पृष्ठ :1
[41] .मायावी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 5

योगेन्द्रनाथ और अरिन्दम के बीच वार्तालाप होती है पाठक को किसी हत्या की सूचना मिलती है और कथा आगे बढ़ती है।

गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में पत्रात्मक शैली का प्रयोग बहुत की कुशलता के साथ किया है। जासूसी उपन्यास लेखन की दृष्टि से पत्र-शैली का प्रयोग अंग्रेजी जासूसी उपन्यासों में तो मिलता ही है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी जासूसी उपन्यासों में भी इस शैली का प्रयोग खूब हुआ है। पत्र यहाँ पर सूचना देने का माध्यम भर नहीं है अपितु पत्र के माध्यम से लेखक ने चरित्र के अंतर्द्वंद्व को भी उभारने की कोशिश की है। गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यासों में पत्र के माध्यम से कथा को जोड़ने की भी कोशिश की है। कई ऐसे पत्र हैं जिसमें किसी घटना का जिक्र है तो कई ऐसे पत्र भी हैं जिसमें अपराधी के बारे में कुछ अहम् सूत्र मिलते हैं। गोपालराम गहमरी ने इन पत्रों का उपयोग जासूसी कथा की जटिलता को सुलझाने के लिए भी किया है। एक ही समय में घटित हो रही घटनाओं को संयोजित करने के लिए इन पत्रों का प्रयोग गोपालराम गहमरी ने सफलतापूर्वक किया है। 'हंसराज की डायरी' में माटुंगा स्टेट के नामी जमींदार के यहाँ हीरा चोरी होने की घटना पर एक पत्र के माध्यम से पता चलता है कि हीरा कुँवर साहब के काकाजी ने ही चोरी की है। जिसके सूचना पत्र के माध्यम से वे स्वयं देते हैं : "चिरंजीव बच्चा ! रंज मत होना। तुमने दिया नहीं, इसी से मैंने ख़ुद हीरा ले लिया। वंशलोप होने की जो बात है उस पर तुम विश्वास मत करना। यह हमारे पुरखों का फंदामात्र है कि कोई उसे हटाने की हिम्मत न करे। मेरा आशीर्वाद और प्यार !

तुम्हारा काका

सर्वविजय।"[42]

[42].हंसराज की डायरी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 131

हंसराज जब अपनी चालाकी और बुद्धि का परिचय देते हुए चोरी हुआ कुँवर दिग्विजयनारायण को लौटकर अपने घर लौटते हैं तब कुछ दिनों बाद उन्हें मंदी सहित कुँवर दिग्विजयनारायण की चिट्ठी मिलती है :

"प्रिय हंसराज बाबू !

आपकी कृतज्ञता के चिह्न्-स्वरूप इसके साथ जो भेज रहा हूँ, वह आपकी प्रतिभा के योग्य नहीं है तो भी आशा है आप स्वीकार करेंगे । जब आपसे अबकी भेंट होगी तब मैं सब विवरण सुनूँगा । विजय बाबू को भी मेरी ओर से धन्यवाद दीजिए । उनके ऐसे साहित्यिक की योग्यता को रुपये से तौलकर मैं उनको अपमानित करना नहीं चाहता । (हाय रे अभागे साहित्यिक के ललाट) लेकिन वे नाम-धाम बदलकर एक हीरक-विभ्राट उपन्यास लिख सकें तो इसमें मुझे कुछ भी एतराज़ नहीं होगा । सादर नमस्कार स्वीकार हो ।

भवदीय प्रतिभामुग्ध

दिग्विजयनारायण ।"[43]

इस तरह की पत्रात्मक शैली का प्रयोग उन्होंने अपने कई उपन्यासों में किया है । इस दृष्टि से 'ठनठन गोपाल', 'झंडा डाकू', 'मायावी', 'गेरुआ बाबा' आदि को देखा जा सकता है ।

गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में उन यथार्थपरक घटनाओं को भी जगह दी है जिसके वे साक्षी रहे हैं । बहुत सी ऐसी घटनाओं को भी अपने उपन्यास का वर्ण्य विषय बनाया है जो किसी करीबी के द्वारा उन्हें सुनाई गई है । इसके कारण उनके उपन्यासों में संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग भी खूब दिखाई देता है । इससे कथा में विश्वसनीयता भी पैदा होती है । कुछ उपन्यासों में वे प्रमुख पात्र द्वारा संस्मरण शैली में कथा की शुरुआत करते हैं । 'हंसराज की डायरी' की यह शुरुआत द्रष्टव्य है :

[43] . वही, पृष्ठ : 166

"लाला हंसराज से मेरी पहले-पहल जान-पहचान सन् 1924 ई. में हुई थी । उन दिनों विश्वविद्यालय की परीक्षा में पास होकर मैं अभी बाहर निकला ही था। रुपये-पैसे की कुछ कमी तो थी नहीं । पिताजी जो रुपया बैंक में जमा कर गये थे उसके सूद से हिन्दू होटल में शिष्ट शिक्षित मनुष्य की तरह रहकर भरण-पोषण का काम अच्छी तरह चला जाता था । किसी का कुछ देना-पावना नहीं था । इन सब झंझटों से दूर होकर भलेमानस की तरह अच्छी पोशाक, अच्छा खाना-पहनना सदा निर्विघ्न चला जाय इसका प्रबन्ध मानों वे मेरे वास्ते अपने संचित धन से कर गये थे।

इसी कारण मेरे मन में था कि सदा कवारा रहकर साहित्य-चर्चा में जीवन व्यतीत करूँगा । पहले युवावस्था में यही जोश भर रहा था कि एकाग्रचित्त होकर वाणीदेवी की आराधना करके हिन्दी-साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दूँगा । उस अवस्था में हमारे देश के नवयुवकों को अनेक बड़े-बड़े स्वप्न आया करते थे, यद्यपि उन सपनों के टूटने में भी विलम्ब नहीं होता । किन्तु उन बातों को छोड़कर पहले मैं यही कहना चाहता हूँ कि लाला हंसराज से कैसे मेरा परिचय हुआ ।"[44] उपन्यास की शुरुआत इसी तरह संस्मरण शैली में होती है और कथा का 'मैं' लाला हंसराज से अपने परिचय के बारे में बताता हुआ हंसराज की जासूसी के किस्से की शुरुआत करता है । ऐसी ही शुरुआत गोपालराम गहमरी अपनी जासूसी कहानियों में भी करते हैं । 'जासूस को धोखा' शीर्षक कहानी की यह शुरुआत द्रष्टव्य है :

"जब मैं सन् 1897 ई. में तीसरी बार बंबई गया था उसी यात्रा की घटना आज मैं लिखने चला हूँ। और कई बातें मैं पिछले संस्करण में लिख चुका हूँ। लोकमान्य तिलक की गिरफ़्तारी, उनके मुक़दमे की पेशी, हाईकोर्ट में बैरिस्टर दावर की बहस तथा माननीय महोदय गोविंद रानाडे का लोकमान्य के मुक़दमे में न्याय तथा श्री बदरुद्दीन तैयब की उदारता आदि का आँखों देखा वर्णन भी उसी संस्करणों में मैं कर चुका हूँ । आज तो अपने मित्र पारसी थियेटर के मशहूर एक्टर

[44] .वही, पृष्ठ : 1-2

मानिक जी मेहरबान जी की बातें कहना चाहता हूँ ।"[45] इसी संस्मरणात्मक शुरुआत के साथ लेखक कहानी को आगे बढ़ाता है और जासूसी की घटना का वर्णन करता है । इस तरह संस्मरणात्मक शैली का प्रयोग लेखक ने न केवल उपन्यास की शुरुआत में किया है अपितु कथा के बीच-बीच में भी उन्होंने इसका सफल प्रयोग किया है । जब कोई पात्र अतीत में घटित किसी घटना का वर्णन करता तब गोपालराम गहमरी संस्मरणात्मक शैली का सहारा लेते हैं ।

विश्लेषणात्मक शैली में कथाकार विचारों के विश्लेषण को महत्त्व देता है । कथा को आगे बढ़ाने, चरित्र-चित्रण और वातावरण की निर्मिती में विश्लेषणात्मक शैली विशेष रूप से उल्लेखनीय है । गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में विश्लेषणात्मक शैली का अभाव मिलता है । इस शैली का प्रयोग लेखक ने तद्युगीन भारतीय समाज की मानसिकता को चित्रित करने के लिए ही किया है । घटना स्थल के निरीक्षण में भी विश्लेषण की गहराई नहीं मिलती है । लेकिन जहाँ भी विश्लेषण शैली का प्रयोग लेखक ने किया है वहाँ लेखक ने युगीन समाज की संगतियों और विसंगतियों को उजागर किया है । 'डबल बीबी' उपन्यास में लेखक समय की गतिशीलता पर विचार करते हुए लिखते हैं :"समय किसी का इंतजार नहीं करता उसको विराम है न विश्राम । वह सदा एक भार से बीतता जाता है चाहे कोई राजा से रंक हो चाहे भिखुआ तेली से राजा भोज हो उसको किसी की कुछ परवा नहीं । चाहे अँधेरा हो चाहे उजाला, गरमी हो चाहे बरसात समय को कोई रोक नहीं सकता । दाम देकर जगत में सब खरीदा जा सकता है, लेकिन समय को कोई नहीं खरीद सकता ।"[46] लेखक ने यहाँ पर समय की अस्थिरता पर विचार किया है । 'भोजपुर की ठगी' उपन्यास में युगीन अराजकता पर विचार करते हुए गोपालराम गहमरी एक पात्र के माध्यम से लिखते हैं : "जब एक दिन मरना ही होगा, तब मौत के डर से अधमरा होकर जन्म भर मौत का कष्ट क्यों भोगूँ ?देश में सारी अराजकता हो गई है, किसी के धन-प्राण की खैर नहीं है । दुष्ट डाकुओं के जुल्म से सब लोग थर्रा उठे हैं । एक घड़ी के लिए भी

[45] .गोपालराम गहमरी : प्रसिद्ध जासूसी कहानियाँ, संजय कृष्ण (संपादन), पृष्ठ :73
[46] .डबल बीबी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :23

कोई निश्चिंत नहीं है, कोई क्षण भर के लिए भी सुखी नहीं । ऐसी दशा में रहकर कष्ट भोगने के बदले जुल्म रोकने की कोशिश करना उचित नहीं है ? रोज डाकू हम लोगों को मार-पीटकर हमारा सर्वस्व लूट ले जाया करेंगे, हमारे पिता, पुत्र, भाई आदि को जहाँ-तहाँ मार डालेंगे, हमारी स्त्रियों की फजीहत करके उनके बदन से जेवर छीन लेंगे और हम लोग हाथ पर दही जमाकर बैठे-बैठे देखेंगे, डर के मारे चूं नहीं करेंगे ? जान का इतना मोह क्यों है ? जान जाएगी तो जाए, परंतु जुल्म कभी नहीं सहेंगे । जो बेइज्जती सह सकता है, बेकारण जुल्म सह सकता है, वह नामर्द है ।"[47] लेखक ने यहाँ पर तद्युगीन समाज में हो रहे लूट, डकैती और हत्या से परेशान लोगों की स्थिति और उनके अंतर्द्वंद्व को उजागर करने का प्रयास किया है ।

इसी तरह 'खूनी का भेद' उपन्यास में गरीबी पर विचार करते हुए गोपालराम गहमरी लिखते हैं : "गरीबी के दुःख में कुछ ऐसा विषधर गुण भी देखा जाता है कि उसमें पड़े हुए आदमी को अनेक बुरे मतलब सामने आ पड़ते हैं । और भूख के मारे उसकी बुद्धि भयंकर से भयंकर मतलब का हलाहल आगे ला धरती है । उस घड़ी अकल बहरूपिया बन जाती है । मानों आदमी के सत् धर्म की परीक्षा के लिए उस अवसर सब के सब मुमतहिन बन जाते हैं ।"[48] इसी तरह 'पत्नी' उपन्यास में लेखक चंदा के माध्यम से सामाजिक संस्कार और उसकी रूढ़िवादिता पर विचार करते हुए लिखते हैं : "रही समाज की बात ! उसके लिए तो चिन्ता करने का कुछ काम नहीं है । एकदम किसी का संस्कार या संशोधन तो हो नहीं सकता । लेकिन जो मार्ग सत्य है, उस पर समाज को आना ही होगा । आज तुमने हमको यहाँ लाकर समाज पर जो बम फेंका है वह एक न एक दिन फटेगा ज़रूर । उसकी चोट से पुराने संस्कार तो चकनाचूर हो ही जायँगे ।"[49] इस तरह लेखक ने अपने उपन्यासों में जगह-जगह इस तरह का विचार विश्लेषण किया है । इन विश्लेषणों में एकतरफ तद्युगीन भारतीय लोकवृत्त की झलक मिलती है तो वहीं नवजागरणकालीन चेतना का प्रभाव भी देखने को मिलता है ।

---

[47] .गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ, संजय कृष्ण (संपादन), पृष्ठ :149
[48] . खूनी का भेद, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ : 41
[49] .पत्नी, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ :98

गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासों में शिल्पगत वैशिष्ट्य पर ध्यान देते हुए तद्युगीन पाठकीय रुचि का विशेष ख्याल रखा है। उन्होंने न केवल अंग्रेजी, बांग्ला उपन्यास साहित्य से प्रभाव ग्रहण किया है बल्कि उनके औपन्यासिक शिल्प में भारतीय कथा-परंपरा के प्रभाव को आसानी से लक्ष्य किया जा सकता है। भारतीय कथा-परंपरा के सुखांत और उपदेशात्मक पद्धति का अनुसरण गोपालराम गहमरी ने अपने हर उपन्यास में किया है। उनके उपन्यासों का 'बयानों' में विभाजित होना भारतीय कथा की श्रव्य परंपरा के प्रभाव को ही दर्शाता है। उन्होंने तद्युगीन बोलचाल की भाषा का व्यवहार करते हुए अपने उपन्यासों का सृजन किया है। पात्रों के संवाद में उन्होंने भाषा की वर्गीय सामाजिकता का विशेष ख्याल रखा है। चूँकि तद्युगीन हिंदी अपने मानक रूप में स्थिर नहीं थी इसलिए भाषा संबंधी प्रयोग में गोपालराम गहमरी के यहाँ व्यवहृत भाषा को खड़ीबोली के विकास के प्रथम सोपान के अंतर्गत देखा जा सकता है। उन्होंने अपने साहित्य में युगीन व्यवहृत भाषा का प्रयोग करते हुए मुहावरों, लोकोक्तियों और गीतों की योजना के माध्यम से भाषा के प्रवाह को बनाए रखा है। संवाद योजना के माध्यम से उन्होंने कथा को पर्याप्त नाटकीयता देने की कोशिश की है। यह उनके औपन्यासिक शिल्प की विशेषता ही थी कि उस दौर में उन्हें लेखन के क्षेत्र में व्यावसायिक सफलता भी प्राप्त हुई। उन्होंने अपने उपन्यासों में पाठकों के मनोरंजन का ध्यान रखते हुए तद्युगीन समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, स्त्री की दशा, पारिवारिक जीवनमूल्यों आदि का भी यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने पाठक को जासूसी कथा के माध्यम से नवीन और रोचक सामग्री देने के साथ-साथ उपन्यास को कोरी चमत्कारी वृत्ति से अलग यथार्थ के धरातल पर लाने की सफल कोशिश की। अपने उपन्यासों में उन्होंने अराजकता के बीच कानून और न्याय के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए पाठक को सदाशयता, ईमानदारी के लिए प्रेरित किया है साथ ही पाठकों को अपराध-वृत्ति से बचने की सलाह भी दी है।

अध्याय : पाँच

जासूसी उपन्यास : दशा और दिशा

साहित्येतिहास में जासूसी उपन्यासों का एक विशेष स्थान है, जो उसके रचना रूपों की उपस्थिति, चरित्रों की अवधारणा, अपराध के मनोविज्ञान और पाठक की उपस्थिति के कारण महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इस दृष्टि से पश्चिम की साहित्यालोचना में जासूसी उपन्यासों का विश्लेषण गंभीरता पूर्वक किया गया है । अर्नेस्ट मैंडल से लेकर कार्ल मार्क्स ग्राम्शी, लियो लावेंथल और फ्रायड जैसे विचारकों ने इस पर विचार किया है। "मैंडल ने जासूसी उपन्यासों के सामाजिक इतिहास के साथ-साथ साहित्य के इतिहास में उनके प्रेरणा स्रोतों पर भी विचार किया है । उनके अनुसार आधुनिक जासूसी उपन्यासों के पीछे सदाचारी डाकुओं की पुरानी लोकप्रिय कथाओं की परंपरा है। पूंजीवाद के आरंभिक दौर में सामंतशाही के विरुद्ध सदाचारी डाकुओं के विद्रोह को बुर्जुआ वर्ग की सहानुभूति मिली । उस काल के उपन्यासों में उनका सहानुभूतिपूर्ण चित्रण हुआ है। लेकिन बुर्जुआ वर्ग के विजय के साथ बड़े शहरों के विकास और बुर्जुआ वर्ग के लिए खतरनाक वर्गों के उदय के बाद स्थिति बदल गई । पहले दमनकारी सामंतशाही और सहज न्याय भावना के बीच जो अंतर्विरोध था वह बाद में बुद्धिवादी बुर्जुआ व्यवस्था से उग्र भावनाओं का विरोध बन गया। सदाचारी डाकू की जगह कोई अपराधी या जासूस आ गया । जासूसी उपन्यासों के अधिकांश पाठक नये मध्य वर्ग के व्यक्ति होते हैं; तकनीकी विशेषज्ञ, ऑफिस के बाबू, अधिकारी, वकील, अध्यापक, कम पढ़े-लिखे दुकानदार आदि। इनमें से कुछ अपने काम से आई ऊब से मुक्त होने के लिए ऐसे उपन्यास पढ़ते हैं। कुल मिलाकर जासूसी उपन्यासों से पूंजीवादी व्यवस्था को विचारधारात्मक समर्थन मिलता है।"[1] इस तरह मैंडल ने जासूसी उपन्यासों का विश्लेषण पूंजीवादी व्यवस्था, उसके सामाजिक आधार और अर्थ के आधार पर किया। वहीं कार्ल मार्क्स ने जासूसी उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में अपराध की सामाजिक भूमि और भूमिका का विश्लेषण किया । ग्राम्शी ने जासूसी उपन्यासों की पठनीयता के कारणों की पड़ताल करते हुए माना कि -"उसमें मानवीय भावों की तात्कालिकता

[1] .साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पांडेय, पृष्ठ- 321

होती है जो पाठकों के मन को जल्दी छूती है । दूसरा कारण आधुनिक समाज में जीवन की स्थितियां हैं । प्रायः लोग जीवन की व्यवस्थाबद्धता, जकड़-बंदी और आरोपित अनुशासन से मुक्त होने के लिए फैंटसी और सपनों का सहारा लेते हैं, जो इन उपन्यासों में बहुतायत से मिलते हैं ।"[2] इस तरह हम देख सकते हैं कि पश्चिम की समाजशास्त्रीय आलोचना पद्धति में इस तरह के लोकप्रिय उपन्यासों पर विधिवत रूप से चर्चा हुई है । किंतु हिंदी की साहित्यिक आलोचना में शास्त्रीय पूर्वाग्रह के दवाब में इस तरह के उपन्यासों को लुगदी साहित्य कहकर नकार दिया गया ।

हिन्दी में जासूसी उपन्यास का आशय लुगदी और फुटपाथी साहित्य माना जाता है । इस पूर्वाग्रह के कारण अकादमिक अध्ययन केंद्रो में इस पर कोई गंभीर विश्लेषण नहीं किया जा सका । लोकप्रियता को साहित्यिक मूल्यों के ह्रास के साथ देखा जाना इन उपन्यासों के प्रति उदासीनता का एक प्रमुख कारण है । लेकिन आज जरूरत है कि इस पूर्वाग्रह से मुक्त होकर पश्चिम की तरह भारतीय परिवेश में इसका ऐतिहासिक मूल्यांकन संभव हो । मैनेजर पांडेय इस परिप्रेक्ष्य में लिखते हैं, कि -"हिंदी में ऐसे अध्ययन की बहुत संभावना और जरूरत है । यहाँ उन्नीसवीं सदी में प्रेस, प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओं के विकास के साथ गद्य विधाओं के विकास के संबंध को समझने के लिए उस समय के पाठक वर्ग और उसकी मानसिकता का विश्लेषण आवश्यक है । लेकिन ऐसे अध्ययन में सबसे बड़ी बाधा है साहित्य संबंधी अभिजनवादी दृष्टि जो लोकप्रिय साहित्य और उसके पाठकों को विचार के लायक नहीं मानती । इस दृष्टिकोण के लोग यह समझ नहीं पाते कि लोकप्रिय साहित्य ही उस पाठक का निर्माण करता है जिसके अभाव में महत्त्वपूर्ण साहित्य भी नहीं लिखा जा सकता ।"[3]

कहना न होगा कि हमें इस अभिजनवादी दृष्टि को त्याग कर साहित्य की समग्रता को ध्यान में रखते हुए जासूसी उपन्यासों की ऐतिहासिक अनिवार्यता पर विचार करना

[2] . वही, पृष्ठ- 326
[3] . वही, पृष्ठ- 26-27

चाहिए । अपराध जासूसी उपन्यासों के केंद्र में है । इन उपन्यासों में जिस रूप में अपराध, घटनाओं और युगीन मूल्यों का वर्णन किया गया है वह सामाजिक अध्ययन के हिसाब से बहुत महत्त्वपूर्ण है । कहना न होगा कि अपराध एक पूरा तंत्र पैदा करता है जिसमें प्रशासन से लेकर न्याय तंत्र सब आते हैं । इन सब की पड़ताल के माध्यम से जासूसी उपन्यास समाज में इस तंत्र के विकास और श्रम विभाजन को समझने का अवसर भी प्रदान करता है । समाज के उद्भव के साथ ही अपराध के उद्भव को भी देखा जा सकता है । हिंदी में जासूसी उपन्यास भले ही उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध की देन है लेकिन संस्कृत में जासूस के लिए 'गुप्तचर' शब्द का प्रयोग आरंभ से ही देखा जा सकता है । चाणक्य ने राजनीति में गुप्तचरों की भूमिका और उसके महत्त्व की व्याख्या की है । वे गुप्तचरों को राजा की विशेष शक्ति के रूप में देखते हैं । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सामाजिक स्थितियों को देखें तो अपराध वृत्ति के कारणों की पड़ताल की जा सकती है । इस संदर्भ में प्रदीप सक्सेना जो सामाजिक सूत्र देते हैं वह अवलोकनीय है । वे लिखते हैं –

- "राजाओं, नवाबों, ताल्लुकेदारों में परस्पर झगड़े नैमित्तिक कर्म थे । लोग इन झगड़ों से त्रस्त थे ।"[4]
- "तमाम वे परिवार जो मुगलों के 'काल' में पीड़ित और अपमानित रहे थे, वे पुनः स्वतंत्र होने के लिए छटपटा रहे थे । भीतर-ही-भीतर षड्यंत्र चल रहा था ।"[5]
- "कम्पनी की फौज विहार को कुचल चुकी थी, उसके प्रभाव जनता पर पड़ रहे थे । ठग, चोर, डाकू, लुटेरों का साम्राज्य कायम हो गया था ।"[6]

इन सूत्रों के हवाले से यह बात कही जा सकती है कि उस दौर में चोरी, डकैती, लूट-मार और ठगी की घटनाएँ आम बात थी । पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ अपराध-वृत्ति में बढ़ोतरी भी हुई । बहुत से व्यापारी, जमींदार और पुलिस जासूसों की मदद लेते थे । तिलस्मी

[4]. तिलस्मी साहित्य का साम्राज्यवाद-विरोधी चरित्र, प्रदीप सक्सेना, पृष्ठ- 33
[5] .वही, पृष्ठ- 33
[6] .वही, पृष्ठ- 33

कृतियों में जहाँ कल्पना की अस्वाभाविकता और अतिरंजन का बाहुल्य था वहीं जासूसी उपन्यास यथार्थ के धरातल पर लिखी गई कृतियाँ हैं । जिसमें तद्युगीन समाज प्रतिबिंबित है । हिंदी के प्रारंभिक जासूसी उपन्यासों में हिंदी पट्टी के मानसिक संस्कार का दवाब भी सहज ही देखा जा सकता है जो इसे पश्चमी जासूसी उपन्यासों से अलगाता है । तद्युगीन सामाजिक, धार्मिक मूल्य इन उपन्यासों में सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है । गौरतलब है कि जासूसी उपन्यासों का गंभीर विश्लेषण संभव न हो पाना साहित्यिक प्रतिमानों के सामाजिक सरोकारों का प्रतिफलन है । लेकिन आज लोकप्रिय साहित्य पर फिर से बहस शुरू हुई है । विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्क्रम में इन उपन्यासों का शामिल होना इसकी पुष्टि करता है । इन उपन्यासों का विश्लेषण साहित्येतिहास में इन उपन्यासों की भूमिका और तद्युगीन मूल्यों को समझने में सहायक सिद्ध होगी । "यह वह सोपान है जहाँ तक पहुँचे बिना हिन्दी उपन्यास उन्नति के उच्च शिखरों की ओर नहीं बढ़ सकता था । अतः यह मानना श्रेयस्कर होगा कि कुतूहलप्रधान उपन्यास साहित्य ने ही साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास नामक साहित्य –विधा की प्रतिष्ठा की ।"[7]

5.1. जासूसी उपन्यास : एक अध्ययन

जासूसी उपन्यास एक घटनाप्रधान उपन्यास है । अपराध की घटनाएँ इसके केंद्र में होता है । प्राचीन भारतीय साहित्य में गुप्तचर और जासूसी प्रवृत्तियों के कई उल्लेख हमें देखने को मिलते हैं । लेकिन साहित्यिक विधा के रूप में जासूसी उपन्यास आधुनिक युग की ही देन है । इसका आगमन यूरोप से बांग्ला और बांग्ला से हिंदी में हुआ । इसकी लोकप्रियता के कारण हिंदी से इतर अन्य भारतीय भाषाओं में भी जासूसी उपन्यास लिखे गए । ज्ञानचंद जैन लिखते हैं –

[7] . आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, डॉ. श्रीकृष्ण लाल, पृष्ठ- 276

"सभी देशों तथा समाजों में अपराध कथाओं का प्रेमी पाठक वर्ग पाया जाता है। खून, डकैती, चोरी आदि की कथाओं में, जो जासूसी उपन्यासों का प्रधान विषय होता है, मनुष्य का मन बाँध लेने की सहज क्षमता होती है। जासूसी उपन्यास-लेखक भी चतुर कथा-शिल्पी होता है। उसकी कथा में युगीन समाज की झलक होती है। उसकी कथावस्तु के गठन में पाठकों की कौतूहल वृत्ति को जागृत रखने का कौशल होता है। उपन्यास के मुख्य तत्त्व चरित्र-चित्रण का समावेश उसमें भी होता है।"[8] जासूसी उपन्यासकार समाज में मौजूद आपराधिक वृत्तियों को ही अपने उपन्यास का आधार बनाता है। इसके अंतर्गत उपन्यासकार कौतूहलता को अंत तक बनाए रखते हुए तद्युगीन सामाजिक मूल्यों को अपने चरित्रों के सहारे वर्णित करता है। समाज की जटिलता और जासूसी उपन्यास के संबंध में डॉ. विमलेश आनन्द लिखते हैं, कि- "ज्यों-ज्यों मानव जीवन जटिल होता गया, उसे अपने मनोरंजन, कुतूहलवर्द्धन तथा रोमांच की अनुभूति के लिए अधिक जटिल कथाओं की आवश्यकता अनुभव हुई। परिणामस्वरूप विकास की स्वाभाविक गति के अनुसार कथाकार कुतूहल-प्रधान कथा-साहित्य में विषयपरक सरलता की ओर तो अग्रसर हुए किन्तु उनका वस्तु-विधान जटिल होता चला गया। जासूसी उपन्यास उसी जटिल समाज और विकसित कथा-साहित्य की देन है। सभ्यता के आदि युग में धन, शक्ति और कामिनी के लिए मानव समाज में होने वाला संघर्ष अवैधानिक नहीं माना जाता था। अतः प्रतिद्वंद्वियों के बीच खुलेआम लड़ाई होती और अपने शारीरिक बल से जो विजयी होता, वही अपने अभीष्ट प्राप्ति का अधिकारी माना जाता; किन्तु आज के सभ्य युग में अधिकार का औचित्य शारीरिक बल द्वारा नहीं, राज्य के विधान द्वारा तय होता है परिणामस्वरूप मनुष्यों को चोरी करनी पड़ती है, डाका डालना पड़ता है और हत्या करके फरार हो जाना पड़ता है। इस प्रकार आज चोरी, डाका, हत्या रहस्यमय घटनाएँ हो गई और अपराधियों को पकड़ने के लिए पुलिस को जो हथकंडे व्यवहार में लाने पड़ते हैं उनका विवरण स्वयं ही एक कुतूहलवर्द्धक विषय हो गया। अतः आधुनिक लेखक ने आधुनिक समाज की जटिलता के अनुरूप जासूसी कथा लिखना

[8]. प्रेमचन्द-पूर्व के हिंदी उपन्यास, ज्ञानचंद जैन, पृष्ठ- 166

प्रारंभ कर दिया और जासूसी साहित्य सर्वाधिक मनोरंजक व आधुनिक पाठक की दृष्टि से सर्वोत्तम कुतूहलप्रधान साहित्य सिद्ध हुआ ।"[9] वहीं वे आगे लिखते हैं –"किसी रहस्य को खोलने की मानव प्रवृत्ति नई नहीं है । कठिन से कठिन समस्याओं को सुलझाने में उसे अपूर्व रस मिलता है । सारे संसार में पहेलियाँ और बुझौवल का खूब प्रचलन है । जासूसी उपन्यासों में मानव की कुतूहल, जिज्ञासा, कठिन समस्या का हल खोज निकालने व पहेलियाँ-बुझौवल सुलझाने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं ।"[10] अतः कहा जा सकता है कि रहस्य को सुलझाने की मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति जासूसी उपन्यासों की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण है ।

जासूसी उपन्यासों की प्रवृत्तिगत विशेषताओं की बात करें तो निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं-

- कथा के केंद्र में अपराध संबंधी कोई घटना होती है । जिसके इर्द-गिर्द पूरा उपन्यास रचा जाता है ।
- उपन्यास में रोमांच का पूरा ध्यान रखा जाता है । इसके लिए अपराधी का खुलासा अंत तक बना रहता है । कई बार अपराधी का खुलासा कर दिया जाता है लेकिन उसे पकड़ने के निमित्त जासूस के प्रयत्न और संघर्ष से कथा में रोमांच विकसित किया जाता है ।
- जासूसी कथाओं के अधिकतर जासूस निजी व्यवसाय के रूप में जासूसी कार्य करते हुए नजर आते हैं । जिसकी सहायता बड़े व्यापारी वर्ग के लोग और पुलिस अधिकारी भी लेते हैं ।
- प्रायः इन जासूसी उपन्यासों में प्रमुख जासूस का एक सहायक होता है जो अपराधी को पकड़ने, सबूत जुटाने आदि में प्रमुख जासूस की मदद करता है ।

[9] . हिन्दी के कुतूहलप्रधान उपन्यास, डॉ. विमलेश आनन्द, पृष्ठ- 40-41
[10] . वही, पृष्ठ- 41

- हिंदी के जासूसी उपन्यासों में वेश परिवर्तन पर बहुत जोर दिया गया है। इन उपन्यासों में अपराधी से लेकर जासूस तक वेश बदलने में माहिर है। यहाँ पर तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास के प्रभाव को लक्ष्य किया जा सकता है।
- इन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण संबंधी धारणाएँ मनुष्य की सत्-असत् प्रवृत्तियों पर आधारित हैं।
- जासूसी उपन्यासों में पत्र-शैली का प्रयोग अमूमन हर उपन्यासकार के यहाँ दिखाई देता है।
- इन उपन्यासों में प्रगतिशील चरित्रों का भी चित्रण मिलता है। जो उपन्यासकार के जीवन मूल्यों को रेखांकित करते हैं।
- विश्व-युद्ध जैसी अंतरराष्ट्रीय घटनाओं ने जासूसी उपन्यासों को वैश्विक धरातल प्रदान किया। जिससे इन उपन्यासों के कथानकों में वैश्विकता का समावेश हुआ।
- वैश्विक स्तर पर कार्य कर रहे जासूसी विभागों जैसे- अंतर्राष्ट्रीय अपराध पुलिस संगठन (INTERPOL), उत्तर अटलांटिक संधि संगठन(NATO), संघीय जाँच ब्यूरो(FBI), केंद्रीय खुफिया एजेंसी(CIA), रिसर्च ऐंड एनालिसिस विंग(RAW) आदि ने जासूसी उपन्यासों को विश्वसनीयता प्रदान की। भारत में भी स्वातंत्र्योत्तर हिंदी जासूसी उपन्यासों में इस वैश्विकता की झलक मिलती है। जिसमें जासूस विदेशों में देश के हित में अपनी जान जोखिम में डालकर जुटा होता है।
- जासूसी उपन्यासों में उपन्यासकार न्याय प्रणाली की हायरार्की का भी वर्णन करता है जिससे पाठक को न्याय व्यवस्था को समझने में मदद मिलती है।

स्वतंत्रता पूर्व हिंदी के जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी, हरिकृष्ण जौहर, दुर्गाप्रसाद खत्री, रामप्रसाद लाल, जयरामदास गुप्त, रामलाल वर्मा, श्री त्रिलोकीनाथ खन्ना, ठाकुर जंग बहादुर सिंह, श्री बालमुकुन्द वर्मा, गोपाल प्रसाद, रुद्रदत्त शर्मा, गौरचरण

गोस्वामी, माधव केसीट आदि नाम प्रमुख हैं। इस युग के जासूसी उपन्यासकारों और उपन्यासों पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. कृष्णा मजीठिया ने जो निष्कर्ष निकला वह निम्नवत हैं:

1. "इस युग के प्रायः सभी जासूसी उपन्यासकार न्यूनाधिक रुपेण अंग्रेजी की जासूसी परम्परा से प्रभावित हैं।"[11]
2. "इस युग के जासूसी उपन्यासकारों ने उपन्यास की घटनाओं को कल्पना के क्षेत्र से हटाकर वास्तविकता के क्षेत्र में लाने का सफल प्रयत्न किया। अतः ये जीवन के अधिक निकट हैं।"[12]
3. "घटनाओं की वास्तविकता के बावजूद भी तत्कालीन तिलस्मी प्रभाव से इन्हें मुक्ति नहीं मिल सकी।"[13]
4. "इन उपन्यासों का उद्देश्य मात्र लोकरंजन प्रस्तुत करना ही नहीं था, अपितु जन-सामान्य में कानून और न्याय के प्रति गहरी आस्था प्रकट करना भी था।"[14]
5. "जासूसी होते हुए भी इन उपन्यासों में कोई चित्र अग्राह्य नहीं है। अतः वैचित्र्य का अभाव और समान रहस्य की अवतारणा है।"[15]
6. "अंग्रेजी और बांगला के जासूसी उपन्यासों की तुलना में इन उपन्यासों में स्तरीयता का आभाव है।"[16]
7. "हिंदी में जासूसी उपन्यासों की तीव्र मांग ने उपन्यास विधा के विकास की दिशाएँ प्रस्तुत कीं। एतदर्थ, इनका ऐतिहासिक महत्त्व है। किसी भी रहस्यमय

[11] .हिन्दी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यास, कृष्णा मजीठिया, पृष्ठ- 118
[12].वही, पृष्ठ- 118
[13]. वही, पृष्ठ- 118
[14] .वही, पृष्ठ- 118
[15]. वही, पृष्ठ- 118
[16]. वही, पृष्ठ- 118

उपन्यास को 'जासूसी उपन्यास' का लेबल लगा दिया जाता था, ताकि उसके विक्रय में सुविधा रहे ।"[17]

कहना न होगा कि हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में पुनरुत्थानवादी विचार देखने को मिलते हैं । यह वैचारिकता जासूसी उपन्यास धारा के लेखकों में भी दिखाई देता है । गोपालराम गहमरी के यहाँ भी हिंदू पुनरुत्थानवादी मूल्य कमोबेश दिखाई देता है । इस आलोक में 'चंद्रकांता संतति' पर बात करते हुए देवकीनंदन खत्री के बारे में वागीश शुक्ल लिखते हैं – "मेरा मानना है कि नवजागरण के एक मूल प्रश्न- हम (हिन्दू) कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी- को भी उन्होंने हल करने की चेष्टा की है और अपने अनेक अन्य समकालीन हिन्दी लेखकों के समान ही यह माना है कि अंग्रेजी शासन ने हिन्दुओं को इस्लामी शासन की जकड़ से छुड़ाया तथा यह अवसर दिया कि हिन्दू अपना गया हुआ गौरव फिर पा सकें ।"[18] पुनरुत्थानवादी विचारधारा का यही प्रश्न हिंदी बनाम उर्दू भाषा विवाद में भी देखा जा सकता है । हालांकि उस दौर के तिलस्मी-जासूसी उपन्यासकारों ने भाषाई स्तर पर हिंदी-उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी का ही प्रयोग किया है जो आम बोलचाल की भाषा थी । इससे इतर पारिवारिक संरचना, धर्म, पाप-पुण्य, कर्म आदि विषयक धारणाओं में पुनरुत्थानवादी मूल्य की झलक यहाँ देखी जा सकती है । उन्होंने स्त्री के पतिपरायण रूप को मान्यता दी है । इसे इस रूप में भी देखा जा सकता है कि हिंदी पट्टी में नवजागरण की लहर बंगाल के बरक्स देर से पहुँचती है । आरंभिक जासूसी उपन्यासकारों ने देश में फैली अव्यवस्था के साथ-साथ अंग्रेजी प्रशासन और तत्कालीन प्रशासन व्यवस्था के प्रति आम जनता की भावना को भली भांति दर्शाया है । गोपालराम गहमरी 'हत्या और कृष्णा' में अंग्रेजी प्रशासन की सख्ती का वर्णन करते हैं- "क्या करें कुछ अकल काम नहीं करती । करें तो कैसे,कभी अकल से काम लेने का मौका ही नहीं आया । जहाँ रहे खुशामद से अफसरों को तोप दिया, बुलडाग का जोड़ा, रामपुर ग्रेहाउंड, पानियर,

[17]. वही, पृष्ठ- 118
[18] .चन्द्रकान्ता (सन्तति) का तिलिस्म, वागीश शुक्ल, पृष्ठ- 49

टेरियर कुत्तों की भेंट दे-देकर काम चलाया । डालियों से मेम साहबों को खुश रखा, लेकिन जब से ब्रामली साहब की कड़ी नज़र पड़ी तभी से मेरे कपार पर सनीचर आये । यह साहब किसी तरह हाथ में नहीं आता । खाली काम चाहता है । अब तो ऐसे ही काम देखने वाले आते हैं ।"[19]

अंग्रेजी प्रशासन की सख्ती और चोर-डाकुओं से सुरक्षा की नीति के कारण यह आम धारणा तद्युगीन जनता में दिखाई देती है कि अंग्रेजी प्रशासन अच्छी है । विमलेश आनंद लिखते हैं –"चोर-डाकुओं से जन-जीवन को सुरक्षित करने की नीति तथा देश में रेल, डाक-तार के प्रचार ने इस देश की जनता को किस प्रकार अंग्रेजी-शासन भक्त बना डाला, इस बात के प्रमाण सारे कुतूहलप्रधान साहित्य में स्थान-स्थान पर मिलते हैं । गहमरी जी के उपन्यासों में तो इस प्रकार के प्रसंगों की खूब प्रचुरता है जिससे ज्ञात होता है कि अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा प्रताप इत्यादि की धाक अच्छी तरह जन-साधारण के मन पर बैठ गई थी । जनता अपने शासकों से प्रसन्न थी ।"[20]

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी जासूसी उपन्यासों का विशिष्ट महत्त्व है । मनुष्य में अपराध वृत्ति के जन्म लेने के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है । जासूसी उपन्यास में यह संभावना होती है कि उपन्यासकार अपराध वृत्ति की मनोवैज्ञानिक पड़ताल कर सकें । लेकिन हिंदी के जासूसी उपन्यासों में अभी तक इस प्रवृत्ति का अभाव है । इस दृष्टि से मानसिक परिवर्तन की दिशा में अपराधी के सत्चरित्र निर्माण को दिखाने में दुर्गाप्रसाद खत्री और गोपालराम गहमरी का जासूसी साहित्य अवलोकनीय है ।

5.2. स्वातंत्र्योत्तर जासूसी उपन्यास :

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी जासूसी उपन्यास लेखन व्यावसायिक लेखन के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करता है । बकौल कृष्णा मजीठिया "हिंदी जासूसी कथा साहित्य में सन् 1935 से

[19] .हत्या और कृष्णा, गोपालराम गहमरी, पृष्ठ- 6
[20] . हिन्दी के कुतूहलप्रधान उपन्यास, विमलेश आनंद, पृष्ठ-187-188

1945 तक के संक्रान्ति काल के पश्चात्, नयी आशा का आविर्भाव हुआ । सन् संतालीस के पश्चात् मानों बांध तोड़कर जासूसी उपन्यासों की धारा बाढ़ बनकर बह चली । उसके साथ ही बहुत-सा कूड़ा-कचरा भी अनवरोध बहता गया ।...जासूसी उपन्यासों की बाढ़ में वे सभी तत्व दिखायी देते हैं जिन्होंने हमारे व्यापार जगत के काफी बड़े हिस्से में प्रवेश कर लिया है- मिलावट, चार सौ बीसी, चोरी के अथवा नकली माल पर असली माल का लेबल लगाकर बाजार में चालू करने की प्रवृत्ति और नैतिकता का अभाव । इन उपन्यासों में उन सभी का पर्दाफाश किया गया है जो सादगी और सरलता का मुलम्मा चढ़ाकर समाज को धोखा देते हैं । राजनीति के क्षेत्र में विशेषतः पाकिस्तान, चीन, जापान और अमेरिका के संबंधों की चर्चा की गयी है । नवीन वैज्ञानिक खोजों को भी कतिपय उपन्यासों का वर्ण्य विषय बनाया गया है ।"[21]

कहना न होगा कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले जासूसी घटनाओं ने उपन्यासकारों को इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर जासूसी उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित किया । जिसका मूल स्वर राष्ट्रवादी था । जासूसी उपन्यासों के प्रभाव पर अपनी बात रखते हुए प्रियदर्शन लिखते हैं- "दूसरों की नहीं जानता, लेकिन मेरी साहित्यिक मनोरचना और अभिरुचि के विकास में जासूसी और अपराध कथाओं का भी अच्छा खासा हाथ रहा है । बचपन से ही जासूसी उपन्यास मेरे साथ रहे । राजन इकबाल सीरीज़ वाले एससी बेदी के बाल पॉकेट बुक्स सबसे प्रिय रहे । मिलने पर रायजादा की राम-रहीम सीरीज़ भी पढ़ लेता था । लेकिन जल्द ही इन बाल जासूसी उपन्यासों का साथ छूट गया । कर्नल रंजीत और इब्ने सफी के उपन्यास चले आए । इनके साथ कुशवाहा कांत, कुमार कश्यप, ओम प्रकाश शर्मा, वेद प्रकाश शर्मा और वेद प्रकाश कांबोज के उपन्यास पढ़ता रहा । सच तो यह है कि ओम प्रकाश शर्मा के उपन्यासों ने शीत युद्ध की वैश्विक राजनीति की मेरी पहली समझ बनाई । इस राजनीति में भारत और रूस के जासूस एक तरफ हुआ करते थे और पाकिस्तान-चीन-अमेरिका और इंग्लैंड के दूसरी तरफ । सीआईए

[21] . हिन्दी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यास, कृष्णा मजीठिया, पृष्ठ- 119

और केजीबी जैसी खौफनाक संस्थाओं के नाम पहली बार इन्हीं उपन्यासों में मिले । उगांडा, ईदी अमीन, लीबिया, कर्नल गद्दाफ़ी- इन सबसे पहला परिचय उन्हीं दिनों हुआ । कर्नल विनोद, कैप्टन, हमीद, राजेश, विक्रांत, विशाल, जगन जैसे जासूस तरह-तरह से कातिलों को पकड़ते रहे, देश के दुश्मनों से हमें बचाते रहे, अपनों के बीच छुपे परायों की पहचान करते रहे और उन अपराधी चेहरों को सामने लाते रहे और हमारा मन बहलाते रहे ।"[22] गौरतलब है कि इस दौर के सभी जासूसी उपन्यासकारों पर एक ओर इयान फ्लेमिंग के मशहूर जासूस 'जेम्स बॉन्ड' का असर रहा तो वहीं दूसरी ओर इब्ने सफी का भी प्रभाव पड़ा ।

इस दौर के जासूसी उपन्यासकारों में एम. एल. पाण्डेय, श्री कपिलदेव एम. ए., कैलाशनाथ गुप्त, सूर्य्या कमलानी, सरिता भारती, अवधेश नन्दन सिन्हा, युगल किशोर पाण्डेय, ओमप्रकाश शर्मा, एस.एन. कंवल, वेदप्रकाश कम्बोज, कर्नल रंजीत, चंदर, वेदप्रकाश शर्मा, सुरेन्द्र मोहन पाठक आदि प्रमुख हैं ।

समाज और देश का यथार्थ चित्रण एम. एल. पाण्डेय की रचनाओं में दिखाई देता है । "देशी रियासतों का विलयन तो हो गया था, किन्तु डाके इत्यादि में कमी नहीं हुई थी । ये डाकू रईस अमीरों के ही जवाहरात आदि लूटकर ले जाते थे । इनमें से कई डाकू हत्याएँ नहीं करते थे । केवल अमीरों का धन लूटकर गरीबों में बांट देते थे । जो डाकू पुलिस के लिए सिरदर्द थे, वही गरीबों के लिए एक प्रकार से वरदान स्वरूप होते थे । पुलिस जनता के पूर्ण सहयोग न मिलने के कारण इन्हें पकड़ने में असमर्थ होती थी । पुलिस कर्मचारी भी अपराधी दल से मिलकर चोरी या डाके में सहयोग देते थे । इन सबका ही वर्णन पाण्डेय की रचनाओं में मिलता है ।"[23] इस तरह से अपराधी का मसीहाई छवि इनके उपन्यासों में दिखाई देता है । जो प्रशासन के लिए अपराधी है तो वहीं आम गरीब जनता के लिए देवता । 'चार लाशें' उपन्यास में वर्णित

[22] .प्रियदर्शन(लेख), हम जासूसी उपन्यास क्यों पढ़ते हैं ?, हंस पत्रिका, वर्ष 31, अंक 8, मार्च 2017, पृष्ठ-179
[23] .हिन्दी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यास, कृष्णा मजीठिया, पृष्ठ- 120-121

अरुण इसी तरह का चरित्र है । लेखक उसके बारे में लिखता है-"अरुण डाकू था । संसार उसे बटमार कहता था । किन्तु वह ऐसे धनाड्यों को ही लूटता था जिनके पास आवश्यकता से अधिक संपत्ति होती थी । जो दुष्कर्मों द्वारा दीन-दुखियों को सताकर एकत्रित की जाती थी । फिर ऐसों को लूटकर वह केवल उतना ही अंश उस लूट का अपने था अपने सहयोगियों के लिए लेता था । जिससे केवल कुछ दिनों के लिए उन सबों की जीविका चल जावे । लूट का धन अधिकांशतः वह दीन दुखियों में बांट दिया करता था ।"[24] लेखक ने अरुण के अपराधी चरित्र के विश्लेषण से ज्यादा उसके मसीहाई व्यक्तित्त्व की ही प्रशंसा की है ।

श्री कपिलदेव एम.ए. बी भी इस दौर के प्रमुख जासूसी उपन्यासकार हैं । इनके उपन्यासों में चोरी, डकैती, हत्या संबंधी घटनाओं की प्रधानता है । 'खूनी लखपति', 'अंडमान का खजाना' इनके इसी तरह के उपन्यास हैं जिसके अंत में जासूस रहस्य का खुलासा करता है अपराधी को पकड़ता है । "इनके पात्रों में नवीनता है । अपराधी वर्ग का नेता समाज से अलग नहीं रहता । समाज में ही रहकर वह समाज की आँखों में धूल झोंकता है । इनके अपराधी अपने अपराधों के कारण ही धनी हैं । ये समाज में प्रतिष्ठित वर्ग के प्राणी हैं । वे सीधा डाका डालकर पुलिस को आकर्षित नहीं करते ।"[25]

इस दौर के जासूसी उपन्यासकारों में सूर्य्या कमलानी का नाम प्रमुख है । इन्होंने 'मौत के मुँह में', 'प्रेम का चक्कर', 'खूनी कौन', हीरे की चोरी', 'बैंक में डाका', 'खूनी चक्कर', 'जाली वसीयत' जैसे जासूसी प्रधान उपन्यासों की रचना की । "कमलानी के समस्त उपन्यासों में अपराधी प्रायः एक ही वर्ग के हैं । उनमें कोई भी निर्धन व्यक्ति नहीं है । वे सब सभ्य समाज के ही व्यक्ति हैं । अधिकतर हत्याओं का कारण धनलिप्सा ही है । 'मौत के मुँह में' चोरी करते पकड़े जाने पर राजवल्लभ ओझा अपने मालिक की ही हत्या कर देता है । कमलानी की रचनाओं में अपराधी खुद तो अपराध बहुत ही कम करता है, वह दूसरों से करवाता है । उसके अन्य

[24] .चार लाशें, एम.एल. पाण्डेय, पृष्ठ- 22
[25] .हिन्दी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यास, कृष्णा मजीठिया, पृष्ठ- 126

सहयोगी चोरी, हत्या, अपहरण और मारपीट आदि का कार्य करते हैं । अपराधी अपने बुद्धि कौशल से अपने पुर्जों द्वारा ही समस्त अपराध करवाता है ।...अपराधी दल के नेता की बुद्धि जासूस की बुद्धि से टक्कर लेती है । इस कारण उपन्यासों के कथानक रहस्यमय बने रहते हैं ।"[26]

सरिता भारती इस दौर की प्रमुख जासूसी उपन्यासकार हैं । इनकी रचनाओं में समसामयिकता का सफल चित्रण हुआ है । गरीबी अपराध वृत्ति को किस तरह बढ़ावा देती है, इसका चित्रण इनके उपन्यासों के केंद्र में है । आज के समाज में ऊँचे पदों पर बैठे लोग किस तरह देश सेवा के नाम पर अपराध करते हैं उसका यथार्थ वर्णन इनके यहाँ देखने को मिलता है । इनके जासूस बुद्धि चातुर्य से परिपूर्ण हैं । उनका सूक्ष्म निरीक्षण देखने लायक है । इनकी रचनाओं में रोमांस का भी चित्रण देखने को मिलता है ।

इस दौर में अवधेशनन्दन सिन्हा अपने जासूसी कथानकों के गठन और रोचकता के लिए प्रमुख हैं । "इस लेखक द्वारा रचित 'मौत की मल्लिका' में गौरिल्ला पशु की सहायता से अपराधी दल ने हत्याएं की हैं । इतना ही नहीं बल्कि अपराधी अपने को बचाने के लिए एक देश से दूसरे देश में जाने के लिए ऐसे रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग करता है, जिससे कि वह मृत ही प्रतीत होता है । इस प्रकार ममी केस में विदेशी पुलिस की दृष्टि से बचकर वह निकल जाता है । हिन्दी में इस प्रकार की योजना इस लेखक द्वारा नवीन ही कही जाएगी । नवीन प्रयोगों के कारण इनके कथानक उलझे हुए होते हैं । ...इस लेखक ने अन्य लेखकों की तरह जासूसी उपन्यासों का ढेर तो नहीं लगाया किन्तु जो भी लिखा है वह काफी सुन्दर बन पड़ा है ।"[27]

हिंदी जासूसी उपन्यास के विकास में युगलकिशोर पाण्डेय का योगदान महत्त्वपूर्ण है । इनके उपन्यास में भी अपराध का मुख्य कारण धनलिप्सा ही वर्णित है । "इस लेखक के पात्रों को मुख्यतः दो रूपों में बांटा जा सकता है । एक अपराधी वर्ग और दूसरा

[26] .वही, पृष्ठ- 131
[27] . वही, पृष्ठ- 136

अपराधी वर्ग का पता लगाने वाला जासूस । जिन पात्रों पर अपराधियों की आँख रहती है उनकी संख्या दो चार से ज्यादा नहीं होती और उनकी भी हत्या कर दी जाती है । अपराधी चतुर रहता है । हत्या या अपराध करते समय भी उसका ध्यान इस बात पर रह जाता है कि कहीं कोई बात न छूट जाए । या उससे कोई भूल न हो जाए जिसके बल पर उसे पुलिस पकड़ ले । अपराधी अकेला कोई कदम नहीं उठाता है । या तो वह किसी दल का सरदार होता है या अपने किराए के आदमियों से अपना काम निकाल लेता है । इनके अपराधी वर्ग में भी एक मुख्य व्यक्ति होता है जिसकी दिमागी मशीन काम करती है । शेष तो उसके सहायक ही होते हैं । जासूस अपनी बुद्धि से अपराधी के भूल पर ही सूत्र को पकड़ता है और अपराधी को खोज निकालता है ।"[28]

स्वातंत्र्योत्तर जासूसी उपन्यासकारों में ओमप्रकाश शर्मा का नाम उल्लेखनीय है । व्यावसायिक लेखन के तौर पर ही इन्होंने जासूसी उपन्यासों की रचना की । 'माधव सीरिज', 'राजेश सीरीज', 'जादूगर भुवन उपन्यासमाला' के अंतर्गत प्रकाशित इनके उपन्यासों में सामाज का यथार्थ चित्रण मिलता है । जासूसी उपन्यासों के अंतर्गत इन्होंने सामाजिक समस्याओं का भी सफल चित्रण किया है । नरोत्तम नागर लिखते हैं कि - "इनके उपन्यासों में एक बात और है, जिसका उल्लेख करना आवश्यक है और यह बात ऐसी है, जो न केवल उपन्यासों में ही बल्कि काफी दिनों से लिखे जा रहे अच्छे से अच्छे और उच्च कोटि के अन्य उपन्यासों में भी नहीं मिलती । यह उल्लेखनीय विशेषता है, सुखी दाम्पत्य जीवन का चित्रण, जिसमें प्रेम भी है, और जो बजाय घटने के बढ़ता ही जाता है ।"[29] 'मौत का तूफान', 'पागल वैज्ञानिक' और 'जगत और खूनी वैज्ञानिक' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं । समसामयिक यथार्थ की दृष्टि से भी इनके उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं जिसमें समाज में व्याप्त कुव्यस्थाओं का चित्रण हुआ है । 'मौत का तूफान' उपन्यास में प्रो. राजेन देश की बदहाली पर टिप्पणी करते हुए कहता है –"हर प्रांत में बेकारों की एक पूरी

[28] .वही, पृष्ठ-138

[29] .श्री नरोत्तम नागर (लेख), फुटपाथ के उपन्यास, आलोचना – उपन्यास विशेषांक, 1954, पृष्ठ- 202

फौज । भूख से लड़ते हुए जनमानस । रोटी के लिए आदमी को रिक्शे पर ढोने वाले आदमी । ऐसे खेतिहर मजदूर, जो अपने लिए पूरा पेट भोजन भी नहीं पाते । ...यह है असली भारत । एक ओर हमारे युवक डॉक्टरों का कहना है कि उनके लिए समुचित रोजगार के साधन नहीं हैं । दूसरी ओर सरकारी और खैराती अस्पतालों में रोगियों की लम्बी लाईनें । गाँवों की डिस्पेंसरी डॉक्टरों के बिना खाली पड़ी है । हर रोगी के लिए दवा कम, इलाज कम और इंतजार ज्यादा । रोगी ही क्यों, बेचारे मुर्दों को भी कभी-कभी बारह और चौदह घंटे अपने पोस्टमार्टम की प्रतीक्षा करनी होती है ।"[30] इन संदर्भों को आज भी हमारे देश की स्थिति पर ज्यों का त्यों लागू किया जा सकता है । बेरोजगारी, भूखमरी, स्वास्थ्य क्षेत्र में कुव्यवस्था आदि की स्थिति कमोबेश वैसी ही बनी हुई है ।

जासूसी उपन्यास लेखक के क्षेत्र में वेदप्रकाश कम्बोज भी एक महत्त्वपूर्ण नाम है । इन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक, वैज्ञानिक और राजनीतिक सन्दर्भों का समावेश किया है । 'मौत का इश्तहार', 'तीन हत्या', 'रेत का संगीत', 'धोखा और मौत', 'आग की लपटें', 'धीमा जहर', 'चीन में हंगामा', 'तिब्बत के विद्रोही' आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं ।

कर्नल रंजीत इस दौर के प्रमुख जासूसी उपन्याकार हैं । इन्होंने जासूसी उपन्यास लेखन को काफी लोकप्रिय बनाया । "कर्नल रंजीत के उपन्यास प्रायः सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिवेशों से संस्पर्शित हैं । उनमें कदाचित पहली बार यौन मनोविज्ञान और हिप्नोटिज्म से प्रभाव-जन्य अपराधों की खोज की गयी है । संपत्ति-लोभ और यौन वेदना व्यक्ति से भयानक एवं वीभत्स कोटि के अपराध करवा सकती है, इसका आभास हमें उनके 'टेढ़ी उँगलियाँ' और 'खूनी कंगन' जैसे उपन्यासों से हो सकता है । भद्र समाज में होने वाले ऐसे घृणित अपराधों पर शराफत और सादगी का जो मुलम्मा चढ़ा हुआ है, उन सभी का पर्दाफाश करते हुए रंजीत ने अपने उपन्यासों को वास्तविकता प्रदान की है । पर्दे के पीछे की

[30] .मौत का तूफ़ान, ओमप्रकाश शर्मा, पृष्ठ- 7

नग्नता का उद्घाटन ही रंजीत के उपन्यासों का मुख्य हेतु रहा है ।"[31] इनके उपन्यासों में संभवतः पहली बार महिला जासूस की उपस्थिति देखने को मिलती है । 'टेढ़ी उँगलियाँ' उपन्यास में जासूस मेजर बलवंत के साथ सहायक जासूस के रूप में सोनिया का चरित्र दिखाई देता है ।

चंदर इस दौर के उन जासूसी उपन्यस्कारों में उल्लेखनीय हैं जिन्होंने राजनीतिक और वैश्विक कथानकों को आधार बनाकर जासूसी उपन्यासों की रचना की । "अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर जासूसी रहस्यों का अवलोकन, विशेषतः राजनीति के क्षेत्र में जासूसी महत्त्व और शक्तियों का परिचय हमें चंदर के उपन्यासों से प्राप्त होता है । भारत और चीन के संबंधों को लेकर चंदर ने ऐसे अनेक उपन्यासों की रचना की है, जिसमें चीनी षड्यंत्रों, जालसाजों और गुप्त मंत्रणाओं का वर्णन किया गया है । इन उपन्यासों में चीन की धरती पर भारतीय जासूस के अदम्य उत्साह और पौरुष का सफल आलेखन किया गया है ।"[32] इनके उपन्यासों में राष्ट्रवादी मूल्यों का सफल चित्रण हुआ है । वैश्विक स्तर पर जासूस किस तरह से देश हित में कार्य कर रहे होते हैं उसका वर्णन इनके उपन्यासों में दिखाई देता है । कहना न होगा कि देश की सुरक्षा के दृष्टिकोण से राजनीतिक जासूसों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है ।

वेदप्रकाश शर्मा एक ऐसे जासूसी उपन्यासकार हुए जिन्होंने इस विधा में लिखते हुए खूब लोकप्रियता हासिल की । इनके लिखे हुए उपन्यासों ने आम जनमानस में अपनी पैठ बनाई । लोकप्रियता के कारण उनके उपन्यासों पर आधारित फिल्में भी बनी । सन् 1973 में इनका पहला उपन्यास छापा गया । इन्होंने लगभग 173 उपन्यास लिखें । इनके उपन्यास ऐसे विषयों पर केंद्रित होते थे, जो पब्लिक स्फेयर में ज्वलंत मुद्दों के तौर पर मौजूद होते थे । इनके उपन्यासों का नायक सामान्य परिवेश से उठकर आया आदमी होता था । यही वजह रही कि वे निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक में हर जगह पढ़े गए । शिष्ट साहित्य समाज में जहाँ इनके

[31] .हिन्दी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यास, कृष्णा मजीठिया, पृष्ठ- 147-148
[32] . वही, पृष्ठ- 152

उपन्यासों को सम्मान नहीं मिला वहीं आम पाठक समाज ने इनके लिखे को खूब सराहा। इनका लेखन व्यावसायिक लेखन की दृष्टि से एक उपलब्धि की तरह है।

इसी कड़ी में एक प्रमुख नाम सुरेन्द्र मोहन पाठक का आता है। इनकी सक्रियता आज भी बनी हुई है। अभी हाल ही में 'गैंग ऑफ़ फ़ोर' शीर्षक से इनका नया उपन्यास पेंगुइन प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। इनके द्वारा लिखित 'विमल सीरीज' के उपन्यासों ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। इन्होंने सुनील, सुधीर, विमल जैसे लोकप्रिय जासूसी चरित्रों का सृजन किया। इन्होंने 'पुराने गुनाह नये गुनाहगार', 'होटल में खून', 'बदसूरत चेहरे', 'ब्लेकमेलर की हत्या', 'हांगकांग में हंगामा', 'मूर्ति की चोरी', 'शैतान की मौत', 'रिपोर्टर की हत्या','रेड सर्कल सोसाइटी','हांगकांग के लूटेरे', 'मौत का खेल', 'पैंसठ लाख की डकैती', 'विमल का इंसाफ', 'चेम्बूर का दाता', 'क़त्ल का सुराग', 'बहुरुपिया', 'कोलाबा कांस्पीरेसी' जैसे अनेक उपन्यासों की रचना की।

गौरतलब है कि आजादी के बाद हिंदी में सामाजिक-रोमांटिक उपन्यासों का एक दौर देखने को मिलता है। कुशवाहा कांत, गुलशन नंदा, रानू सरीखे लेखकों ने रोमांटिक उपन्यासों के जरिए खूब लोकप्रियता अर्जित की। इसका प्रभाव इस दौर के जासूसी उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। जासूसी उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों में रोमांस को एक फार्मूले की तरह अपनाया। कहना न होगा कि आजादी के बाद लगभग 30 वर्षों तक लोकप्रिय साहित्य के अंतर्गत जासूसी उपन्यास लेखन केंद्र में रहा। लेकिन साहित्यालोचना में लोकप्रिय साहित्य को लेकर जो पूर्वाग्रह बना हुआ था वह ज्यों का त्यों बना रहा। गंभीर साहित्य अध्येताओं ने भी व्यावसायिक लेखन के तौर पर विकसित और पाठकों में लोकप्रिय हो रहे जासूसी उपन्यास पर विचार करना जरूरी नहीं समझा। एक तरफ गंभीर साहित्य लेखक पाठकों की कमी की बात करते रहे वहीं दूसरी तरफ जासूसी उपन्यास लेखकों ने लेखन को आजीविका का साधन बनाया और उसमें सफल भी रहे। जासूसी उपन्यास को लेकर नलिन

विलोचन शर्मा लिखते हैं –"जासूसी गल्प कोई हेय चीज़ नहीं, न हिंदी के पाठकों में इसकी माँग की ही कमी है । हिंदी के पाठक ही कुछ नहीं तो प्रतिवर्ष लाखों रुपए के अंग्रेजी जासूसी उपन्यास पढ़ डालते होंगे । अंग्रेजी में इसी बेहद माँग के कारण जासूसी गल्प, साहित्य का सम्मान्य नहीं तो उल्लेखनीय अंग बन ही चुका है । चेस्टरटन जैसे शरीर और बुद्धि से दिग्गज लेखकों ने जासूसी उपन्यास लिखे और कैनन डायल तो इस अंग के क्लासिकल राइटर हो चुके, आचार्य ही मान लिए गए हैं । साहित्य के इस अंग ने अंग्रेजी में इतनी उन्नति कर ली है कि साधारणतः कॉलेज की कहानियों की पाठ्य-पुस्तकों में एक-दो जासूसी कहानियाँ अवश्यमेव संगृहीत रहती हैं और उनकी विशेषताओं की आलोचना अध्यापक और आलोचक उसी प्रकार करते मिलेंगे, जिस प्रकार कविता, नाटक या उपन्यास कहानी की ।"[33] यह साहित्यिक स्वीकार्यता लोकप्रिय साहित्यकारों के लिए किसी उपलब्धि की तरह ही हुआ करती थी । सुरेन्द्र मोहन पाठक अपनी आत्मकथा 'हम नहीं चंगे बुरा न कोय' में जासूसी उपन्यासकार ओमप्रकाश शर्मा के बारे में लिखते हैं कि - "शर्मा जी को इस बात का बड़ा अभिमान था- होना भी चाहिए था- कि उनके उपन्यास अमृतलाल नागर, हंसराज रहबर, क्षेमचन्द्र सुमन, आनन्द प्रकाश जैन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, जवाहर चौधरी जैसे नामचीन साहित्यकार पढ़ते थे । नागर जी का उनके नाम प्रशंसा-पत्र को उन्होंने बाकायदा घर के हॉल कमरे में एक बुक शैल्फ के ऊपर फ्रेम कराकर रखा हुआ था ।"[34] स्वीकृति-अस्वीकृति के बीच इन लेखकों ने गंभीर साहित्यिक हिंदी समाज के समानांतर अपनी एक नई दुनिया बनाई जिसमें पाठक की ठोस उपस्थिति थी । जहाँ लेखक आम जनता की भाषा में जनता से संवाद करता रहा । लेकिन यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि फार्मूलाबद्ध लेखन के रूप में विकसित जासूसी विधा में जटिल कथानक का अभाव ही रहा । इसके पीछे के कारणों की पड़ताल करते हुए कात्यायनी लिखती हैं- "मेरा

[33] .नलिन विलोचन शर्मा,(लेख), जासूसी और ऐतिहासिक उपन्यास, त्रिमासिक साहित्य, वर्ष 4, अंक 1, पृष्ठ 144
[34] हम नहीं चंगे बुरा न कोय (आत्मकथा), सुरेन्द्र मोहन पाठक, पृष्ठ- 92

विचार है कि जासूसी उपन्यासों की इस दुरावस्था पर विशेष ऐतिहासिक-सामाजिक पृष्ठभूमि के साथ ही विचार किया जा सकता है। पश्चिम में पूँजी की दुनिया के ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ जो सभ्य समाज विकसित हुआ, उसमें सम्पत्ति-विषयक अपराधों, जटिल आपराधिक मानसिकता, रुग्ण मानसिकता, अपराधशास्त्र , विधिशास्त्र और फोरेंसिक साइन्स आदि का विकास हुआ । यही वह ज़मीन थी, जिसपर रहस्य-रोमांच और जटिल ताना-बाना वाले, साहित्यिक स्तर वाले जासूसी उपन्यासों का विकास हुआ। भारत में स्वतन्त्रता पश्चात काल में, विलम्बित और मंथर गति से जिस पूँजीवाद का विकास हुआ, उसमें प्राकपूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक संबंध लम्बे समय तक बने रहे। भारतीय पूँजीवाद ने मध्यकालीन संस्कृति और संस्थाओं को पुन:संस्कारित करके अपना लिया । अपनी प्राच्य विशिष्टताओं वाला भारतीय पूँजीवाद तर्कणा के मूल्यों से काफी हद तक रिक्त है। यही कारण है कि इस समाज में तिलस्म, जादू, भूत-प्रेत और सामान्य अपराध-कथाओं की ज़मीन ज्यादा व्यापक रूप में मौजूद है, जबकि जटिल अपराध-कथाओं की ज़मीन यहाँ बहुत कमज़ोर और संकुचित रूप में मौजूद है । ज्यादा उन्नत स्तर के जासूसी उपन्यास प्राय: उन्नत पूँजीवादी समाजों में ही लिखे जा सकते हैं, जहाँ सम्पत्ति-विषयक सम्बन्ध जटिल होते हैं और बुर्जुआ नागरिकों के मानस की रुग्णता तथा अन्तर-वैयक्तिक सम्बन्ध भी अधिक जटिल होते हैं । ऐसे समाजों में अपराधों और अपराध शास्त्र के अधिक जटिल स्वरूप विकसित होते हैं और उन्नत स्तर के जासूसी उपन्यासों की ज़मीन भी मौजूद रहती है और पाठक भी।"[35]

यह वह दौर था जब इस तरह के जासूसी उपन्यास छद्म नाम से भी छपा करते थे । पाठकों को आकर्षित करने के लिए उपन्यास का नाम भी आकर्षक रखा जाता था जो पाठकों

[35]. https://desharyana.in/archives/16356.

को लुभा सके । यहाँ प्रकाशक की उपस्थिति ज्यादा मजबूत थी । ऐसे ही एक वाकये का जिक्र करते हुए सुरेन्द्र मोहन पाठक लिखते हैं कि- "सितम्बर 1970 के 'लोकप्रिय लेखक' में मेरा सुनील सीरीज का उपन्यास 'पाकिस्तान की हसीना' छपा था जिसका मैंने नाम 'आपरेशन पाकिस्तान' रखा था लेकिन प्रकाशक महेन्द्र शर्मा की सनक थी कि उसने मुझे बिना बताए उपन्यास का नाम बदलकर 'पाकिस्तान की हसीना' रख दिया था जबकि नाम को सार्थक करने वाली कोई हसीना उपन्यास में थी ही नहीं ।"[36]

इस दौर में मेरठ जासूसी प्रधान उपन्यासों के प्रकाशन का केंद्र हुआ करता था । इसके साथ हिन्द पॉकेट बुक्स, तुलसी पॉकेट बुक्स, राज पॉकेट बुक्स, मनोज पॉकेट बुक्स जैसे प्रकाशन संस्थान इस विधा की पुस्तकें प्रकाशित कर रहे थे । आज भी इस तरह के प्रकाशन संस्थान हैं जो नए एवं पुराने जासूसी उपन्यासकारों को फिर से प्रकाशित करने का कार्य कर रहे हैं । दिल्ली में स्थित नीलम जासूस कार्यालय लोकप्रिय साहित्य के क्षेत्र में अभी भी सक्रिय है । यह प्रकाशन संस्थान लोकप्रिय जासूसी उपन्यासों के पुनर्मुद्रण को लेकर कार्यरत है । आज राजकमल जैसा प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान भी लोकप्रिय विधा के साहित्य को प्रकाशित कर रहा है । सन् 2020 में त्रिलोक नाथ पांडेय कृत 'चाणक्य के जासूस' उपन्यास का प्रकाशन राजकमल ने ही किया । त्रिलोक नाथ पांडेय स्वयं भारत सरकार की गुप्तचर विभाग में कार्यरत रहे हैं और इस पेशे के अच्छे-बुरे पक्ष को बहुत करीब से जाना-समझा है । यह उपन्यास दर्शाता है कि राजनीति में जासूसी एक अनिवार्य हथियार है। एक जासूस कभी-कभी अकेले या दो-चार जासूसों की सहायता से, वह कार्य कर जाता है जो एक सेना भी नहीं कर पाती है। कहना न होगा कि इस तरह की उपलब्धियों के बावजूद जासूस को सार्वजनिक रूप से वह सम्मान नहीं मिल पाता है जिसका वह हकदार है। इसका एक कारण यह भी है कि उसका जीवन, कार्यवृत्त से लेकर उसकी भूमिका भी प्रायः गोपनीय होती है। इसलिए एक जासूस के लिए यह भी संभव

[36] . हम नहीं चंगे बुरा न कोय (आत्मकथा), सुरेन्द्र मोहन पाठक, पृष्ठ- 105

नहीं है कि वह अपनी उपलब्धियों और कार्यप्रणाली को सार्वजनिक कर सके । उपन्यास की मूल संकल्पना चौथी शताब्दी के संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार विशाखदत्त के नाटक 'मुद्राराक्षस' से ली गई है। यह उपन्यास चाणक्य पर आधारित अन्य सभी उपन्यासों से अलग है। गौरतलब है कि चाणक्य एक महान विद्वान, दूरदर्शी, अर्थशास्त्री और शिक्षक होने के साथ ही 'गुप्तचर कला' के अद्भुत ज्ञाता भी थे । उन्होंने अपने शिष्यों को न केवल गुप्तचर्य विद्या में प्रवीण किया बल्कि उसका प्रयोग कर मगध के नंद साम्राज्य को पराजित कर चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्राट के रूप में स्थापित भी किया। ऐतिहासिक संदर्भों में जासूस की भूमिका के महत्त्व को रेखांकित करने वाला त्रिलोक नाथ पांडेय का यह उपन्यास ऐतिहासिक जासूसी उपन्यास की श्रेणी में एक उपलब्धि की तरह है । इस विधा की लोकप्रियता ही थी कि श्रीलाल शुक्ल जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकार 'आदमी का जहर' शीर्षक से जासूसी उपन्यास की रचना करते हैं । आज जरूरत है कि लोकप्रिय जासूसी उपन्यासों के मूल्यांकन हेतु हिंदी की समालोचना जगत में एक स्पेस का निर्माण हो । जिससे हिंदी साहित्य के विकास में इन उपन्यासों की भूमिका और योगदान पर बात संभव हो सके ।

5.3. जासूसी उपन्यास : दशा और दिशा

जासूसी उपन्यास की यह धारा हिंदी साहित्य के गंभीर साहित्यिक लेखन समानांतर अबाध गति से चलती रही । कहना न होगा कि सत्तर के दशक सामाजिक-राजनीतिक परिवेश थ्रिलर और जासूसी साहित्य के अनुकूल था । आजादी के बाद अब तक भारत दो युद्धों को देख चुका था । वैश्विक स्तर पर शीत युद्ध अपने चरम पर था । ऐसे परिवेश में जासूसी साहित्य आम लोगों की कौतूहल वृत्ति को खुराक देने का काम कर रही थी । आम पाठकों जिसमें निम्नमध्यवर्गीय तबका अपनी रोजमर्रा की जिंदगी से जूझते हुए इस तरह के उपन्यासों को पढ़कर आनंद ले रहा था । बहुत ही सस्ते दामों पर उपलब्ध इस तरह के उपन्यास

उसकी पहुँच में आते थे। इस तरह के उपन्यास उनके मनोरंजन का एक साधन था। शरद सिंह लिखती हैं-"ये उपन्यास आर्थिक दृष्टि से पाठकों के लिए 'बटुआ फ्रेंडली' होते थे। ये किराए पर उपलब्ध रहते थे, आधे और चौथाई मूल्य में भी खरीदे-बेचे जाते थे। कम मूल्य में अधिक पृष्ठों वाली ये रोचक पुस्तकें पाठकों को सहज ही आकर्षित करती थीं।"[37]

यह वह दौर था जब रेलवे व्हीलर्स, बस स्टैंड से लेकर फुटपाथ तक इन जासूसी उपन्यासों का बोलबाला था। अस्सी के दशक तक इस तरह के उपन्यासों की उपस्थिति ने पाठकों का खूब मनोरंजन किया। इसकी लोकप्रियता इस हद तक व्याप्त थी कि 'घोस्ट राइटिंग' का चलन शुरू हो गया था। एक ही उपन्यास कई छद्म नामों से छापे जाने लगे थे। प्रभात रंजन उस दौर में 'हिन्द पॉकेट बुक्स' की 'घरेलू लायब्रेरी योजना' का जिक्र करते हुए लिखते हैं –"इन पुस्तकों की स्मृतियों के साथ 'हिन्द पॉकेट बुक्स' की 'घरेलू लायब्रेरी योजना' का नाम जुड़ा हुआ है, जिसने हिन्दी प्रकाशन जगत में पॉकेट बुक्स छापकर क्रांति पैदा कर दी थी। 'घरेलू लायब्रेरी योजना' के तहत पाँच रुपए के वीपीपी से एक-एक रुपए की छह पुस्तकें भेजी जाती थीं। पोस्टेज फ्री होता था। इसकी सदस्य संख्या पौने छह लाख तक पहुँची थी। हर महीने औसतन अड़तीस हज़ार पैकेट भेजे जाते थे, तीन अस्थायी पोस्ट ऑफिस हिन्द पॉकेट बुक्स के कंपाउंड में 'घरेलू लाइब्रेरी योजना' के पैकेट भेजने के काम में लगे रहते थे।"[38] कहना न होगा कि वह पाठकों का दौर था। रीडरशिप का अभाव कोई खास मुद्दा नहीं था। यह वही दौर था जब वेद प्रकाश शर्मा का उपन्यास 'वर्दी वाला गुंडा' अपनी दस लाख प्रतियों की बिक्री के कारण चर्चा का विषय था। इस विधा में लेखक-पाठक के बीच का संवाद अनूठा था। इस संवाद धर्मिता का हवाला देते हुए प्रभात रंजन लिखते हैं-"इस विधा के लेखक हैं तो पाठक भी हैं। उन दोनों का आपसी रिश्ता है। लोकप्रिय लेखक अपने पाठकों का खास ध्यान रखते हैं। अपने 'लक्ष्य पाठकों'

[37]. शरद सिंह (लेख), हिंदी साहित्य में उपेक्षित ही रहा रिकॉर्डतोड़ क्राइम पल्प फिक्शन, हंस पत्रिका, वर्ष 31, अंक 8, मार्च 2017, पृष्ठ-204

[38] .प्रभात रंजन (लेख), 'लुगदी' साहित्य के अँधेरे-उजाले, दीवान-ए-सराय 01 : मीडिया विमर्श: हिन्दी जनपद, रविकांत, संजय शर्मा (संपादक), पृष्ठ-90

तक पहुँचने के दिलचस्प तरीक़े ईजाद करते हैं । 'लेखक पाठक संवाद' एक ऐसा ही तरीका है जिसमें लेखक अपने उपन्यासों, कथा-प्रविधि इत्यादि पर पाठकों के पत्रों के जवाब में अपनी बात रखते हैं और उपन्यास में उसका प्रकाशन भी हो जाता है ।"[39]

गौरतलब है कि यह संवाद धर्मिता शुरू से ही लोकप्रिय उपन्यास का एक अंग रहा है । लेखक अपने पाठकों को नए उपन्यास के साथ ही आने वाले उपन्यास और उसकी योजना के बारे में बताता चलता है । यह प्रविधि हिंदी में जासूसी उपन्यास के जनक माने जाने वाले गोपालराम गहमरी के यहाँ भी देखा जा सकता है । कई बार यह काम प्रकाशक स्वयं भी करता है । जिससे पाठकों में आगामी उपन्यास के प्रति रोमांच बना रहता है । गोपालराम गहमरी के उपन्यास 'ठनठन गोपाल' में इस संवाद धर्मिता की बानगी देखिए- "इस गोपालराम गहमरी' सिरीज में हम प्रथमतः 'ठनठन गोपाल', 'भयंकर भेद', 'देवी नहीं दानवी', 'गाड़ी में मुर्दा', रहस्य विप्लव' उपन्यास प्रकाशित कर रहे हैं । ये उपन्यास आश्चर्य-घटनाओं से आपको परिचित करायेंगे और घड़ी भर आपका मनोरंजन कर सकेंगे, ऐसी आशा है । इनका कथा-रस आज भी सूखा नहीं है ।"[40]

जासूसी उपन्यासकारों में प्रयोग के आधार पर सीरीज लिखने का भी चलन दिखाई देता है । इसे उसी तरह से देखा जा सकता है जैसे दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले धारावाहिक या आज के समय में ओटीटी पर प्रसारित होने वाले सीरीज । कहना न होगा कि यह फार्मूला काफी सफल भी रहा । इसे उपन्यास के आरंभिक दौर में देवकीनंदन खत्री द्वारा लिखे गए 'चंद्रकांता संतति' और गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की श्रृंखला से भी जोड़ कर देखा जा सकता है । इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, से प्रकाशित 'सरस्वती सीरीज' और वहीं से प्रकाशित श्री शशधर दत्त कृत 'मोहन सीरीज' को भी इसी के अंतर्गत देखा जा सकता है । प्रभात रंजन लिखते हैं-"वेद प्रकाश शर्मा और सुरेन्द्र मोहन पाठक ही नहीं, इस विधा के अन्य

[39] वही, पृष्ठ-92
[40] .गोपालराम गहमरी, ठनठन गोपाल, किताब महल, इलाहाबाद, आमुख से उद्धृत

लेखक भी 'सीरीज' लिखने में आस्था रखते हैं । 'विक्रांत सीरीज', 'जगत सीरीज', 'सुनील सीरीज' आदि कुछ प्रमुख सीरीज हैं । यह कुछ इस तरह है कि लेखक एक 'लार्जर दैन लाइफ़' चरित्र गढ़ता है, उसे एक नाम देता है और फिर उसके कारनामों का समां बाँधकर पाठकों को आकर्षित करता है । फिर कथा-श्रृंखला बनती चली जाती है ।"[41] पाठकों में इस तरह की श्रृंखला की अगली कड़ी का इंतजार बना रहता था । और प्रकाशित होने के साथ ही हाथों-हाथ इसकी प्रतियाँ बिक जाती थीं ।

अखबारी कचरे और किताबों के कबाड़ को रिसाइकल्ड कर बनाये गए पन्नों पर छपने वाला यह साहित्य बाजार में बिक्री के पैमाने पर काफी लोकप्रिय रहा । लेकिन दृश्य माध्यम के विकास के साथ ही हिंदी पट्टी में रीडरशिप का अभाव देखा जाने लगा । दूरदर्शन और सिनेमा के विकास के साथ ही पठनीयता का संकट घिरने लगा । ऐसे माहौल में जहाँ गंभीर साहित्यिक पत्रिकाएँ भी बंद होने लगी वहीं लोकप्रिय साहित्य के पाठकों की रुचि में परिवर्तन हुआ । मीडिया तंत्र ने हिंदी की पाठकीय संस्कृति को बहुत प्रभावित किया । कात्यायनी लिखती हैं – "1970 के दशक में लुगदी साहित्य पर फिल्मों के बनने की शुरुआत हुई । शुरुआत गुलशन नन्दा से हुई, फिर और लेखकों की कृतियों पर भी फिल्में बनीं । इनसे लुगदी साहित्य की लोकप्रियता और बिक्री पर काफ़ी प्रभाव पड़ा । लेकिन गत शताब्दी के अन्तिम दशक से, जब घर-घर में टी.बी. पर्दों पर लोकप्रिय सामाजिक-पारिवारिक-रूमानी-पौराणिक-छद्म ऐतिहासिक धारावाहिकों की बाढ़ आ गयी, तो घरों में लुगदी साहित्य का स्पेस किसी हद तक कम हुआ । प्लेटफार्मों के स्टालों पर अभी भी इनकी ढेरी लगी रहती है और ट्रेनों में यात्रा के दौरान वक्त काटने के लिए लोग इन्हें खूब खरीदते हैं । लेकिन स्मार्टफोन आने के बाद और फेसबुक-ट्विटर-

[41] . प्रभात रंजन (लेख), 'लुगदी' साहित्य के अँधेरे-उजाले, दीवान-ए-सराय 01 : मीडिया विमर्श: हिन्दी जनपद, रविकांत, संजय शर्मा (संपादक), पृष्ठ- 87

इंस्टाग्राम-वाट्सअप आदि का चलन बढ़ने के साथ ट्रेनों-बसों में भी लोगों के हाथों में किताबें नहीं, स्मार्टफोन ही अधिक दिखने लगे हैं।"[42]

आज हिंदी साहित्य अपने अकादमिक परिसर में सिमट रहा है । इसका असर पुस्तक संस्कृति पर भी पड़ा है । लोकप्रियता को आज भी हिंदी साहित्य के अकादमिक जगत में हेय दृष्टि से ही देखा जाता है । दृश्य माध्यम ने प्रिंट माध्यम के सामने चुनौती प्रस्तुत की है । डिजिटल माध्यम ने पुस्तक संस्कृति को कई सिरे से प्रभावित किया है । हिंदी की अकादमिक दुनिया को लेकर प्रभात रंजन लिखते हैं -"हिन्दी परिसर को दिनोंदिन गंभीर बनाने के क्रम में हमने हिन्दी 'लोकप्रिय स्पेस' को खत्म किया है, पाठक-वर्ग गँवाया है । सारी बहसें अकादमिक 'स्पेस' में ही हो रही हैं ।"[43]

कहना न होगा कि गंभीर बनाम लोकप्रिय साहित्य के इस बहस के बीच एक नया पाठक वर्ग तैयार हुआ है । अपनी रोजमर्रा की जिंदगी के बीच यह पाठक आम भाषा में लिखी जा रही नई हिंदी की तरफ फिर से आकर्षित हो रहा है । पाठकीय परिदृश्य बदला है । अनुवाद की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण हो चली है । आज अनुवाद के माध्यम से वैश्विक साहित्य भी हिंदी में उपलब्ध हो रहा है । आज जरूरत है कि ऐसे पाठक वर्ग को लक्ष्य किया जाए । लोकप्रियता की बहस को लेखक-पाठक-प्रकाशक के त्रिआयामी संबंधों की समाजशास्त्रीय व्याख्या के अंतर्गत समझा जाए । इससे लोकप्रिय साहित्य की एक सुव्यवस्थित व्याख्या संभव हो सकेगी । हिंदी और अंग्रेजी में विकसित हो रहे इस पाठकीय परिदृश्य पर प्रभात रंजन लिखते हैं-"2001 में बंगलौर के एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर ने हिंदी के जासूसी उपन्यास-लेखक सुरेन्द्र मोहन पाठक के उपन्यास 'पैंसठ करोड़ की डकैती' का अंग्रेजी अनुवाद किया । उसके प्रकाशन को भी एक बड़ी घटना की तरह देखा गया। अमेरिका की 'टाइम' मैग्जीन की बेस्टसेलर सूची में उस

[42] . https://desharyana.in/archives/16356.

[43] . प्रभात रंजन (लेख), 'लुगदी' साहित्य के अँधेरे-उजाले, दीवान-ए-सराय 01 : मीडिया विमर्श: हिन्दी जनपद, रविकांत, संजय शर्मा (संपादक), पृष्ठ-91

अनुवाद का नाम आया। वहीं यह खबर भी आई थी कि हिंदी में उस उपन्यास की करीब ढाई करोड़ प्रतियाँ बिकी थीं। लगे हाथ यह भी बता दूं कि अपराध-कथाओं में लगभग क्लासिक का दर्ज़ा पा चुके उपन्यास 'वर्दी वाला गुंडा' की अब तक करीब 8 करोड़ प्रतियाँ बिक चुकी हैं। जबकि हिंदी में इनके उपन्यास आज भी 'सस्ता साहित्य' का दर्ज़ा रखते हैं और अधिकतर सड़क के किनारे पटरियों पर इनकी बिक्री होती है। हालाँकि यह भी अजब संयोग है कि जिन दिनों सुरेन्द्र मोहन पाठक, इब्ने सफी अंग्रेजी अनुवाद में धूम मचा रहे थे, हिंदी में उनका बाज़ार गिरता जा रहा था। मेरठ और दिल्ली के पास बुराड़ी की गलियों में फैले इनके प्रकाशक सिमटते जा रहे थे। तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासों की ज़मीन पर खड़ी हुई जासूसी-अपराध कथाओं की यह विधा पिटने लगी थी। अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी में भी का नया पाठक-वर्ग तैयार हो रहा है। पेंगुइन की कमीशनिंग एडिटर वैशाली माथुर ने एक महत्वपूर्ण बात की ओर इशारा किया- 'भारत में साथ प्रतिशत से अधिक आबादी 30 वर्ष से कम उम्र की है। एक बहुत बड़ा पाठक वर्ग बना है इस आयु-वर्ग में भी जिसके पास खरीदने की क्षमता बढ़ी है, पढ़ने की भूख भी है। लेकिन ये पाठक मोटे-मोटे 'हेवी' साहित्य नहीं पढ़ना चाहते। ये सीधी-सरल भाषा में सीधी-सरल कहानियां पढ़ना चाहते हैं। कुछ आज के युवाओं के जीवन की तरह जिसमें थोड़ी-बहुत चुनौतियाँ हों, चयन के अवसर हों, शानदार सफलताएं हों। अकारण नहीं है कि चेतन भगत आज के युवाओं का 'आइकन' लेखक है। इस पाठक वर्ग को अपने और करीब लाने के लिए 'पेंगुइन ने अंग्रेजी में मेट्रो रीडर सीरीज शुरु की है. डेढ़ सौ रुपए की ये पुस्तकें महानगरों में, मेट्रो, बसों में दौड़ने-भागते युवाओं के लिए हैं।'"[44]

[44] . https://janakipul.blogspot.com/2012/02/blog-post_06.html

आज जरूरत है कि हम ऐसे लोकप्रिय साहित्य को उसके समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देखें। हिंदी में पाठकों को जोड़ने का जो प्रयास इन लोकप्रिय साहित्य ने संभव बनाया वह महत्त्वपूर्ण है। वह एक दौर था जो अब लगभग समाप्तप्राय है लेकिन समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से उसकी भूमिका समाज, पाठक संस्कृति, पुस्तक संस्कृति और बाज़ार के अध्ययन को समझने में मददगार साबित होगी । मनोरंजन प्रधान इस साहित्य का मूल्यांकन इसके कला और साहित्यिक रूप की विशेषताओं को समझकर ही किया जा सकता है। लोकप्रिय साहित्यकार पाठकों की जरूरतों को लक्ष्य करता है । पाठकों की रुचि और उनकी माँग के अनुरूप वह साहित्य का सृजन करता है। ऐसे विषयों को वह अपने साहित्य का विषय बनाता है जो पब्लिक डोमेन में पहले से ही मौजूद होता है । इसके लिए वह कई बार तात्कालिक घटनाओं को भी अपने साहित्य का आधार बनाता है। वह अपने पाठकों को ध्यान में रखकर शैली और भाषा का प्रयोग करता है। कहना न होगा कि यही काम अब दृश्य माध्यम कर रहा है। सिनेमा और टेलीविजन ने साहित्य की पठनीयता को बहुत हद तक प्रभावित किया है। आज अंतर्राष्ट्रीय और भारतीय सिनेमा जगत में जासूसी प्रधान फिल्मों और सीरीज का चलन खूब बढ़ा है। जो पाठक लोकप्रिय जासूसी उपन्यासों को पढ़कर रोमांच का अनुभव करता था आज दृश्य माध्यम ने उसके रोमांच में अभूतपूर्व वृद्धि की है । यह भी एक प्रमुख कारण रहा है कि इस तरह के लोकप्रिय उपन्यासों की पठनीयता कम हो गई है। पाठकों की रुचि का भी परिष्कार हुआ है। इन उपन्यासों को पहली सीढ़ी की तरह देखा जान चाहिए जिसने पाठकों में पठनीयता को बढ़ावा देने का काम किया। वही पाठक आगे चलाकर कलात्मक साहित्य का भी पाठक और अध्येता बन जाता है। गद्य के विकास, हिंदी भाषा और उपन्यास के विकास में इनका अभूतपूर्व योगदान रहा है। कई प्रसिद्ध साहित्यकारों ने यह बात मानी है कि साहित्य पढ़ने की शुरुआत उन्होंने इसी तरह के जासूसी उपन्यासों से किया। हम जासूसी उपन्यास की लोकप्रिय विधा का विश्लेषण लोकप्रिय साहित्य की उत्पादन प्रक्रिया की संरचना के अंतर्गत भी कर सकते हैं। इस संरचना के अंतर्गत लेखक-प्रकाशन-पाठक के त्रिआयामी स्तर को समझा और परखा जा सकता

है। कहना न होगा कि लोकप्रियता कला का एक महत्त्वपूर्ण मूल्य है। इस दृष्टि से इन उपन्यासों का मूल्यांकन लोकप्रियता की आधारभूत संरचना को ध्यान में रखते हुए करना आवश्यक है। जिस तरह पारसी थियेटर अपनी व्यावसायिक वृत्ति और अतिरंजनापूर्ण अभिव्यक्ति के बावजूद ऐतिहासिक महत्त्व रखता है, उसी तरह इन लोकप्रिय जासूसी उपन्यासों का भी ऐतिहासिक महत्त्व है। जिस तरह हम नाटक और रंगमंच के इतिहास को पढ़ते-समझते हुए पारसी थियेटर की भूमिका को नकार नहीं सकते हैं, उसी तरह हिंदी गद्य के विकास, उपन्यास विधा के विकास, पाठकीयता और पुस्तक संस्कृति के इतिहास को इन लोकप्रिय उपन्यासों और जासूसी उपन्यासों के पठन-पाठन के बिना नहीं समझ सकते हैं। हमें कलात्मक साहित्य बनाम लोकप्रिय साहित्य की बहस से बचते हुए लोकप्रिय साहित्य की भूमिका पर बात करनी होगी। तभी लुगदी साहित्य कहे जाने वाले इन लोकप्रिय साहित्य का सार्थक मूल्यांकन संभव हो पाएगा। इसके लिए जरूरत है ऐसे समालोचक वर्ग की जो पूर्वाग्रह को छोड़कर इन उपन्यासों के मूल्यांकन का मार्ग प्रशस्त करें। हमें युगीन सन्दर्भों के आलोक में इन उपन्यासों को समझने की कोशिश करनी होगी।

उपसंहार

साहित्य का समाजशास्त्र साहित्य के समाज सापेक्ष दृष्टिकोण को विश्लेषित करने की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। साहित्यिक कृति का सामाजिक संदर्भों में उसकी व्याख्या यहाँ महत्त्वपूर्ण होती है। इसके अंतर्गत साहित्य सृजन की प्रक्रिया में लेखक, रचना और पाठक का युगीन संदर्भों में विश्लेषण किया जाता है। साहित्यालोचना की यह पद्धति किसी भी रचनाकार का युगीन संदर्भों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन पर जोर देता है। इसे हम साहित्यालोचना की समग्रतावादी प्रवृत्ति कह सकते हैं।

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। कोई भी साहित्य अपने समाज से विच्छिन्न होकर नहीं लिखा जाता है। समय का प्रभाव उसके साहित्य में जरूर परिलक्षित होता है। साहित्य की कोई भी धारा हो उसमें रचनाकार अपने युगीन सामाजिक संदर्भों की व्याख्या जरूर करता है। आधुनिक काल में हिंदी गद्य के आरंभ के साथ ही गद्य की विभिन्न विधाओं का भी आरंभ हुआ। हिंदी उपन्यास का उदय भी इसी दौर में हुआ। हिंदी उपन्यास के उदय में तद्युगीन सामाजिक संरचना और मध्यवर्ग के उदय ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। शुरूआती दौर में अनूदित उपन्यासों का भी खूब चलन रहा। हिंदी प्रदेश में मुद्रण तकनीक के विकास के साथ उपन्यास के विकास को देखा जा सकता है। यही वह दौर है जब हिंदी प्रदेश में श्रोता-वर्ग पाठक वर्ग में बदल रहे थे। मुद्रण तकनीक के विकास ने नवजागरण की चेतना के विकास में भी अहम् भूमिका निभाई। उस दौर के सभी रचनाकार किसी न किसी पत्रिका से संबद्ध थे। पूँजीवाद का उदय हो रहा था और समाज सुधार के लिए प्रबुद्ध वर्ग विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से समाज में जागरूकता लाने के लिए प्रयत्नशील थे। एक तरफ हिन्दू पुनरुत्थानवादी विचार का पोषण हो रहा था तो दूसरी तरफ औपनिवेशिक सत्ता अपनी साम्राज्यवादी नीति को कायम करने के लिए विभिन्न तरह के हथकंडे अपना रहे थे। समाज अपने धार्मिक अंधविश्वास में

जकड़ा हुआ था । पूँजीवाद के उदय के साथ जीवनमूल्य बदल रहे थे । इन्हीं सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के मध्य हिंदी उपन्यास का उदय होता है।

आरंभिक गद्य विधाओं के विकास के साथ ही पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी में साहित्यालोचना का भी आरंभ होता है । नवजागरण, समाज सुधार और पुनरुत्थानवादी विचार के प्रभाव में जिस हिंदी आलोचना की शुरूआत हुई उसमें साहित्य की उपयोगिता और शुचिता का प्रश्न महत्त्वपूर्ण रहा । इस दौर में साहित्य को सीधे समाज सुधार से जोड़कर देखा जाने लगा। पुनरुत्थानवादी नजरिए ने हिंदी बनाम उर्दू के भाषा विवाद को जन्म दिया जो आगे चलकर धार्मिक विवाद में बदल गया । इस प्रतिमानीकरण ने आरंभिक हिंदी उपन्यास की लोकप्रिय धारा में लिखे जा रहे तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों को साहित्यिक कोटि से बाहर कर दिया। लोकप्रियता बनाम गंभीर साहित्य का यह विभाजन आज तक चलता आ रहा है । लोकप्रिय साहित्य को लेकर यह आलोचकीय उदासीनता और पूर्वाग्रह आरंभिक हिंदी उपन्यास की इस धारा को युगीन संदर्भों में समझने में बाधक है । यही बाधा गंभीर साहित्य के सामानांतर लिखे जा रहे व्यावसायिक रूप से सफल और लोकप्रिय उपन्यासों के अध्ययन को लेकर भी है। यहीं कारण है कि हिंदी साहित्यालोचना में पश्चिम की तरह व्यावसायिक रूप से सफल लोकप्रिय उपन्यासों के अध्ययन की सैद्धांतिकी का विकास नहीं हो पाया। आज जरूरत है कि हम उस पूर्वाग्रह से मुक्त होकर साहित्येतिहास की इस धारा के अध्ययन और विश्लेषण की संभावनाओं की ओर देखने का प्रयास करें।

गोपालराम गहमरी आरंभिक हिंदी उपन्यास की लोकप्रिय और मनोरंजन प्रधान धारा के प्रमुख रचनाकार हैं । हिंदी में इन्हें जासूसी उपन्यासों का प्रवर्तक माना जाता है । लेकिन साहित्येतिहास में जहाँ इनके उपन्यासों के भाषिक पक्ष की सराहना की जाती है वहीं आलोचना के प्रतिमानीकरण के तहत इनके उपन्यासों को साहित्यिक कोटि से से बाहर कर दिया गया ।

इनके उपन्यासों को लेकर साहित्यालोचना में कमोबेश इसी धारणा का दोहराव देखने को मिलता है । जबकि ऐसा नहीं है । गोपालराम गहमरी का लेखन अपनी विविधता में तद्युगीन सामाजिक संदर्भों को समेटे हुए है । गोपालराम गहमरी उस दौर में गद्य के की सभी विधाओं में सक्रिय थे । उनकी रचनात्मक प्रतिबद्धता अपने समाज को लेकर उतनी ही थी जितनी साहित्य को लेकर थी । उनके द्वारा लिखे गए संस्मरणों से तद्युगीन साहित्यिक बहसों, भाषा-विवाद, सेंसरशिप, प्रशासनिक नियंत्रण और औपनिवेशिक भारत का यथार्थ झलकता है । इनके संस्मरणों से होकर गुजरना दरअसल हिंदी साहित्येतिहास के उस कालखंड से होकर गुजरना है जिसका ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद है । हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है । उस दौर में जब पत्रकारिता समाज सुधार और नवजागरण की चेतना के प्रसार को लेकर महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी, गोपालराम गहमरी 'जासूस', 'समालोचक', 'हिन्दोस्थान', 'भारत मित्र' 'साहित्य सरोज', बिहार बंधू' जैसी पत्रिकाओं से जुड़े हुए थे । सन् 1900 से 1938 तक 'जासूस' पत्रिका का उन्होंने संपादन किया । यह पत्रिका हिंदी पाठक-वर्ग के निर्माण में महत्त्वपूर्ण है । 'समालोचक' पत्रिका के शुरूआती आठ अंकों का संपादन गोपालराम गहमरी ने किया । इन अंकों को पढ़ने पर उनकी संपादन कुशलता देखते ही बनती है । इन अंकों के संपादकीय पृष्ठों को पढ़कर यह आसानी से लक्ष्य किया जा सकता है कि गोपालराम गहमरी की चिंता साहित्य, समाज और भाषा को लेकर उतनी ही महत्त्वपूर्ण थी जितनी उनके समकालीन साहित्यकारों की थी ।

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों को तद्युगीन समाज में पूँजीवाद और मध्यवर्ग के उदय के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए । उनके जासूसी उपन्यासों की पठनीयता और पाठक वर्ग में उसकी स्वीकृति तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की ही देन है । पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ जिस अपराध वृत्ति का विकास हुआ उसे ही वर्ण्य-विषय बनाकर उन्होंने जासूसी उपन्यासों की रचना की । मुद्रण के विकास ने इस तरह के उपन्यासों को पाठक तक पहुँचाने का काम किया । मनोरंजन को साधन बनाकर उन्होंने अपने

जासूसी उपन्यासों में औपनिवेशिक भारत के यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उस दौर में औपनिवेशिक प्रशासन और क्रांतिकारियों के आपसी टकराव की घटनाएँ रोमांच का विषय हुआ करती थी। कहना न होगा कि पाठक वर्ग के इस आस्वाद को गोपालराम गहमरी पहचानते थे। यह भी कारण रहा कि उन्होंने तद्युगीन समाज में व्याप्त अपराध वृत्ति को अपने जासूसी उपन्यासों का वर्ण्य-विषय बनाया और उसमें समसामयिकता चित्रण किया। नवजागरणकालीन चेतना और समाज सुधार का प्रभाव इनके उपन्यासों में आसानी से लक्ष्य किया जा सकता है। अपने जासूसी उपन्यासों की औपन्यासिक संरचना में उन्होंने सामाजिक संदर्भों को व्याख्यायित करने की सफल कोशिश की है। अपने उपन्यासों में स्त्री-प्रश्न और स्त्री जीवन की समस्याओं को लेकर वे बहुत मुखर रहे हैं। विधवा-विवाह, बाल-विवाह, बहु-विवाह, स्त्री-शिक्षा जैसे प्रश्नों को लेकर उनकी प्रगतिशीलता सराहनीय है। पितृसत्तात्मक समाज की विसंगतियों को भी उन्होंने चित्रित किया है। अपने उपन्यासों में उन्होंने ऐसे पुरुष पात्रों का चित्रण बहुतायत रूप से किया है जो नवजागरणकालीन चेतना से प्रभावित हैं और समाज सुधार के विविध आयामों को लेकर काफी मुखर हैं। तद्युगीन समाज में व्याप्त अंग्रेजी सभ्यता के आकर्षण, पूंजीवाद, राजभक्ति और देशभक्ति के अंतर्द्वंद्व, स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव और धार्मिक अंधविश्वास को उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से रेखांकित किया है। मुस्लिम पात्रों के चित्रण में जिस तटस्थता का परिचय उन्होंने अपने उपन्यासों में दिया है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अपराध वृत्ति को गोपालराम गहमरी किसी जाति, संप्रदाय और वर्ग विशेष में नहीं देखते हैं। अपराधी वर्ग के चित्रण में वे इस पूर्वाग्रह से सर्वथा मुक्त हैं। यह उनकी प्रगतिशीलता का परिचय है।

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों पर पाठकीय रुचि का प्रभाव दिखता है। पाठकीय रुचि की पहचान ही उनके उपन्यासों को लोकप्रिय और व्यावसायिक रूप से सफल भी बनाती है। आरंभिक हिंदी उपन्यास शिल्प की दृष्टि प्रयोगात्मक और अनगढ़ था। गोपालराम गहमरी का औपन्यासिक शिल्प बांग्ला और अंग्रेजी के साथ-साथ भारतीय आख्यान परंपरा से प्रेरित और प्रभावित है। उनके उपन्यासों का 'बयानों' में विभाजन भारतीय कथा की श्रव्य

परंपरा से प्रेरित नजर आती है। उन्होंने तद्युगीन समाज में व्यवहृत बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है। पात्रों के भाषा प्रयोग में उन्होंने भाषा की सामाजिकता और वर्गीय संदर्भ का विशेष ख्याल रखा है यही कारण है कि भाषा प्रयोग की दृष्टि से साहित्यालोचकों ने उनकी प्रसंशा की है। भाषा-प्रयोग में उन्होंने तद्युगीन समाज में प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों और गीतों का भी संयोजन अपने उपन्यासों में किया है जिससे भाषा जीवंत हो उठी है। संवाद-योजना में उन्होंने नाटकीयता का विशेष ध्यान रखा है। कहीं-कहीं पारसी रंगमंच का भी प्रभाव दिखता है। उन्होंने अपने उपन्यासों में आपराधिक घटनाओं को वर्ण्य-विषय बनाकर जिन जासूसी उपन्यासों की रचना की वह कल्पना और चमत्कार वृत्ति से अलग यथार्थ और तार्किकता के आधार पर खड़ी थी। तद्युगीन पाठक-वर्ग को उन्होंने रोचक और नवीन पाठ देने की कोशिश की जो सामाजिक यथार्थ के बेहद करीब थी। पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कमी जरूर दिखाई देती है लेकिन अपराध वृत्ति में लिप्त पात्रों की दुर्दशा दिखाकर उन्होंने तद्युगीन पाठक-वर्ग को इस वृत्ति से बचने के लिए भी प्रेरित किया। हिंदी गद्य के विकास में गोपालराम गहमरी जी का योगदान अविस्मरणीय है। इनके उपन्यासों में तद्युगीन औपनिवेशिक भारत का सामाजिक यथार्थ सफलतापूर्वक चित्रित हुआ है। यह समाज अपनी संगतियों और विसंगतियों के साथ यहाँ मौजूद है।

गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों की सफलता को देखते हुए उनके समकालीन रचनाकारों ने भी जासूसी उपन्यास लिखा। हिंदी साहित्य में जासूसी उपन्यास लेखन की धारा आज भी मौजूद है। जासूसी उपन्यास लेखन की यह धारा गंभीर साहित्य के सामानांतर कायम है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जासूसी उपन्यास लेखन व्यावसायिक रूप से खूब सफल रहा। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर निर्मित जासूसी संस्थाओं ने जासूसी उपन्यास लेखन को और बढ़ावा दिया। इन जासूसी उपन्यासों में राष्ट्रवाद के विचार को भी समायोजित किया गया। व्यावसायिक रूप से सफल इन उपन्यासों के माध्यम से ऐसे जासूस नायकों का सृजन हुआ जो सीरीज दर सीरीज पाठकों का मनोरंजन करते रहे। लेकिन हिंदी

साहित्यालोचना में लोकप्रियता बनाम गंभीरता की विभाजन रेखा जो गद्य के विभिन्न विधाओं के विकास के साथ ही कायम हुई, वह अब तक कायम है । यही कारण रहा कि गंभीर साहित्य के सामानांतर अबाध गति से चल रही इस धारा पर विमर्श नहीं हो सका । आलोचकीय उदासीनता और अधिक व्यावसायिक सफलता की चाह में लेखकों ने इन उपन्यासों में अश्लीलता की भी छौंक लगायी । लेकिन दृश्य माध्यम के विकास के साथ-साथ इन उपन्यासों का प्रभाव भी कम होता चला गया । सिनेमा और टेलीविजन ने पाठक को दर्शक के रूप में बदलना शुरू किया । आज ओ.टी.टी. प्लेटफार्म पर जासूसी प्रधान फिल्मों और वेब-सीरिज को लोग खूब देखते हैं । माध्यम में हुए बदलाव ने न केवल इन लोकप्रिय उपन्यासों को प्रभावित किया अपितु गंभीर साहित्य के पाठक-वर्ग को भी इसने प्रभावित किया है । समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखें तो पाठक संस्कृति, पुस्तक संस्कृति और प्रकाशन बाजार के अध्ययन में इन उपन्यासों का महत्त्व निर्विवाद है । यहाँ भी समाज अपनी संगतियों और विसंगतियों के साथ मौजूद है, जिसे रेखांकित किया जाना चाहिए ।

आज जरूरत है कि हम अपने पूर्वाग्रह को छोड़कर जासूसी उपन्यास और इस तरह के अन्य लोकप्रिय विधा को युगीन संदर्भों में व्याख्यायित करने की कोशिश करें । इन उपन्यासों का समुचित मूल्यांकन समाज, अपराध, पाठक, और प्रकाशन बाजार को समझने के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । हिंदी उपन्यास के विकास और लोकप्रिय उपन्यास की व्यावसायिक सफलता को समझने के लिए इनका अध्ययन आवश्यक है ।

***

आधार एवं संदर्भ ग्रंथ सूची

<u>आधार ग्रंथ सूची-</u>

1.गहमरी, गोपालराम, खूनी का भेद, चन्द्रप्रभा यन्त्रालय में मुद्रित, काशी, जासूस मासिक पत्र (मई और जून सन् 1901 के अंक) से उद्धृत, पुस्तकाकार संस्करण -1910

2. गहमरी, गोपालराम, गेरुआ बाबा, एस.एस. मेहता एंड ब्रदर्स, काशी, संस्करण-1959

3.गहमरी, गोपालराम, जासूस की डाली, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ, संस्करण-1927

4.गहमरी, गोपालराम, झंडा डाकू, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, संस्करण- अज्ञात

5.गहमरी, गोपालराम, ठनठन गोपाल, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण -1946

6.गहमरी, गोपाल, डबल बीबी, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, खेतबाड़ी बंबई, संस्करण -1901

7.गहमरी, गोपालराम, हत्या और कृष्णा, मैनेजर जासूस कार्यालय, गहमर, गाजीपुर, संस्करण- अज्ञात

8.गहमरी, गोपालराम, पत्नी, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, संस्करण- अज्ञात

9.गहमरी, गोपालराम, बलिहारी बुद्धि, चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस, संस्करण -1911

10.गहमरी, गोपालराम, भोजपुर की ठगी, मैनेजर जासूस कार्यालय, गहमर, गाजीपुर, संस्करण-1912

11.गहमरी, गोपालराम, मायावी, काशी हितचिन्तक प्रेस, काशी, संस्करण -1901

12.गहमरी, गोपालराम, हंसराज की डायरी, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, संस्करण- अज्ञात

13.कृष्ण, संजय (संपादन), गोपालराम गहमरी की प्रसिद्ध जासूसी कहानियाँ, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2017

14.कृष्ण, संजय, (संपादन), गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण - 2019

<u>संदर्भ ग्रंथ सूची -</u>

1.अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2012

2.आनंद, महेश, रंग दस्तावेज़: सौ साल (1850-1950) खंड दो, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण -2007

3.आनंद, विमलेश, हिन्दी के कुतूहलप्रधान उपन्यास, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण-1990

4.उपाध्याय, प्रभाकेश्वर प्रसाद, दिनेश नारायण उपाध्याय (संपादन), प्रेमघन-सर्वस्व द्वितीय भाग, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, संस्करण- 2003

5.कृष्ण, संजय, गोपालराम गहमरी (विनिबंध), साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, संस्करण-2017

6.कृष्ण, संजय (संपादक), हिंदी के पहले जासूसी कथाकार गोपालराम गहमरी के संस्मरण, नोटनुल डॉट कॉम, संस्करण -2015

7.कुकरिज, ई. एच, ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के रहस्य, नरसिंहराव दीक्षित (अनुवादक), इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण- 1965

8.खेतान, प्रभा उपनिवेश में स्त्री मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003

9.गुप्त, आलोक, भारतीय उपन्यास की अवधारणा और स्वरूप,राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, संस्करण -2012

10.गुप्ता, विश्वंभर दयाल साहित्य का समाजशास्त्र, अवधारणा: सिद्धांत एवं पद्धति, सीता प्रकाशन, हाथरस, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण -1982

11.घोष, श्यामसुंदर, भारतीय मध्यवर्ग, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, संस्करण - 2013

12.चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी गद्य : विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण -2018

13.चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, अट्ठास्वां संस्करण -2021

14.जैन, ज्ञानचंद, प्रेमचंद-पूर्व के हिन्दी उपन्यास, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1998

15.जैसवाल, श्रीश, हिन्दी का नवजागरण काल एवं भाषा विवाद, हिन्दी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, इलाहाबाद, संस्करण - 2007

16.जैसवाल, श्रीश चन्द्र, संयुक्त प्रांत की हिन्दी पत्रकारिता में भाषा चेतना का विकास, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, संस्करण -2002

17.टंडन, प्रताप नारायण हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण -2002

18.तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण- 2017

19.दत्त, रजनी पाम, आज का भारत, रामविलास शर्मा (अनुवादक), भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण-1977

20.द्विवेदी, कपिलदेव, सत्यनारायण सिंह 'नन्दा जी' गहमरी (संपादक द्वय), गहमर-गौरव, गोपालराम गहमरी सेवा-संस्थान, गहमर (गाजीपुर), उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण - 2001

21.नगेन्द्र (संपादक), मानविकी परिभाषिक कोश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 1998

22.नगेन्द्र, साहित्य का समाजशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण- 1982

23.पाठक, सुरेन्द्र मोहन, निंदक नियरे राखिए (आत्मकथा), राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण- 2021

24.पाठक, सुरेन्द्र मोहन, हम नहीं चंगे बुरा न कोय (आत्मकथा), राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण- 2019

25.पाण्डेय, मैनेजर, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण -2008

26.पाण्डेय, मैनेजर, उपन्यास और लोकतन्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण -2018

27.पाण्डेय, मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2016

28.पाण्डेय, मैनेजर, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, संस्करण- 2014

29.पाण्डेय, त्रिलोक नाथ, चाणक्य के जासूस, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण -2020

30.फॉक्स, रैल्फ, उपन्यास और लोकजीवन, नरोत्तम नागर (अनुवादक), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटे, नई दिल्ली, पहला हिन्दी संस्करण- 1957

31.बख्शी, पदुमलाल पुन्नालाल, हिन्दी साहित्य विमर्श, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, संस्करण- 1968

32.मधुरेश, हिंदी आलोचना का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2012

33.माथुर, उषा, खड़ीबोली विकास के आरंभिक चरण, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, संस्करण-1990

34.मुक्तिबोध, गजानन माधव, नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण -2021

35.यादव, राजेन्द्र, अठारह उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण -1999

36.रंजन, रवि, साहित्य का समाजशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र व्यावहारिक परिदृश्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2012

37.राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2009

38.राय, गोपाल, हिन्दी कथासाहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव, ग्रन्थ निकेतन, पटना, प्रथम संस्करण- 1965

39.रांग्रा, रणवीर हिंदी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, संस्करण-1961

40.रविकांत, संजय शर्मा (संपादक द्वय), दीवान-ए-सराय 01: मीडिया विमर्श: हिन्दी जनपद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2002

41.वर्मा, पवन कुमार, भारत के मध्य वर्ग की अजीब दास्तान, अभय कुमार दुबे (अनुवादक), राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण- 2015

42.शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2014

43.शर्मा, रामविलास प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, संस्करण- 2014

44.शर्मा, हरिमोहन, विनोद तिवारी (संपादक), कथालोचना का दृश्य-परिदृश्य, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, संस्करण- 2016

45.शुक्ल, वागीश, चन्द्रकान्ता (सन्तति) का तिलिस्म, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण - 2019

46.शुक्ल, श्रीलाल, आदमी का जहर, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, छठा संस्करण-2021

47.शिशिर, कर्मेन्दु भारतीय नवजागरण और समकालीन संदर्भ, नयी किताब, दिल्ली, 2020

48.सक्सेना, प्रदीप, तिलिस्मी साहित्य का साम्राज्यवाद-विरोधी चरित्र, शिल्पायन, दिल्ली, संस्करण - 2007

49.सक्सेना, प्रदीप (संपादक), नवजागरण की इतिहास चेतना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2017

50.श्रीवास्तव, गरिमा (संपादन), उपन्यास का समाजशास्त्र, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2006

51.श्रीवास्तव, परमानंद, उपन्यास का पुनर्जन्म,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1995

52.सिंह, धीरेन्द्रनाथ, हिन्दी पत्रकारिता भारतेन्दु-पूर्व से छायावादोत्तर-काल तक, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,द्वितीय संस्करण - 2012

53.सिंह, नामवर, प्रेमचंद और भारतीय समाज, आशीष त्रिपाठी (संपादक), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011

54.सिंह, नामवर, संकलित निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2011

55.सिंह, बच्चन, साहित्य का समाजशास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2011

56.सिंह, बच्चन, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2004

<u>अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ सूची-</u>

1. Banerjee, Sumanta, Crime and Urbanization: Calcutta in the Nineteenth Century, Tulika Books, New Delhi, 2006

2. Mukherjee, Meenakshi (Edited), Early Novels in India, Sahitya Akademi, New Delhi, 2002

3. Mukherjee, Meenakshi, Realism and Reality: The Novel and Society in India, Oxford University Press, New Delhi, 1985

4. Orsini, Francesca, Print and Pleasure-Popular Literature and Entertaining Fictions in Colonial North India, Permanent Black, Ranikhet Cantt, 2009

5. Watt, Ian, The Rise Of The Novel, University Of California Press, Berkeley and Los Angeles, 1957

पत्र- पत्रिकाएँ

1.हंस, अंक- मार्च 2017

2.बहुवचन (त्रैमासिक), महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, अंक-2, वर्ष-2, जनवरी-मार्च-2002

3.समालोचक, अंक-5, दिसंबर-1902

4.समालोचक, अंक-8, 9, 10 (संयुक्तांक), मार्च-अप्रैल-मई 1903

5.इन्द्रप्रस्थ भारती, अप्रैल-जून 2015

6.हैहय क्षत्रिय मित्र पत्रिका, अंक- फरवरी-मार्च 1950

7.आलोचना, उपन्यास विशेषांक, 1954

8.पक्षधर, उपन्यास आलोचना महाविशेषांक, जनवरी-जून 2016

वेबसाइट

1.https://www.hindisamay.com/content/6471/1.cspx

2.https://www.jankipul.com/2015/09/blog-post_13-30.html

3.http://gajipur.blogspot.com/2011/07/blog-post_6468.html

4.https://satyagrah.scroll.in/article/101097/gopal-ram-gehmari-hindi-writer-profile

5.https://desharyana.in/archives/16356